प्राप्ति स्थान :—
सर्वोदय साहित्य प्रकाशन
चौक, वाराणसी

प्रथम बार—१
कीमत डेढ़ रुपया
१९५९

मुद्रक
मुन्नीलाल
[illegible] प्रेस, वाराणसी

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक श्री पतूपमजी की कृति है। लेखक ने गांधी विचार धारा का निकट से अध्ययन किया है।

पुस्तक के विभिन्न प्रकरणों में लेखक ने बताया है कि किस तरह बापू ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी विचार लाने का आजीवन प्रयत्न किया था। भारत जैसे पिछड़े हुये देश की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति तथा देश के भविष्य में संतुलन बनाये रखने के लिये गांधीवादी विचारधारा कितनी सक्षम है पुस्तक में इसका विवेचन विस्तारपूर्वक किया गया है।

लेखक ने बताया है कि आज के अणु-युग में विश्व की विभिन्न विचारधाराओं के संघर्ष ने उसे विनाश के जिस ज्वालामुखी के मुख पर बिठा दिया है उससे बचने के लिये गांधीवाद ही एकमात्र सम्बल है।

शासन व्यवस्था-सञ्चालन के क्रम में आदि सामन्तवाद से लेकर वर्तमान समाजवादी विचारधारा तक प्रयुक्त विभिन्न वादों और विचार-धाराओं पर तर्कपूर्ण शैली में विवेचन किया गया है। लेखक ने विभिन्न वादों तथा विचारधाराओं की त्रुटियों के ऊपर संकेत करते हुये बताया है कि उनसे जन-समाज की क्या हानियाँ हुई हैं तथा भविष्य के लिये कितनी भयावह सम्भावनायें प्रतीक्षा कर रही हैं।

अन्त में लेखक ने अपने तर्कपूर्ण विवेचन द्वारा यह सिद्ध किया है कि आज के मानव तथा उसके भविष्य के लिये गांधीवादी विचारधारा ही सर्वश्रेष्ठ है। विशेषकर भारतवर्ष जैसे देश के लिये जिसकी प्रत्येक स्थिति का गांधीजी ने पूर्ण अध्ययन कर लिया था।

पुस्तक के लघु कलेवर में लेखक ने जिस ढंग से एक महान विचार धारा के सूक्ष्म संकेतों का तर्कसंगत विवरण प्रस्तुत किया है उससे पुस्तक अनुकरणीय संग्रह बन गयी है।

बन्धुरत्न

अनुक्रम

गांधी युग की भूमिका

सभ्यता का इतिहास स्वतन्त्रता-प्राप्ति का इतिहास माना जाता है। मानव-जीवन तीन प्रकार के अभावों से मुक्ति चाहता है। प्रथम अभाव मनुष्य का आर्थिक अभाव है। मनुष्य की दैनिक बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का न होना उसका सर्वप्रथम अभाव है। दूसरा अभाव मनुष्य की स्वेच्छा तथा स्वतन्त्र चिन्तन के मार्ग में रुकावट पड़ना है। मनुष्य-जीवन का तीसरा अभाव सामाजिक वैषम्य है।

मानव की उन्नति और विकास का चरम लक्ष्य स्वतन्त्रता है। प्राचीन युग में जाति रीति-रिवाज तथा धर्म आदि के बन्धन उसने ही बनाये लेकिन आगे चलकर वे मानव की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में बाधक सिद्ध हुए। राजा-महाराजा, अमीर, पुरोहित तथा पण्डित आदि समाज की उन्नति के सबसे बड़े बाधक थे। इनके अतिरिक्त बीमारी दरिद्रता दुर्भिक्ष, बाढ़ तथा अन्य प्रकार की दैहिक दैविक तथा भौतिक बाधायें मानव की स्वतन्त्रता में बाधक होती रहीं। परिणाम-स्वरूप व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का रूप धूमिल रहा।

संसार में जगह जगह होने वाली धार्मिक क्रान्तियों ने मनुष्य की विचार-धारा पर सीधा प्रभाव डाला। इससे मनुष्य ने जीवन का नया मूल्यांकन किया। नया सामाजिक ढाँचा बना तथा दर्शन साहित्य, राजनीति और कला आदि में नयी व्यवस्था का जन्म हुआ।

बुद्ध, ईसा तथा मुहम्मद ने परिवर्तन का आध्यात्मिक पक्ष लिया था परन्तु जीवन का कोई भी पहलू उसके प्रभाव से वंचित नहीं रहा। यहाँ तक कि आर्थिक जीवन भी काफी प्रभावित हुआ; किन्तु आर्थिक ढाँचे का बुनियादी स्वरूप ज्यों का त्यों बना रहा। सामाजिक जीवन में बहुत से अच्छे परिवर्तन कर होने के बाद भी ये धार्मिक विचार आगे चलकर कुछ विवेकी पुरुषों के आचार तक ही सीमित रह गये और जन-साधारण उनसे दूर होता गया। ये विचार अपनी सच्ची आत्मीयता खो कर खोखले बन गये, शक्ति-हीन हो गये तथा एक नारे के रूप में जातीयता के पोषक बनकर समाज को हिंसा और शोषण की ओर ले गये।

व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, वर्ग दूसरे वर्ग का तथा देश दूसरे देश का शोषण करने लगा। यहीं से हिंसा और असत्य का उग्र रूप आरम्भ हुआ।

मनुष्य के आर्थिक जीवन के विकास की ओर दृष्टिपात करने पर जहाँ दास-प्रथा का स्वरूप सामने आता है वहाँ हम मानव के श्रम अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों का शोषण पाते हैं। इन्हीं दोनों शोषणों से मुक्ति पाना मानव का चरम लक्ष्य है।

सहयोगिता के आधार पर जीवन के साधन प्राप्त करने का प्रयास मनुष्य ने जब आरम्भ किया तो उसमें प्रतियोगिता आयी। इन्हीं प्रतियोगिताओं ने संघर्ष को जन्म दिया। इस संघर्ष से आत्म-रक्षा करने की प्रवृत्ति ने राजा की सृष्टि की। राजा सैनिकों तथा सामन्तों की सहायता से पहले रक्षक बना किन्तु कालान्तर में यही रक्षक शक्ति भक्षक बन गयी और जन-स्वतन्त्रता का पूर्ण अपहरण होना आरम्भ हो गया।

विश्व की क्रान्तियाँ और विस्फोट बहुधा इसी अपहरण के

विरुद्ध किये गये, सामूहिक प्रतिरोध की सूचक होती है इससे फ्रान्स जैसा राजतन्त्र तो समाप्त हो जाता है किन्तु राजतन्त्र के समाप्त होने के बाद जहाँ पूँजीवाद तथा केन्द्रित लोकसत्ता की स्थापना होती है, वहाँ फल यह होता है कि जनक्रान्ति के बाद भी मानव मुक्त नहीं होता। उसने जिस प्रजातन्त्र के रूप की स्थापना की उस पर नियन्त्रण पूँजीवाद का हो जाता है।

जेम्स वाट द्वारा वाष्प शक्ति के आविष्कार होने के बाद एक केन्द्रित यान्त्रिक उत्पादन-पद्धति को बढ़ावा मिला और पूँजीवाद के उग्र स्वरूप ने प्राचीन राजसत्ता पर अधिकार जमा लिया। इस तरह से शासन और अर्थ दोनों ही कुछ धनी पूँजीपतियों के हाथ में चले गये और मानव फिर अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता खो बैठा। मानव की इस विवशता का प्रथम विस्फोट रूस की क्रान्ति के रूप में हुआ। पूँजीवादी युग ने अपने अनुकूल साहित्य कला, दर्शन तथा अन्य प्रकार के जिस सांस्कृतिक ढाँचे का निर्माण कर लिया था उनके मूल्यों में परिवर्तन हुआ। रूसी क्रान्ति उस आर्थिक क्रान्ति का सन्देश देती है जिसके पीछे कार्लमार्क्स के विचारों का दर्शन था। रूस में नयी क्रान्ति का प्रयोग आरम्भ हुआ। यही नहीं सामाजिक न्याय, सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक कल्याण का रूप लेकर सामाजिक नियन्त्रण में विश्व के बहुत से अंचलों में ये विचार पनप गये। रूस तथा चीन में इसका पूर्ण प्रयोग आरम्भ हो गया है। पूँजीवाद की भग्न विषमता अत्यधिक समृद्धि के बीच अकिंचनता, बाहुल्य के बीच दरिद्रता तथा प्रसादों के बीच झोपड़ियों ने इस विचार को बल दिया।

कार्ल मार्क्स ने कहा है कि मानव की सत्ता होने न होने का निश्चय उसकी ज्ञान-शक्ति नहीं करती, प्रत्युत उसकी सामा-

जिक सत्ता करती है। सामाजिक विकास तथा विज्ञान संस्कृति दर्शन तथा मानव-चरित्र का भी निर्माण करता है। मार्क्स इसी लिए पूँजीवाद साम्राज्यवाद और गरीबी का अन्त करना चाहता था ताकि इससे वर्ग-विहीन समाज में न्याय समानता तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनी रहे। यद्यपि मार्क्स के विचारों का प्रयोग रूस में हो रहा है; परन्तु राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की सत्ताओं का केन्द्रीकरण हो जाने के कारण व्यक्ति अपनी सारी स्वतन्त्रता खो देगा। समाचार पत्रों के पृष्ठों पर आम पाये छिट-पुट समाचार इस सत्य के द्योतक हैं।

इस तरह प्रजातन्त्र लोकतन्त्र सभी केवल नाम के लिए रहे। शक्ति-प्रदर्शन और दूसरे को पराजित करने की पूँजीवादी मनोवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही। इन पूँजीवादी शक्तियों में एक दूसरे को हड़प जाने के लिए दो-दो विकराल युद्ध हुए तथा अणु-बम जैसे नाशकारक आविष्कारों का नग्न चित्र आज की दुनिया के सामने है। आज के मानव ने विज्ञान की दासता पूर्ण रूप से स्वीकार कर ली है। फल यह हुआ है कि मानव समाज के सारे नियम व्यक्ति की इच्छाओं अभिलाषाओं और आवश्यकताओं के अनुसार नहीं बल्कि भौतिक परिस्थितियों के अनुसार किये जा रहे हैं।

★

गांधीवादी राजनीति

गांधीवादी राजनीति, राजनीति का आधुनिक विकसित रूप है। प्रजातांत्रिक क्रान्ति के बाद सामन्तवादी पद्धतियों का संसार से धीरे-धीरे लोप होता गया और उनके स्थान पर प्रजातांत्रिक संस्थाओं का निर्माण हुआ। प्रजातन्त्र ने मानव को पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की। मनुष्य ने परिवार, जाति, समूह और धार्मिक सीमाओं को पार करके राष्ट्र की नवीन सीमाओं का सृजन किया। नयी सीमाओं के अन्दर स्वतन्त्रता और आदरत्व के अधिकार दिये जान की घोषणायें की गयी। प्रजातन्त्र की परिभाषा में हमें 'जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए' राज्य बतलाया गया है। गत डेढ़ सौ वर्षों से जनता इस प्रजातांत्रिक युग में रह रही है। फिर भी न तो आज वह पूर्ण स्वतन्त्र है और न उसके शोषण का ही अन्त हुआ है। और इस तरह से स्वयं प्रजातांत्रिक व्यवस्था अपनी ऐतिहासिक परीक्षा में असफल हो चुकी है। प्रजातन्त्र की जो दूसरी व्यवस्थायें हमारे सामने आयी हैं उन्होंने भी वर्तमान राजनीतिक असंगतियों को दूर करने के स्थान पर उन्हें बढ़ावा ही दिया है। फासिज्म जहाँ पूँजीवाद एक अधिनायकवाद के रूप में आता है उसमें व्यक्ति को समस्त नागरिक और आध्यात्मिक अधिकारों से वंचित करके एक यन्त्र चलाने वाला मात्र बना दिया जाता है। समाजवाद वर्गहीन समाज-स्थापना के पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर वर्ग-विशेष की तानाशाही स्थापित करता है। किन्तु यह वर्ग-विशेष या राजनीतिक दल विशेष की महत्व-आकांक्षा के तानाशाही में बदल जाता है।

क्योंकि, पूँजीवादी-वर्ग के शोषण के अन्त के बावजूद भी शोषित ही बना रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समानता स्व तन्त्रता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त का स्वरूप दासता स्वीकृत और शोषण में बदल जाता है।

महात्मा गांधी ने आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करके एक नवीन मानवतावादी राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की है। उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था के वर्तमान केन्द्रीकरण का विरोध किया है। वे विकेन्द्रित गण-राज्य के पक्षपाती थे। इसे विकेन्द्रित ग्रामराज भी कहा जा सकता है। गांधी जी के सर्वोदय का समझने के लिए इतना ही कहा जा सकता है कि ऐसा राज्य जिसमें व्यक्ति अपनी मानवीय सद्वृत्तियों के आधार पर अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र है। संक्षेप में मानव के सत् स्व" का राज रहेगा।

वर्तमान मानव-इतिहास के वर्ग-संघर्ष की इतिश्री वर्गहीन मानव-समाज में है। वर्गहीन मानव-समाज में राज्य के विलोप की कल्पना की गयी है। इसके बाद राजकीय व्यवस्था समाप्त हो जाती है और सम्पूर्ण मानव-समाज कौटुम्बिक समाज के रूप में परिणत हो जाता है। महात्मा गांधी के सर्वोदय की कल्पना वर्गहीन विश्व-कुटुम्ब की कल्पना है।

स्वयं महात्मा गांधी ने यह स्वीकार किया है कि वे अहिंसक साम्यवादी हैं। मार्क्सवाद से महात्मा गांधी इस अर्थ में और आगे हैं कि वे वर्गहीन मानव-समाज की स्थापना के लिए किसी व्यापक रक्त-रंजित क्रान्ति के साधनों में विश्वास नहीं करते। वे रक्त-रंजित वर्ग-संघर्ष को सत्य नहीं मानते। उनका कहना है कि मानव की समष्टि समाज है और उसका

स्वस्थ-निर्माण व्यक्तियों की सद्वृत्तियों पर आश्रित है। यदि व्यक्ति के जीवन और आचरण के दोषों को नष्ट किये बिना किसी नयी व्यवस्था का शिलान्यास किया जायगा तो नवीन आदर्शों की नींव कमजोर पड़ जायगी। महात्मा गांधी का यह भी विश्वास है कि मानव-समाज का विकास क्रमबद्ध होता है। अतः वे मानते हैं कि पूर्व व्यवस्था के गर्भ में ही नवीन व्यवस्था का जन्म होने लगता है और उस व्यवस्था के सभी जीवित तत्व नवीन व्यवस्था के बीच में ही संगठित होकर आगे आते हैं। इस प्रकार नवीन व्यवस्था के निर्माण के लिए आवश्यक है कि उस व्यवस्था की पूर्व कल्पना पुरानी व्यवस्था की स्थितियों में हो और पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत ही वे नवीन जीवित तत्व संगठित हों जिनके द्वारा नयी व्यवस्था का निर्माण होना है।

पूँजीवादी समाज के आरम्भ में पूँजीवादी व्यवस्था लाने वाले सभी पूँजीपति-वर्ग के लोग नहीं थे। कहा तो यह भी जा सकता है कि सामन्त-युग में जिस वर्ग को शहरी अथवा नागरिक कहा जाता था उस वर्ग से पूँजीपति, मध्यम् वर्ग, निम्न मध्य वर्ग मजदूर और सर्वहारा का उदय हुआ है। उस समय समाज का बहुसंख्यक भाग पूँजीवादी व्यवस्था को लाने के पक्ष में था। पूँजीवाद के आरम्भ में और उसके बाद पूँजी-पति-वर्ग के संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धीरे-धीरे समाज के बहुसंख्यक भाग के हितों की बलि चढ़ा दी गयी। पूँजीवाद के आरम्भ में व्यक्ति को जो राजनीतिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी थी वह भी आर्थिक शृंखलाओं में जकड़ दी गयी। उसको मिलने वाला वह आर्थिक अधिकार जिसे 'सम्पत्ति के पवित्र अधिकार' के नाम से पुकारा जाता था भी उससे छीन लिया गया।

आज़ादी नहीं है। हमारा सभी का लक्ष्य है अपनी इच्छा से सबका एक दूसरे पर निर्भर होना। मैं अद्वैत को मानने वाला हूँ। मैं सब इन्सानों की बुनियादी एकता बल्कि सब जानदारों की एकता को मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि अगर एक आदमी रूहानी तौर पर ऊपर उठता है तो सारी दुनिया उसके साथ उठती है और अगर एक आदमी गिरता है तो उस दर्जे तक सारी दुनिया गिरती है।"

★

राजनीति में नैतिकता

"आधुनिक युग में गांधी जी ही ऐसे प्रमुख व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिंसात्मक प्रतिरोध के सिद्धान्त को विकसित किया है। संगठित सामूहिक रूप से बड़े आन्दोलनों में उसका प्रयोग किया है और अनेक कठिन परिस्थितियों में भी वास्तविक सफल लड़ाइयाँ लड़कर इस सिद्धान्त के विस्तार को सिद्ध कर दिखाया है।"

—रिचर्ड बी ग्रेग

"मेरे नजदीक धर्मविहीन राजनीतिक कोई चीज नहीं है। धर्म के मानी वहमों और गतानुगतिकत्व का पालन नहीं है द्वेष करने वाला और लड़ने वाला धर्म नहीं, बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म। नीतिशून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।'

—महात्मा गांधी

अब सत्यनहिंसाय नीति पर हमें विचार करना है।

राजनीति में नीति का मेल—इस विषय पर बड़ा मतभेद रहा है कि राजनीति का नीति अर्थात् नैतिकता से क्या सम्बन्ध है? नीति हमें बताती है कि कौन सा काम अच्छा है और कौन सा काम बुरा। यह हमें बुराइयों से बचने और भला काम करने का आदेश देती है। साधारण तौर से यही विचार होता है कि नीति चाहे शासन की हो या व्यापार आदि किसी अन्य विषय की, उसके व्यवहार में नैतिकता होनी चाहिये। उसमें सत्य सेवा और अहिंसा की भावना रहनी चाहिये। प्राचीन तथा अर्वाचीन कितने ही लेखकों ने कहा है कि राज्य को चाहिये कि मनुष्यों

उपयोग इसलिए उचित नहीं है कि ऐसा होने से ही मनुष्य की क्रियाशीलता कम हो जायगी। उनका विचार है कि मनुष्य में क्रियाशीलता उत्पन्न करने के लिए सम्पत्ति का मोह बनाये रखना आवश्यक है सम्पत्ति की सत्ता को स्वीकार करने के बाद केंद्रीयकरण और नौकरशाही आदि के अनेक दोष अनिवार्य हो जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि मानव की अपनी शासन करने की भावना उसे अत्यन्त स्वार्थमय बना देती है। उस भावना को रोकने के लिए प्रत्येक समाजवादी व्यवस्था में राज-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो मानव के व्यवहार और आचरण पर नियन्त्रण रखे।

महात्मा गांधी मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं और उनके विचार में मनुष्य स्वार्थी नहीं है। साथ ही सम्पत्ति मानव इतिहास में बाद में उत्पन्न हुई थी। अतः मानव में क्रियाशीलता लाने के लिए सम्पत्ति के लालच की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति का दोष नहीं है बल्कि उस व्यवस्था का दोष है जिसने व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत अधिकारों से वंचित कर दिया है और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच दूरी बनाये रखने का माध्यम अर्थ को बना दिया है। व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रखते हुए उसमें सामाजिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिए शक्ति के प्रयोग से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसके लिए तो ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार के बन्धन न हों। उत्पादन करने और अपने आप को विकसित करने का इसे पूर्ण अधिकार है। सर्वोदय समाज में मनुष्य अपनी सुन्दर कल्पना को साकार स्वरूप देगा। महात्मा गांधी ने कहा है।

"दुनिया के राष्ट्रों का असली लक्ष्य अपनी-अपनी अलग

आज समाज की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था पर अत्यन्त अल्प संख्यक-वर्ग तथा पूँजीपति-वर्ग के व्यक्तियों का अधिकार हो गया है। ये लोग अपने संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए राज्य युद्ध और विनाश के नाटक रचा करते हैं। सम्पूर्ण सामाजिक दृष्टिकोण को छोड़कर उत्पादन के सारे साधनों को केवल उद्योगपतियों की इच्छा पर ही छोड़ दिया जाता है।

आज के अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण पूँजीवादी राज्यों और नवीन समाजवादी पद्धतियों के बीच में प्रजातांत्रिक प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन इन सभी पद्धतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी पद्धतियों द्वारा संचालित राज्य न तो जनता का है निर्वाचन के माध्यम से चाहे उसे जनता के द्वारा चलने का फतवा भले ही दे दिया जाय; परन्तु यह जनता के लिए नहीं है। व्यक्ति को जो स्वतन्त्रता देने की घोषणा सभी पद्धतियों में की जाती है वह कहीं नहीं रह जाती। महात्मा गांधी की नीति में राजशक्ति को विकेन्द्रित करके प्रत्येक मानव-समूह को स्वत समूह सम्बन्धी सभी अधिकार देने पर जोर दिया गया है। सामाजिक व्यवस्था में उपयुक्त संतुलन स्थापित हो जाने के बाद राजकीय व्यवस्था में महत्त्व होने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यदि विश्व के लिए ईमानदारी से इस व्यवस्था का प्रयोग किया जा सके तो व्यक्ति विश्व कुटुम्ब के सदस्य के समान हो जाता है और उस समय वर्तमान राष्ट्रों की सीमायें बेकार हो जाती हैं; क्योंकि मनुष्य मानवीय सम्बन्धों के आधार पर संगठित होता है और तब सारे वर्ग-संघर्ष, सारे द्वेष घृणा वैमनस्य सेना तथा राज्य की शक्ति और दमनकारी प्रयोगों का अन्त हो जाता है।

कुछ लोगों का कहना है कि वर्गहीन मानव-समाज का

उपयोग इसलिए उचित नहीं है कि ऐसा होते ही मनुष्य की क्रिया-शीलता कम हो जायगी। उनका विचार है कि मनुष्य में क्रिया-शीलता उत्पन्न करने के लिए सम्पत्ति का मोह बनाये रखना आव श्यक है सम्पत्ति की सत्ता को स्वीकार करने के बाद केंद्रीयकरण और नौकरशाही आदि के अनेक दोष अनिवार्य हो जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि मानव की अपनी शासन करन की भावना उसे अत्यन्त स्वार्थमय बना देती है। उस भावना को रोकने के लिए प्रत्येक समाजवादी व्यवस्था में राज-शक्ति की आव श्यकता पड़ती है जो मानव के व्यवहार और आचरण पर नियन्त्रण रखे।

महात्मा गांधी मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं और उनके विचार में मनुष्य स्वार्थी नहीं है। साथ ही सम्पत्ति मानव-इतिहास में बाद में उत्पन्न हुई थी। अतः मानव में क्रियाशीलता लाने के लिए सम्पत्ति के लालच की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति का दोष नहीं है बल्कि उस व्यवस्था का दोष है जिसने व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत अधिकारों से वंचित कर दिया है और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच दूरी बनाए रखने का माध्यम अर्थ को बना दिया है। व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रखते हुए उसमें सामाजिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिए शक्ति के प्रयोग से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसके लिए तो ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार के बन्धन न हों। उत्पादन करने और अपने आप को विकसित करने का इसे पूर्ण अधिकार है। सर्वोदय समाज में मनुष्य अपनी सुन्दर कल्पना को साकार स्वरूप देगा। महात्मा गांधी ने कहा है।

"दुनिया के राष्ट्रों का असली लक्ष्य अपनी-अपनी अलग

आजादी नहीं है। हमारा सभी का लक्ष्य है अपनी इच्छा से सबका एक दूसरे पर निर्भर होना। मैं अद्वैत को मानने वाला हूँ। मैं सब इन्सानों की बुनियादी एकता बल्कि सब जानदारों की एकता को मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि अगर एक आदमी रूहानी तौर पर ऊपर उठता है तो सारी दुनिया इसके साथ उठती है और अगर एक आदमी गिरता है तो उस हद तक सारी दुनिया गिरती है।"

★

राजनीति में नैतिकता

"आधुनिक युग में गांधी जी ही ऐसे प्रमुख व्यक्ति हैं जिन्होंने अहिंसात्मक प्रतिरोध के सिद्धान्त को विकसित किया है। संगठित सामूहिक रूप से बड़े आन्दोलनों में उसका प्रयोग किया है और अनेक कठिन परिस्थितियों में भी वास्तविक सफल लड़ाइयाँ लड़कर इस सिद्धान्त के विस्तार को सिद्ध कर दिखाया है।"

—रिचर्ड बी ग्रेग

'मेरे नजदीक धर्मविहीन राजनीतिक कोई चीज नहीं है। धर्म के मानी वहमों और गतानुगतिकत्व का पालन नहीं है द्वेष करने वाला और लड़ने वाला धर्म नहीं, बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म। नीतिशून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।'

—महात्मा गांधी

अब सर्वजनहिताय नीति पर हमें विचार करना है।

राजनीति में नीति का मेल-इस विषय पर बड़ा मतभेद रहा है कि राजनीति का नीति अर्थात् नैतिकता से क्या सम्बन्ध है ? नीति हमें बताती है कि कौन सा काम अच्छा है और कौन सा काम बुरा। यह हमें बुराइयों से बचने और भले काम करने का आदेश देती है। साधारण तौर से यही विचार होता है कि नीति चाहे शासन की हो या व्यापार आदि किसी अन्य विषय की उसके व्यवहार में नैतिकता होनी चाहिये। उसमें सत्य सेवा और अहिंसा की भावना रहनी चाहिये। प्राचीन तथा अर्वाचीन कितने ही लेखकों ने कहा है कि राज्य को चाहिये कि मनुष्यों

को सदाचार का सद्व्यवहार करना सिखायें। वे राजनीति को नीति से जुदा नहीं मानते। उनके मत से राजा धर्म का रक्षक है। शुक्राचार्य ने लिखा है "राजधर्म का मूल सूत्र साधु की रक्षा और असाधु का दमन है। राजा राष्ट्र का सबसे बड़ा सेवक है।"

अब दूसरे पक्ष की बात लें। कुछ धर्माचार्यों और राजनीतिज्ञों का तो पहले भी यह मत था और अब भी बहुत से इस मत के मानते हैं कि राजनीति पर नीति का कुछ प्रतिबन्ध नहीं रहना चाहिये। नीति और राजनीति का एक दूसरे के विरुद्ध होना स्वाभाविक है। शासकों को राज्य-कार्य चलाने के लिए अनेक बुरे भले काम करने होते हैं। अगर वे बात-बात में नीति के चक्कर में पड़ा करें तो राजकार्य चल ही नहीं सकता। धार्मिकों या धर्माचार्यों द्वारा शासन का संचालन होना निरी कल्पना है। हर समय नीति या नैतिकता का ध्यान रखकर राज करना अव्यवहारिक है। राजनीति साधुओं के लिए नहीं। इस क्षेत्र में चतुर चालाक धूर्त चालबाज आदमियों को ही सफलता मिल सकती है।

यह निर्विवाद है कि संसार में दूसरे पक्ष वालों की ही भरमार है। पहले पक्ष वाले तो नगण्य से रह गए हैं। उनकी बात कहने भर को रह गयी है। असल में राजनीति और नीति अर्थात् नैतिकता अलग-अलग चीजें हैं। दोनों का व्यवहार एक दूसरे का विरोधी है। नीति सिखाती है कि मनुष्य एक दूसरे से प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करे। हम सबको भाई बहन समझें और दूसरों के दुःख-सुख में काम आवें उसकी भरसक सेवा तथा सहायता करें। पर राजनीति ऐसी बातों से दूर रहती है। राजनीति में एक आदमी आदमी से लड़ता है, दूसरी जाति धर्म या रंग वालों से ही नहीं स्वयं अपनी जाति

और अपने गाँव या नगर के आदमियों से भी। जब कि नीति विश्व-बन्धुत्व का, सब आदमियों के भाई-चारे का या प्राणी मात्र से प्रेम का आदर्श उपस्थित करती है। राजनीति तो जुदा जुदा देशों को लड़ाती ही रहती है और आये दिन महायुद्ध और विश्व युद्ध की आशंका बनी रहती है।

आज की शासन-व्यवस्था हिंसा के आधार पर टिकी है और हिंसक उपायों से ही बनी हुई है। पश्चिमी राजनीति के इतिहास में मैक्यावली का नाम प्रसिद्ध है। उसका मत था कि शक्ति, ख्याति आदि प्राप्त करने में जो व्यक्ति सफल हो जाय वही अच्छा है। उसने सफलता प्राप्त करने के लिए चाहे जैसे साधनों या उपायों का उपयोग किया हो। उसकी दृष्टि में कोई भी साधन निश्चित रूप से अनैतिक नहीं जो भी साधन सफलता प्राप्त करने में सहायक हो वही नैतिक बन जाता है। उसका स्पष्ट मत था कि संकट के समय रक्षा के लिए आदमी को दया निर्दयता न्याय अन्याय सच झूठ के विचार के चक्कर में न पड़ना चाहिये। उसे तो जैसे भी बने लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस तरह की सारी बातें दूसरों ने चाहे न कही हों पर आचरण में तो बराबर आती रही हैं। इसलिए कौंसिलों में, अदालतों में राजकीय घोषणाओं में चुनावों में पद-प्रतिष्ठा पाने में, जहाँ देखो कूटनीति और धूर्तता का बोलबाला मिलता है।

गांधीजी की दृष्टि—ऐसी परिस्थिति में गांधीजी का आगमन राजनीति के इतिहास में एक महान घटना है। उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिकता पर आधारित था, उनकी आध्यात्मिकता प्राणी मात्र से प्रेम करने उनके कष्ट दूर करने और लोक सेवा का जीवन बिताने में थी। ईश्वर का दर्शन सत्य का दर्शन करना

था। वे अपने आप को सत्य का शोधक मानते थे। अपनी आत्म-कथा का उन्होंने सत्य के प्रयोगों का नाम दिया है।

गांधीजी ने कहा है कि 'सर्वव्यापी और नित्य सत्य के साक्षात् दर्शन करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर की सृष्टि के छोटे से छोटे प्राणी से प्रेम करे, ठीक उसी प्रकार जैसे कि अपने आप से करता है। जो मनुष्य इस बात का प्रयत्न करता है वह जीवन में किसी क्षेत्र से अपने आपको पृथक नहीं कर सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य की साधना ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा किया। इसी प्रकार संसार के मिथ्या ज्ञान वाले राज्य की मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं तो स्वर्ग के राज्य के लिए प्रयत्नशील हूँ जिसका दूसरा नाम आध्यात्मिक मुक्ति है। मेरे लिए मुक्ति मार्ग मेरे देश और मनुष्य जाति की निरन्तर सेवा का मार्ग है। प्रत्येक प्राणी के साथ मैं आत्मसात् होना चाहता हूँ। गीता के शब्दों में मैं मित्र और शत्रु दोनों ही के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहता हूँ। अतः मेरी देश-भक्ति अनन्त स्वतन्त्रता और शान्ति की भूमि की ओर मेरी यात्रा में एक अवस्था मात्र है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से पृथक कोई राजनीति नहीं है। राजनीति धर्म की अनुगामिनी है। धर्म से शून्य राजनीति मृत्यु का एक जाल है, क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।

इस प्रकार गांधीजी राजनीति में धर्म अथवा सत्य का समावेश करते थे। उनकी यह बात अधिकांश पश्चिमी लोगों को ही नहीं अनेक भारतीय विचारकों को भी बहुत अटपटी लगी थी। पर गांधीजी दृढ़ रहे। जब लोकमान्य तिलक का मत था कि राजनीति साधुओं का क्षेत्र नहीं है। गांधीजी ने कहा कि 'राजनीति साधुओं का और केवल साधुओं का क्षेत्र है। साधुओं से

मेरा मतलब इस शब्द से सूचित अच्छे से अच्छे व्यक्ति से है।" इसी प्रकार जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा कि "धर्म की इस महान निधि को राजनीति की इस कमजोर नौका में जो दलबन्दी की क्रुद्ध लहरों से टकराती रहती है मत रखो।" गांधीजी ने जवाब में लिखा कि "बिना धर्म के राजनीति एक मुर्दा है, जिसको सिवा जला देने के और कोई उपयोग नहीं हो सकता।" गांधीजी के विचार से धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ में नहीं है। उसका अर्थ है, विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था में श्रद्धा। समाज के प्रत्येक कारोबार में राजनीति के नीति-विहीन होने से मनुष्य का सारा जीवन-व्यवहार ही अनीतिमय है। राजनीति को सज्जनों और साधुओं का काम न माने जाने से भले आदमी इसमें आने से बचते रहते हैं। वे अदालतों से धारा-सभाओं से और सरकारी पदों से दूर-दूर रहते हैं। यदि राजनीति सुधर जाय या नैतिकता युक्त हो जाय तो हमारे सार्वजनिक क्षेत्र की गन्दगी हट जाय। गांधीजी ने इस महान क्रान्ति का श्रीगणेश कर दिया। उनके विचारों और कार्यों का सुप्रभाव सभी सार्वजनिक वर्गों पर विलक्षण रूप से पड़ा।

यह कहा जा चुका है कि गांधीजी ने यह सिद्धान्त अपनाया की राजनीति नीति-युक्त ही होनी चाहिये। बिना नीति की राजनीति सर्वथा त्याज्य है। नीति की बात वास्तव में कोई नई बात नहीं थी। नयी बात उसके प्रयोग के विधि है। गांधीजी ने सार्वजनिक तथा सामूहिक क्षेत्र में इसका प्रयोग किया। यहाँ तक की राष्ट्रों के घोर विकार को दूर करने में अनीति का आश्रय न लिये जाने का आग्रह उन्होंने किया। गांधीजी के इस विचार की विशेषता को समझने के लिए हम उनसे पहले की स्थिति से उसकी तुलना करें।

अमूल्य नैतिक हथियारों का आविष्कार किया था। जहाँ एक ओर राजनीति की प्रतिष्ठा करके उसे आध्यात्मिक बना डाला था वहाँ दूसरी ओर धर्म को अनेक ऐसे पहलुओं से लौकिक बना दिया था, जिन्हें पुरातन-प्रिय हिन्दू एकमात्र धार्मिक रूप देते थे। हरिजनों का उत्थान ऐसे अनेक मसलों में एक है जिन पर उन्होंने रूढ़ि प्रिय हिन्दुओं के विरुद्ध विदेशगामी भारतीयों के विद्रोह का नेतृत्व किया है। उनके माथ न्याय करते के लिए यह भी हमें करना चाहिये कि इस देश में अस्पृश्यता का अभिशाप नष्ट करने की कोशिश करें।

महात्मा गांधी को अगाध विश्वास था ऐसा विश्वास जो आध्यात्मशक्ति पर अगम्य श्रद्धा के साथ जुड़ा है और जो कभी कभी तो प्रेरणा की दी हुई ईश्वरीय प्रेरणा तक पहुँच जाता है। वह मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय और बुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक प्रेरणा पर अधिक प्रभावित होते और करते भी थे। बहुत पहले जब विभिन्न परिस्थितियों में वह अपने अनुयायियों को परेशान कर देनेवाली सलाह देते या स्वयं सर्वसाधारण के लिए दुर्बोध कदम उठाते थे तब अपना और उनका समाधान 'मेरी अन्तरात्मा की आवाज़' इन सीधे-सादे मगर अगम्य शब्दों से करते थे। सादा जीवन और ऊँचे विचार यह गांधीजी के जीवन का मूल आदर्श था। जिस सीमा तक उन्होंने अपने मनोभावों अपनी क्रियाओं और अपने जीवन को नियमित किया था दूसरे आदमी उसे देखकर वाह-वाह करने लगते थे और उनके साथ हम इस सीमा तक नहीं पहुँच सकते हैं यह निराशा का भाव भी उनमें पैदा हो जाता है। गांधीजी इसका अनुभव करते थे। और कहते थे। 'अगर तुम अपने पर काबू पा लो तो राजनैतिक क्षेत्र पर तुम्हारा अधिकार स्वयं हो जायगा। यह अपनी

दुर्बलताओं के कारण अपने साथ कोई रियायत नहीं करते थे। वह अपने स्वभाव और रुचि में बहुत सरल और तपस्वी थे। सत्य और अहिंसा ये दोनों ध्रुवतारे थे जिनके सहारे उन्होंने सदा अपना मार्ग टटोला है और कांग्रेस तथा राष्ट्र के जहाज को भारतीय राजनीति के तूफानी समुद्र में खेने की कोशिश की है। *गांधी जी की युद्ध भूमि मानव हृदय थी।* यहीं उन्होंने अपना घर बनाया। औरों की अपेक्षा वह इस बात को कहीं अच्छी तरह जानते थे कि कितनी कम लड़ाई लड़ी और जीती गयी है।

सन् १६१ ई० में राष्ट्रवादी भारत ने अहिंसा की शक्ति एक व्यावहारिक राजनैतिक अस्त्र के रूप में सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिखायी। यह मनुष्य की आत्मा की महान विजय का भी प्रदर्शक था। यह समझने के लिये कि अहिंसा का मूल्य एक राजनैतिक अस्त्र से बढ़कर है, यह जान लेना आवश्यक है कि गांधीजी तप और त्याग पर इतना जोर क्यों देते थे यह बात भी साफ तौर पर समझ ली है। अहिंसा—प्रेम के तत्त्व-ज्ञान और सत्य की साधना सिद्धान्त के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः विश्व प्रेम का नाम ही अहिंसा है।

श्री जयप्रकाश जी ने ठीक ही कहा है कि जहां दूसरे आध्यात्मिक सुधारों ने चरित्र निर्माण और जीवन के उच्चतर मूल्यों की शिक्षा दी, वहां गांधीजी ने उसको सब सामान्य सामाजिक रूप में अमल में लाने के लिये एक रास्ता खोज निकाला। व्यक्तिगत रास्ता तप भी है और वह बुनियादी रास्ता है, लेकिन यह रास्ता त्याग के बजाय नैतिक सिद्धान्तों और

प्राचीन दार्शनिकों ने मानव-जीवन के विकार दूर करने को भावना खूब महत्त्व दिया है, इसमें कोई संशय नहीं। परन्तु उनका केन्द्रबिन्दु प्रायः व्यक्तिगत ही रहा। वे अलग-अलग अपने मोक्ष के प्रयत्नों में लग रहे। बौद्ध और ईसाई धर्म वालों ने अपना संगठन किया तो उनकी दृष्टि भी सांसारिक नहीं रही। अधिकतर धर्मात्मा लोगों के पारलौकिक विषयों का चिन्तन-मनन महत्त्व का था। वे सोचते थे कि हमारी साधना से यदि दूसरे भाइयों का व्यवहार ठीक भी न हुआ तो हमें तो उसका फल मिलेगा ही। इस प्रकार वे अपनी आन्तरिक शान्ति से सन्तोष करते थे।

गांधीजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने नैतिक गुणों का उपयोग केवल व्यक्तिगत जीवन के सुधार तक परिमित न रखकर उसे सामाजिक क्षेत्र तक विस्तृत किया। उन्होंने अपनी वाणी से ही नहीं वरन् इससे बढ़कर अपने आचरण से भी मानव-समाज को नयी दृष्टि दी। उन्होंने प्रत्यक्ष दिखा दिया कि जैसे नैतिक गुणों का अभ्यास करके मनुष्य अच्छा सामाजिक व्यवहार करने वाला बन जाता है उसी प्रकार इन गुणों का उपयोग समाज-सुधार के लिए हो सकता है। इसलिए मनुष्यों को न केवल व्यक्तिगत वरन् सामूहिक सुधार की चेतना होनी चाहिये। इसी के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आन्दोलन काल में ही लोगों के सामने आश्रम-पद्धति से रहने का आदर्श रखते हुवे व्यक्तिगत जीवन के सुधार को काफी महत्त्व दिया है। तथापि उन्होंने जीवन के सामाजिक पक्ष की अवहेलना नहीं की। उन्होंने यह बताया कि अहिंसा और सत्य के सिद्धान्तों को सामूहिक जीवन सफल बनाने के लिये किस प्रकार बाह्य रूप और आकार देना चाहिये।

राजनीति बहुत ही गन्दा खेल है। इसमें प्रायः विषम परिस्थितियों से विवश होकर न्याय और धर्म के पथ से गिरना पड़ता है। यह कुछ बेढंगी सी बात तो लगती है; लेकिन इसमें सचाई है। कहा जाता है कि राजनीति में अक्सर वही व्यक्ति सफल हो सकता है जो न्याय-अन्याय की बहुत परवाह नहीं करता लेकिन महात्मा गांधी की बात निराली थी। वह अत्यन्त न्याय-परायण सतर्क तथा ऊँचे आदर्शों पर दृढ़ रहनेवाले थे और फिर भी राजनीतिज्ञ थे। वह भारत की एक सनातन पहेली थे। दुर्लभ चारित्रिक उन्नति निर्दोष व्यक्तिगत जीवन स्फटिक की तरह साफ बिलकुल बाकी व्यवहार की शुद्धता व गम्भीरता और दृढ़ धार्मिक मनोवृत्ति—इन सब गुणों के अद्भुत समन्वय गांधी जी के चित्र को देखकर हमें महान् आध्यात्मिक नेताओं और सन्तों की याद आ जाती है। भारतीयों में एक नयी भावना आत्मसम्मान और संस्कृति के लिए अभिमान के भाव पैदा करने और पुनर्जीवित भारत का स्फूर्तिदायक नेता होने के कारण वह एक महान राजनीतिज्ञ से भी कहीं अधिक हैं। वह महान दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। जैसा कि रिचर्ड फ्रिमंड ने स्पेक्टेटर में लिखा है। "एक भारतीय राष्ट्र का अत्यन्त अधीरता के साथ जन्म हो रहा है। अभी वह प्रयोगकाल में है; लेकिन उसकी बाह्य रूप-रेखा को हम देख सकते हैं।" गांधी जी इसके निर्माता थे। अंग्रेजों के लिये वह कठिन पहेली थे और उनके भारतीय अनुयायी भले ही उन्हें समझ न सकें उनके नेतृत्व को मानते थे। महात्मा गांधी संसार के ऐसे महान पुरुषों में से एक हैं जिनकी प्रशंसा सब करते हैं लेकिन समझ बहुत कम सकते हैं। उन्होंने राजनीति में धर्म और नीति की प्रतिष्ठा की थी और राजनैतिक क्षेत्र में भौतिक शक्तियों के साथ युद्ध करने के लिए

अमुक नैतिक हथियारों का आविष्कार किया था। जहाँ एक ओर राजनीति की प्रतिष्ठा करके उसे आध्यात्मिक बना डाला था वहाँ दूसरी ओर धर्म को अनेक ऐसे पहलुओं से लौकिक बना दिया था जिन्हें पुराण पंथी हिन्दू एकमात्र धार्मिक रूप देते थे। हरिजनों का उत्थान ऐसे अनेक प्रश्नों में एक है जिन पर उन्होंने रूढ़ि प्रिय व्यक्तियों के विरुद्ध विवेकशील भारतीयों के विद्रोह का नेतृत्व किया है। उनके साथ न्याय करने के लिए यह भी हमें करना चाहिये कि इस देश में अस्पृश्यता का अभिशाप नष्ट करने की कोशिश करें।

महात्मा गांधी को अगाध विश्वास था ऐसा विश्वास जो आध्यात्मिक शक्ति पर अगम्य श्रद्धा के साथ बढ़ा है और जो कभी कभी तो प्रेरणा की दी हुई ईश्वरीय प्रेरणा तक पहुँच जाता है। वह मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय और बुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक प्रेरणा से अधिक प्रभावित होते और करते भी थे। बहुत दफा जब विचित्र परिस्थितियों में वह अपने अनुयायियों को परेशान कर देनेवाली सलाह देते या स्वयं सर्वसाधारण के लिए दुर्बोध कदम उठाते थे तब अपना और उनका समाधान 'मेरी अन्तरात्मा की आवाज' इन सीधे-सादे मगर अगम्य शब्दों से करते थे। सादा जीवन और ऊँचे विचार यह गांधीजी के जीवन का मूल आदर्श था। जिस सीमा तक उन्होंने अपने मनोभावों अपनी क्रियाओं और अपने जीवन को नियन्त्रित किया था दूसरे आदमी उसे देखकर वाह-वाह करने लगते थे और उनके साथ हम इस सीमा तक नहीं पहुँच सकते हैं यह निराशा का भाव भी उसमें पैदा हो जाता है। गांधीजी इसका अनुभव करते थे। और कहते थे। 'अगर तुम अपने पर काबू पा लो तो राजनीतिक क्षेत्र पर तुम्हारा अधिकार स्वयं हो जायगा।' वह अपनी

दुर्बलताओं के कारण अपने साथ कोई रियायत नहीं करते थे। वह अपने स्वभाव और रुचि में बहुत सरल और तपस्वी थे। सत्य और अहिंसा ये दोनों ध्रुवतारे थे जिनके सहारे उन्होंने सदा अपना मार्ग टटोला है और कांग्रेस तथा राष्ट्र के जहाज को भारतीय राजनीति के तूफानी समुद्र में खेने की कोशिश की है। गांधी जी की युद्ध भूमि मानव हृदय थी। वहीं उन्होंने अपना घर बनाया। औरों की अपेक्षा वह इस बात को कहीं अच्छी तरह जानते थे कि कितनी कम लड़ाई लड़ी और जीती गयी है।

सन् १९४१ ई० में राष्ट्रवादी भारत ने अहिंसा की शक्ति एक व्यावहारिक राजनैतिक अस्त्र के रूप में सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिखायी। वह मनुष्य की आत्मा की महान विजय का भी प्रदर्शक था। यह समझने के लिये कि अहिंसा का मूल्य एक राजनैतिक अस्त्र से बढ़कर है, यह जान लेना आवश्यक है कि गांधीजी तप और त्याग पर इतना जोर क्यों देते थे यह बात भी साफ तौर पर समझने की है। अहिंसा—प्रेम के तत्व-ज्ञान और सत्य की साधना सिद्धान्त के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः विश्व-प्रेम का नाम ही अहिंसा है।

श्री जयप्रकाश जी ने ठीक ही कहा है कि जहां दूसरे आध्यात्मिक सुधारों ने चरित्र निर्माण और जीवन के उच्चतर मूल्यों की शिक्षा दी, वहां गांधीजी ने उसको सर्व सामान्य सामाजिक रूप में अमल में लाने के लिये एक रास्ता खोज निकाला। व्यक्तिगत रास्ता अब भी है और वह बुनियादी रास्ता है, लेकिन यह रास्ता न्याय के बजाय नैतिक सिद्धान्तों और

विचारों पर आधारित है। नैतिक मूल्यों को व्यापक रूप में व्यवहृत करने की गांधी जी की इस पद्धति में एक ठोस कार्यक्रम निहित है। निश्चित परिस्थितियों में बुराई के प्रति अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त पर यह नीति आधारित है। व्यक्ति की बुराई के विरुद्ध न कि व्यक्ति के विरुद्ध।

*

समाज-रचना का कार्य

गांधीजी समाज संस्कार के साथ समाज रचना का भी कार्य करते और कराते रहे। उनके इस कार्य का महत्व गांधी जी के समय में बहुत कम लोगों ने समझा। जिन लोगों ने उसमें भाग लिया उसमें से अधिकतर ने उसे अपने नायक की आज्ञा मानने के रूप में किया। स्वयं उनकी उस ओर विशेष रुचि या आकर्षण न था। पर गांधी जी उसे अनिवार्य मानते और बहुत महत्व देते थे। बात यह थी कि उनके सामने बराबर यह प्रश्न रहा कि अहिंसा और सत्य के आधार पर न्याय-पूर्ण समाज व्यवस्था कैसी होनी चाहिये ? और उसका आदर्श रखते हुये कहां तक उसके निकट पहुँचा जा सकता है ? प्राचीन दार्शनिकों और शास्त्रकारों ने इस विषय पर तो खूब चिन्तन और मनन किया तथा अपनी कृतियों में प्रकाश डाला। पर यह विचार बहुत कम किया कि समाज संगठन कैसे इस तरह का बने कि मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिये अनुकूल वातावरण हो। गांधी जी ने आध्यात्मिक विचारधारा को व्यक्तियों तक ही सीमित न रखकर उसका समाज-व्यवस्था और परिस्थिति-निर्माण में यथेष्ट समावेश करने का विचार किया और इस दशा में जीवन भर लगे रहे।

जैसा कि श्री कृपलानी ने कहा है "गांधी का मत था कि नैतिक अच्छाई हवा में नहीं रहती बल्कि समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में निहित होती है। अत: सामाजिक सगठन को अवश्य जागरूक करना चाहिये और उसमें सुधार करना चाहिये जिससे वह नैतिक पथ को प्रतिबिम्बित करे।" मनुष्य समाज में पैदा होता है, उसी में मरता है। मानव

शरीर की भांति उस समाज को भी ईश्वर का उपयुक्त मन्दिर बनाना चाहिये। बुद्ध ने निर्वाण करने के बाद यह आकांक्षा प्रकट की थी कि उनका तबतक फिर-फिर पुनर्जन्म हो, जबतक कि अन्तिम मानव का कल्याण न हो जाय और जनतंत्र के अधिकार पर व्यवस्थित और संगठित समाज में नागरिक का कर्तव्य निभाने वाले, अपनी दिनचर्या में प्रत्येक सामान्य स्त्री और पुरुष के लिये नैतिकता पूर्ण जीवन सम्भव हो सके।'

यद्यपि समय-समय पर कुछ सन्तों और महात्माओं आदि ने समाज में सबके सुखी होने की बात कही पर प्रायः आदमियों की नीति स्वार्थमूलक रही। उन्होंने अपना हित साधा। अपने परिवार वालों का अपनी जाति-बिरादरी या अपने समूह का। अपने पराये का भेद बना रहा। पाश्चात्य सूत्रधारों ने यह सिद्धान्त रखा कि अधिकांश लोगों का अधिकतम हित हो। यह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" की बात हुई। इनकी दृष्टि में अधिक आदमियों का हित साधन करने में कुछ लोगों के हितों की अवहेलना होती हो तो उसे होने देना चाहिये। इस प्रकार राज्य में बहुमत अल्पमत की बात चली। दो या अधिक दलों की पार्टीबन्दी या दलगत राजनीति की बात आयी। पहले बताया जा चुका है कि आधुनिक लोकतन्त्र भले ही 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' हो पर 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' कदापि नहीं। इसलिये उसमें सत्ता की होड़ ईर्ष्या द्वेष या कलह आदि स्वाभाविक हैं जिनके घातक परिणाम जग जाहिर हैं।

गांधी जी की समाज-रचना का यह दोष असह्य था। उन्होंने घोषणा की—"मैं ज्यादा से ज्यादा संख्या के ज्यादा से ज्यादा भले के सिद्धान्त को नहीं मानता। उसे नंगे रूप में देखें तो उसका अर्थ यह होगा है कि ५१ फीसदी के मान लिये गये हितों पर

सबका बलिदान कर दिया जाना उचित है। यह सिद्धान्त निर्दय है और इससे मानव समाज का बहुत हानि हुई है। सबका ज्यादा से ज्यादा भला करना ही एक सच्चा गौरव युक्त और मानवता युक्त सिद्धान्त है और यह सिद्धान्त अधिकतम स्वार्थ त्याग से ही अमल में लाया जा सकता है।'

गांधी जी ने राजव्यवस्था के सब अंगों में 'बहुजन हिताय" नीति का परित्याग कर सवजन हिताय" नीति रखी। उनकी सूक्ष्म दृष्टि से यह बात छिपी न रही कि राजनीति बहुत कुछ अर्थनीति से प्रभावित और नियंत्रित होती है। इसलिये उन्होंने अर्थ व्यवस्था के लिये भी सवजन हिताय' नीति रखे जाने का आग्रह किया। उनकी विचार धारा को इस गुण के कारण सर्वोदय' कहा जाता है।

राज्यव्यवस्था सम्बन्धी आदर्श —समय-समय पर अनेक लेखकों कवियों और दार्शनिकों न अपने-अपने ढग से आदर्श राज का चित्र खींचा है। धर्माचार्यों ने उसे रामराज्य या पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य आदि कहा। उन्होंने तथा उनके अनुयाइयों न अपने दैनिक जीवन में विविध सद्गुणों का परिचय दिया और उसस सर्व-साधारण को उस सुन्दर सब-हितकारी राज्य की कुछ झलक मिली। तथापि अब से पहले अधिकतर लोगों न उस प्रायः काल्पनिक या केवल मन-बहलाव की बात मानी।

पर अब क्रमशः अधिकाधिक आदमी इस पर अधिक बार और गहराई से विचार करना आवश्यक समझते हैं। जगह जगह कितने महानुभाव इसे सम्भव या व्यावहारिक समझने लगे हैं, चाहे इसका मूर्त रूप कितने ही अर्से के बाद

शरीर की भांति उस समाज को भी ईश्वर का उपयुक्त मन्दिर बनाना चाहिये। बुद्ध ने निर्वाण करने के बाद यह आकांक्षा प्रकट की थी कि उनका तबतक फिर-फिर पुनर्जन्म हो जबतक कि अन्तिम मानव का कल्याण न हो जाय और जनतंत्र के अधिकार पर व्यवस्थित और संगठित समाज में नागरिक का कर्तव्य निभाने वाले, अपनी दिनचर्या में प्रत्येक सामान्य स्त्री और पुरुष के लिये नैतिकता पूर्ण जीवन सम्भव हो सके।'

यद्यपि समय-समय पर कुछ सन्तों और महात्माओं आदि न समाज में सबके सुखी होने की बात कही पर आम आदमियों की नीति स्वार्थमूलक रही। उन्होंने अपना हित साधा। अपने परिवार वालों का अपनी जाति-बिरादरी या अपने समाज का। अपने पराये का भेद बना रहा। पाश्चात्य सूत्रधारों ने यह सिद्धान्त रखा कि अधिकांश लोगों का अधिकतम हित हो। यह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" की बात हुई। इसकी दृष्टि में अधिक आदमियों का हित साधन करने में कुछ लोगों के हितों की अपेक्षा होती हो तो उसे होने देना चाहिये। इस प्रकार राज्य में बहुमत अल्पमत की बात चली। दा या अधिक पक्षों की पार्टीबन्दी या दलगत राजनीति की बात आयी। पहले बताया जा चुका है कि आधुनिक लोकतन्त्र भले ही 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' हो यह सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' कदापि नहीं। इसलिये उसमें सत्ता की हाय ईर्ष्या द्वेष या कलह आदि स्वाभाविक हैं जिनके घातक परिणाम जग जाहिर हैं।

गांधी जी को समाज-रचना का यह दोष असह्य था। उन्होंने मान्यता की—"मैं ज्यादा से ज्यादा संख्या के ज्यादा से ज्यादा भले के सिद्धान्त को नहीं मानता। उसे नंगे रूप में देखें तो उसका अर्थ यह होता है कि ५१ फीसदी के माने गये हितों पर

लोग पूरे मेल-मिलाप के साथ रहेंगे। इस तरह हिन्दुस्तान में छुआछूत के लिए और किसी तरह की नशे की चीजों के लिये कोई जगह नहीं हो सकती। स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को। यह हिन्दुस्तान है जिसका मैं सपना देखता रहता हूँ।"

गांधीजी और साम्यवाद

अक्सर यह कहा जाता है कि साम्यवाद को हिंसा से हटा दिया जाय तो गांधीवाद और साम्यवाद एक ही चीज है। या गांधी जी अहिंसक साम्यवादी थे या गांधी जी और साम्यवादियों के बीच साध्य का कोई फर्क नहीं, केवल साधन का ही फर्क है। साधन की शुद्धि यानी सत्य और अहिंसा पर गांधी जी का जोर था। साम्यवाद इस शर्त को मंजूर कर ले तो गांधीवाद और साम्यवाद एक ही चीज हो जाते हैं। ऐसे कथनों के प्रमाण में खुद गांधी जी के शब्दों का भी आधार मिल सकता है।

मार्क्स का भी कथन है —

Not until the dictatorship of the proletariat is fully-established and has attained its full statuts. Will human Society be classless and need for enjoying peace equality and freedom from wa and violence After communism is established in the world there will be no classes and class conflicts No private property in the means of production and no room for profiteering Hence there will be no need for violence also and so nonviolence will in a natural way There will also be no need fo complicated m chinery of Government and the time will arrive for the world of the state of ideal-anarchy which Gandhi ji in common

with others ide lists dreamt of Discerning men must exert to help nature to fulfil itself. In nature it is only the end which counts not the means So the distinction bet veen so-called fair and foul means is unpt ilosophical. The means must be ex mined only for their effectiveness for achieving the end 11 view. Those who resort the distined cou se of evolution whether egnorantly foolist ly or selfishly must be remov d from the way

किसी मुल्क की तीन जिन्दगियाँ होती हैं—

१ राजनैतिक २ आर्थिक और ३ सामाजिक।

गांधी जी ने जब भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया तब देश की राजनैतिक जिन्दगी अंग्रेजों के हाथ में थी, आर्थिक जिन्दगी पूँजीपतियों के तथा सामाजिक जिन्दगी प्रतिक्रियावादियों के हाथ में थी। गाँधीजी ने अंग्रेजों के हाथ से राजनैतिक जिन्दगी को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह का पाठ पढ़ाया आर्थिक जिन्दगी को पूँजीपतियों के कब्जे से मुक्त करने के लिए खादी तथा ग्रामोद्योग का रास्ता बताया और सामाजिक जिन्दगी को प्रतिक्रियावाद से मुक्त करने के लिए हरिजन-सेवा तथा ग्राम-सेवा का कार्यक्रम बताया।

गांधी जी का अहिंसात्मक तरीका वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्ग-परिवर्तन है। वे शोषक वर्ग का ध्वंस न कर उसके हृदय को बदलने की कोशिश करते थे और इस सामाजिक क्रान्ति का एक निश्चित कार्यक्रम देश के सामने पेश करते थे। सन् '४४ के जेल से लौटते ही गांधी जी ने विषमता की इस भीषण समस्या को एक

लिया था कि फौरन वर्ग-विषमता को दूर करने के लिए क्रान्तिकारी कदम न उठाया जाय तो मानवता निराशा की शिकार बन जायेगी और वह हिंसात्मक तरीके से अपना मार्ग कर जायेगी। बाहर आते ही उन्होंने 'अखिल भारत चरखा संघ' द्वारा एक नवीन क्रान्तिकारी कदम उठाया। उन्होंने 'चरखा संघ' के सामने एक प्रस्ताव रखा कि उसकी सारी प्रवृत्ति शोषण हीन समाज-रचना की दिशा में होनी चाहिये। वर्ग-परिवर्तन के आन्दोलन के नतृत्व के लिए उन्होंने देश के शिक्षित नौजवानों से अपील की। ७ हजार नौजवानों को अपने को किसान मजदूर बना कर ७ हजार गांवों में बैठ जाने को कहा। इस तरह उनमें विलीन होकर ही वे उनका नतृत्व करें तथा उन्हें सम्पूर्ण बनाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आन्तरिक व्यवस्था के सुधार के लिए शोषक वर्ग के भरोसे से मुक्त होकर उनमें शासित होने से इन्कार करने की योग्यता पैदा करें। दूसरी ओर वे शोषक वर्ग का आज ध्यान की परिस्थिति की ओर खिंचावें। उन्हें जमाने की रफ्तार पर लिखी बातों को बतायें। उन्हें स्पष्ट रूप से कह दें कि "अगर वे अपना वर्ग परिवर्तन कर मजदूर नहीं बनते हैं तो वे अनिवार्य रूप से वर्ग-संघर्ष के संकट को आमंत्रित करते हैं। वर्ग-संघर्ष की विभीषिका क्या है यह लोगों ने पंजाब में देख ही लिया है। जब एक समूह दूसरे समूह से संघर्ष में लग जाता है तो मनुष्य शैतान हो जाता है। बहुसंख्यक द्वारा अल्पसंख्यकों को लूटना, घर जलाना, स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार करना आदि मामूली बात हो जाती है। अब अगर वे निष्क्रिय बन-कर दूसरे और मजदूर के संघर्ष को फैलने देंगे तो बहुसंख्यक मजदूर द्वारा उनकी हालत वही होगी जो पूर्वी और पश्चिमी पंजाब में बहुसंख्यकों द्वारा अल्प संख्यकों की हुई। शोषक

वर्ग के लोग मजदूर बनने की तकलीफ से घबड़ाते हैं। वे अपने कपड़े की सफेदी को बचाना चाहते हैं। खेतों में मजदूरी करने से, अपने शरीर में कीचड़ लगने से भागते हैं। क्योंकि वे नहीं समझते हैं कि वर्ग-परिवर्तन की तकलीफ से वर्ग-संघर्ष कहीं अधिक तकलीफदेह है। उनको होश नहीं है कि आज वे जहाँ कपड़े की सफेदी को बचाना चाहते हैं वहाँ उनका प्राण बचना एक मुश्किल हो जाता है। जो आज कीचड़ से भागते हैं उन्हें खून से बचना मुश्किल हो जायगा।

गांधी जी एक ओर नौजवानों को गाँव में भेजकर समग्र ग्राम-सेवा' के कार्यक्रम द्वारा इस नवीन अहिंसात्मक क्रांति की दिशा में एक निश्चित कदम रखना चाहते थे और दूसरी ओर सारे देश में वर्ग-परिवर्तन की दिशा में हल्के-हल्के कार्यक्रमों से इस आन्दोलन के लिए देश भर में एक मनोवैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि करना चाहते थे। इस दिशा में पहला कदम चरखा संघ द्वारा सूत शर्त के नियम का था। उन्होंने खादी पहनने वालों के लिए कम से कम दो पैसे का सूत कातकर देना अनिवार्य कर दिया जिससे थोड़े परिमाण में ही सही शरीर श्रम द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादन कर के उत्पादक वर्ग के साथ एकात्मकता स्थापित करें। अपनी दृष्टि वर्ग-परिवर्तन की आवश्यकता की ओर केन्द्रित करें। बाद में उन्होंने यह भी कहा कि 'जो लोग कम से कम थोड़ा खाद्य पदार्थ उत्पादन नहीं करते हैं उनको खाना खाने का अधिकार नहीं है।"

क्रांतिकारी तरीके का मुकाबिला क्रांतिकारी तरीके से ही हो सकता है यह बात आपको समझ लेनी चाहिये। आज की परिस्थिति जो भी क्रांतिकारी तरीका बतायेगा चाहे वह मुल्क को नाश की ओर ही क्यों न ले जाय जनता उसी ओर झुकेगी। जमाने की माँग है "वर्गहीन समाज" की स्थापना। उसके लिए

रूस के आधार पर कम्युनिस्ट एक दिशा बता रहे हैं। वे उत्पादकों को उभाड़कर शोषकों का गला कटवाना चाहते हैं। गांधीजी ने भी जयपुर के अधिवेशन में वर्गहीन समाज का प्रस्ताव किया था। लेकिन गांधीजी का तरीका क्या था? आज हम देखते हैं कि बड़े से लेकर छोटे नेता तक कम्युनिस्टों से मुकाबिला करने की बात करते हैं। जनता नेताओं से पूछेगी कि आप वर्गविहीन समाज बनाना चाहते हैं। अगर इस तरह की विचार धारा को घुसने न दें तो आप ही बताइये कि आप किस तरीके से ऐसा करना चाहते हैं?" आपको इस सवाल का जवाब देना है। आप वैज्ञानिक तरीका बतायें?

३ साल पहले देश के राजनीतिक क्षेत्र में एक क्रांतिकारी समाधान की मांग की गयी। उस समय भारत में अंग्रेजी राज्य की समाप्ति की मांग थी। आतंकवादी रूसी, आयरलैंड आदि विदेशों से प्रेरित होकर कुछ लोग एक आतंक का क्रांतिकारी तरीका पेश करने में तत्पर हुए। नरम दलवाले विधानसभा की चहार दीवारी के अन्दर से भी अंग्रेजी राज्य खतम करना चाहते थे। जनता उनके इस वैधानिक तरीके की ओर न झुककर आतंकवादियों के क्रांतिकारी तरीकों की ओर ही झुक रही थी। उस समय यदि गांधीजी ने असहयोग और सत्याग्रह का दूसरा और बेहतरीन क्रांतिकारी प्रोग्राम मुल्क के सामने नहीं रखा होता तो मुल्क गदर के समय जैसा अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा पहले ही कुचल दिया जाता; पर वह आतंकवाद को अपनाता। इसी तरह आज शोषक वर्ग के विघटन के लिए जो क्रांतिकारी मांग है उसको पूरा करने के लिए अगर आज आप विधानसभा की चहारदीवारी में बैठे रहेंगे और गांधीजी के बताये वर्ग-परिवर्तन के तरीके को नहीं अपनायेंगे तो देश हिंसा-

भिन्न होकर जर्जर हो जायगा। मुल्क के लोग विदेशी भावना से प्रेरित वर्ग-संघर्ष के आतंकवादी कार्यक्रम को अपनायेंगे ही। आप उन्हें गैर-कानूनी करार कर जेलखाने भेजें या गोली मारें तो भी रोक नहीं सकते। संसार के इतिहास में किसी क्रांति को आज तक गोली मारकर नहीं रोका जा सकता है। क्रांतिकारी प्रोग्राम को उसके बदले ऊंचे क्रांतिकारी प्रोग्राम द्वारा ही रोका जा सकता है।

आज स्वतन्त्र देश के मुल्क की बागडोर जिनके हाथ में है। उनको इन बातों को समझना होगा चाहे कितनी तकलीफ हो जाय। समस्या का समाधान उनको ही करना होगा। अगर वे इसे नहीं करते हैं तो जिस तरह डेढ़ सौ वर्ष पहले अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी साम्राज्यवादी हमारी भूमि पर संघर्ष करते रहे उसी तरह आर्थिक मार्चे के फाटक से पूँजीवादी अधिनायक तन्त्र और सामाजिक मोर्चे के फाटक से कम्युनिस्टवादी अधिनायक-तन्त्र इसी भारतभूमि में घुस कर आपस में संघर्ष करेंगे। जिस तरह डेढ़ सौ वर्ष पहले भारत की अपनी नीति तथा अपने नेतृत्व में कोई कार्यक्रम चलाने की शक्ति के अभाव में मुल्क के बड़े मनीषी नेताओं ने दो साम्राज्य वादी शक्तियों में जिनकी शक्ति अधिक थी और जिनका नारा मनोहर था उनको आलिंगन किया था ईश्वरीय विधान कहकर। उसी तरह आज इन दो अधिनायकवादी शक्तियों से जिसकी ताकत अधिक होगी और जिसका नारा सुनने को अच्छा लगेगा उन्हें लोग आलिंगन करेंगे व्यवहारिक आवश्यकता कहकर। अतएव वे इस बात को समझ लें। ये भाड़ में पड़कर समय की माँग का ख्याल नहीं रखेंगे तो आप भी डूबेंगे और साथ-साथ मुल्क को भी डुबायेंगे।

गांधीजी का व्यक्तिवाद

गांधी जी इस धारणा से सहमत नहीं थे कि लोकतन्त्र का अर्थ व्यक्ति की भावना की स्वतंत्रता का हनन करके आर्थिक स्वतन्त्रता है अथवा बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के राजनैतिक स्वतंत्रता है। गांधी जी के व्यक्तिवाद का अर्थ था बाह्य परिस्थितियों से अधिकाधिक स्वतंत्रता तथा आन्तरिक गुणों का विकास। यद्यपि गांधी जी एक सुधारक थे और हिन्दू धर्म पर बाह्य प्रभावों का स्वागत करते थे परन्तु हिन्दू रिवाजों तथा विश्वासों का छोड़ना उन्हें पसन्द नहीं था। गांधी जी में एक कट्टर कर्मवादी तथा पूर्ण सुधारवादी व्यक्ति का एक बड़ा समावेश सम्मिश्रण था। लगता तो यह था कि अस्पृश्यता-उन्मूलन का स्वाभाविक परिणाम जाति भेद मिट जाना था क्योंकि जब लोग अछूतों से मिलने लगे तो ऊंची जातियों के बीच की दीवार ढह जानी चाहिये थी परन्तु कई वर्षों तक गांधी जी जाति-बन्धनों का समर्थन करते रहे। बाद में इन्हीं गांधी जी ने कहा कि अन्तरजातीय सहभोजों तथा अन्तर जातीय विवाहों पर बन्धन हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। आज ये दोनों प्रतिबन्ध हिन्दू समाज को कमजोर बना रहे हैं। परन्तु यह भी गांधी जी का अन्तिम मत नहीं था। कट्टर परम्पराओं से नाता तोड़ने के बाद वह इनसे अधिकाधिक दूर हटते गये और ५ जनवरी १९४६ के हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड में उन्होंने घोषणा की कि विवाह के इच्छुक सब लड़के तथा लड़कियां से मेरा कहना है कि सेवाग्राम में उनका विवाह तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक उनमें से एक हरिजन न हो।

गांधी जी एक शाश्वत अन्वेषक थे। इसलिये उन्होंने अपने आप को ऐसा बना लिया था कि सब कोई उनके पास पहुँच सकते थे। उनका लक्ष्य केवल पूर्णता ही नहीं था क्रियात्मकता भी था।

अगस्त १९४७ में गांधी जी कलकत्ता में भारतीय इतिहास के सबसे घिनौने संकट का सामना कर रहे थे। शहर की सड़कों पर हिन्दू और मुसलमानों का खून बह रहा था। गांधी जी का विश्वास था अगर राजनीति मानव प्राणियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं है तो उसका अस्य शून्य के समान है।

गांधी जी का सम्पूर्ण अस्तित्व मानव जाति की भलाई पर केन्द्रित था। ग्राम के भोजन में हरी साग सब्जियाँ हों, इस बात की चिन्ता शोक सन्तप्त सम्बन्धी के वेदना भरे हृदय के लिये परेशानी, बीमार किसान के लिये मिट्टी की पट्टी जैसी छोटी-छोटी बातों का गांधी जी को बहुत ख्याल रहता था। गांधी जी मूर्तिमान भारत थे। वह अपने को हरिजन मुसलमान, ईसाई हिन्दू, किसान जुलाहा कहते थे। वह भारत के साथ एकाकार हो गये थे। जनता और व्यक्ति से घुलमिल जाने का उनमें बड़ा गुण था। वह भारत निवासियों को मुक्त कराकर देश को स्थायी रूप में स्वतंत्र करना चाहते थे। गांधी जी ने सन् १९४५ में लिखा था—"मैं सामाजिक क्रान्ति का कोई भी राजमार्ग नहीं बता सकता। सिवा इसके कि हम अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में उसका समावेश करें।"

*

राजनीति में क्रान्ति

राजनीतिक प्रजातन्त्रवाद और आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि संघर्षों तथा समझौते के क्षेत्रों के भेदों के स्पष्टीकरण की लगातार कोशिश हो। प्रजातन्त्रवाद के लिये संघर्ष और आर्थिक विकास के लिये समझौते की आवश्यकता होती है। विशेष परिस्थितियों तथा रूपों में एक का महत्व दूसरे पर भी होता है परन्तु साधारणतः दोनों का समान तथा सन्तुलित होना जरूरी है। ऐसे स्पष्टीकरण का काम सरल नहीं है इसकी यत्नपूर्वक चेष्टा करनी पड़ेगी क्योंकि दलगत भावना की स्वाभी प्रवृत्ति सदा अति विस्तृत और सर्वेसर्वा होने की ओर रहती है। यहीं कठिमाइयों का उदय होता है। जब मुसलमानों की जातीयता भावना बुद्धि पर थी तब उसकी जागृति प्रत्येक क्रिया और व्यापार में फैलकर उसे अपने अधीन करने की थी। लोक-कल, व्यापार, पड़ोसी-पन समाज-हितैषी संगठन, प्रत्येक संस्था द्वारा मुस्लिम जाति के सिद्धान्त पर संस्थापित की गयी थी। दूसरे सब बन्धन तथा सम्बन्ध स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे परन्तु उसका कोई अर्थ नहीं था और न उसके प्रति कोई भावना थी। एक वर्ग की जातीय भावना के सामने अन्य सभी विषयों को गौण रूप दे दिया गया था। यही बात कुछ कम प्रभाव से छोटे रूप में कुछ जातियों के विषय में भी जैसे महाराष्ट्र की महार जातियाँ। इस तरह धर्म-संघ तथा राजनीति जैसे भिन्न क्षेत्रों में डाक्टर अम्बेडकर और कायदे आज़म जैसे जातीयवादी नेताओं ने जाति पर संगठन करके अपना कार्य सरल बनाया था।

यही प्रवृत्ति दूसरी दिशाओं या देशों में भी देखने में आती है। संयुक्त राष्ट्र जैसे देश में श्रम-संघ अपनी स्वाभाविक सीमा से आगे बढ़कर अनेक क्षेत्रों में जागृत हो रहे हैं जैसे शिक्षा, मनोरंजन विश्रान्ति गृह, राजनीतिक धारणा परस्पर समझौता तथा स्थानीय संस्थाओं में। कहीं-कहीं व्यापार में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की नियुक्ति का अधिकार भी इनके हाथ है। सभी क्षेत्रों पर धीरे धीरे श्रम-संघों का अधिकार हो गया है जो इनके अतिरिक्त कार्यों में सम्मिलित हैं। प्रत्येक दल में सर्व प्रमुख बनने की प्रवृत्ति पाई जाती है और इसके लिये प्रयत्न किया जाता है। इस लड़ाकू प्रवृत्ति का यदि समुचित नियंत्रण-निरोध न हो तो प्रजातन्त्रवाद की प्रथा का अन्त हो जावेगा। जो बात दूसरे दलों पर लागू है वही राजनीतिक पार्टियों पर भी लागू होती है। राजनीतिक दल भी सभी दिशाओं और क्षेत्रों में अपना हस्तक्षेप बढ़ाने की चेष्टा करते हैं तथा उनके द्वारा अपना स्वार्थ साधते हैं और अपने विस्तार की योजना बनाते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक दल की मर्यादोचित सीमायें हैं जिनका उल्लंघन होने पर दूसरे दलों को हानि होती है उसी प्रकार एक राजनीतिक दल की परिधि होती है जिसे स्वतन्त्र और समान रूप से अपने तथा अन्य संस्थाओं के जीवन का समाधान करना चाहिये।

जो संस्थायें विशिष्ट उद्देश्यों के लिये संगठित हैं उनमें भी जब शक्ति आ जाती है तो उसका वे अन्य दिशाओं में उपयोग करने लगते हैं। शक्ति का व्यवहार गैर कानूनी कार्यों में भी प्राप्त किया जा सकता है। यदि एक पार्टी ऐसा करने की कोशिश करती है तो दूसरी सभी पार्टियाँ वही करने लगती हैं और इसका परिणाम यह होता है कि समाज के सभी कार्य दल-

बन्धी का अनुसरण करने लगते हैं। अतः निर्माण-काम राजनीतिक दलों के अधीन रहने पर निर्माण न रहकर उनकी नीति को पालने का साधन हो जाता है। इसके फलस्वरूप राजनीतिक भेद तीव्र हो जाते हैं। तथा निर्माण में अन्य राजनैतिक पार्टियों का सहयोग असम्भव हो जाता है। यदि इस तरह की बातें बढ़ने दी जायें तो या तो एक पार्टी की सब पर तानाशाही स्थापित हो जावेगी या चारों ओर दुव्यवस्था फैल जावेगी। क्योंकि सभी दल सर्वेसर्वा बनने का प्रयास करेंगे और इस संघर्ष में समाज का लाभ न होकर हानि होगी। जब समाज की अनेक संस्थाओं और कार्य क्षेत्रों की स्वतन्त्रता का परस्पर आदर किया जाता है तभी आर्थिक विकास तथा सामाजिक प्रगति के निमित्त अधिक सामाजिक शक्ति का जन्म होता है। व्यक्ति की भावनायें उसके कार्यों और संस्थाओं द्वारा ज्ञात होती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि 'किसी भी महत् कार्य अथवा संस्था का उद्देश्य वहाँ तक सम्भव हो साधन की पूर्ति न मान कर उसका आदर्श ही मानना चाहिये। कान्ट के जरूरी सिद्धान्त का स्पष्ट अर्थ यही है।

प्रश्न यह है कि राजनैतिक दल आदर्शों के ऐसे निर्णय स्वीकार करके चले रह सकते हैं या नहीं? यह जनता की मनोवृत्ति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। एक बार जर्मनी में किसी भी राजनीतिक दल का संगठन उसकी कुछ की सेना के बिना पूर्ण नहीं माना जाता था। प्रजातन्त्र वादी देशों में राजनीतिक पार्टियों के अपने सैनिक दल बुरे माने जाते हैं। यदि लोकमत ऐसा शिक्षित हो जाता है कि वह राजनैतिक दलों के कार्यों पर नियन्त्रण माँगने लगे तो राजनीतिक दलों की दूसरी दिशाओं तथा संस्थाओं पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति बहुत कुछ कम हो जावेगी।

ऐसी शिक्षा जनता को कुछ सुविधा पूर्वक तभी मिल सकेगी जब प्रजातन्त्रवादी दल अपने कामक्षेत्रों को सीमित रखने को स्वयं तैयार हो जायँ। दूसरे शब्दों में दलबन्दी की चालों के अनुसार जो काम निषिद्ध हों उनको न करने के लिये परस्पर समझौते के क्षेत्रों का निर्माण कर लें।

इसके पूर्व यह बताना आवश्यक है कि उन पार्टियों के सिद्धांत से जो बहुवादी दलों को समूल मिटा देना चाहते हैं तथा समूहवादी शासन स्थापित करना चाहते हैं हमारा मतभेद है। ये प्रगति में रुकावट डालनेवाले हैं। जिस प्रकार फाँसी और गले के बीच समझौता सम्भव नहीं है उसी प्रकार ऐसी पार्टियों के साथ समझौते का क्षेत्र ढूँढ़ना सम्भव नहीं है। बहुवादी राजनीति केवल प्रजातन्त्रीय दलों के मध्य विकसित हो सकती है।

यह स्पष्ट है कि सृजनात्मक काम राजनीतिक दल बन्दी से भिन्न किया जाना चाहिये। युवक आन्दोलन और उसके साथ सैरसपाटे यात्रायें सांस्कृतिक कार्यक्रम छात्र-संस्थायें देहात-सुधार आदि काम विशेषतया गावों में सह समिति य। सामाजिक शिक्षा आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनका राजनीतिक दलबन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये। यह ऐसा घर है जहाँ सब आ सकते हैं और साथ काम कर सकते हैं इन कार्यों में कोइ विशिष्ट दलबन्दी की छाप नहीं है। यहाँ तो केवल कुशलता और विश्वास की महत्त्व है जो किसी एक दल के गुण नहा हैं। ऐसे काय इस प्रकार सगन्ति होन चाहिये कि उनका विकास ही संगठन का एक मात्र लक्ष्य हो और इनके द्वारा कोइ राजनीतिक लाभ उठाने की चेष्टा न करे। ऐसा निषपक्षता जो राजनीतिक

पार्टी शक्तिशाली हो उसे विशेष रूप से स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि उसकी स्थिति की सुविधा से लाभ उठाने की उपासीनता का इसका दूसरी पार्टियों के मन में विश्वास जमगा तथा उनमें भी त्याग करने की प्रवृत्ति होगा। सृजनात्मक कार्यों में राजनीतिक जातीय या भाषा-सम्बन्धी द्वन्द्व जनता के उत्साह में भद पैदा करता है, उसके प्रयत्नों को दुर्बल बनाता है तथा काम की उत्कंठा को कम करता है। प्रत्येक काय का अपना अनुशासन होता है। प्रत्येक रचनात्मक कार्य एक उचित प्रकार के संगठन की क्षमता रखता है। आवश्यकता केवल यह है कि स्त्री और पुरुष को काम करने के लिए प्रवृत्त हों पद से हो। अपना काम की नीति निर्धारित करके न भावें और न किसी प्रकार के गुप्त उद्देश्य से हो प्रेरित हों। प्रजातन्त्रवादी पार्टियों का प्रारम्भ कुछ कार्यों व क्षेत्रों को अराजनीतिक बनाने से होता है। दूसरे कार्यों और नीतियों के विषय में जब भी सम्भव हो सहयोग बढ़े ऐसे तरीकों का विकास करना चाहिये। जहाँ मतभेद तीव्र हो वहाँ विरोधी दलों की भावनाओं को पूर्ण रीति से सन्तुष्ट करना चाहिए। प्रजातंत्रीय राजनीति का अर्थ मीमा विस्थान की भावना और अस्थिरता कभी नहीं होनी चाहिए।

समूहवादी प्रणाली के नियन्त्रण में मतभेदों का अन्त हो जाता है यह एक गलत विश्वास है। बेरिंगटनमूर ने अपनी विद्वत्तापूर्ण विवेचना "रूसी राजनैतिक मतवाद" के बारे में बताया है कि रूस में एकमत जारी है न कभी हो सकता है। वहाँ राजनीति के मतभेद षड़यन्त्रों और विद्रोह के मुकदमों का रूप धारण करते हैं। प्रजातन्त्रवाद में मतभेदों का प्रकाशन भाषणों, उत्तेजनाओं और चुनावों के द्वारा होता है। शक्ति और साधनों के द्वारा इस भावना का हावी होना एक प्रकार का

राजनीतिक स्वेच्छाचार है। राजनीतिक स्वेच्छाचार और आर्थिक दुर्व्यवस्था के दोषों में से पहला अधिक बुरा है।

जनता को जब भी राजनीतिक अधिकार मिले हैं उसने उनका प्रयोग आर्थिक लाभ उठाने के उद्देश्य से किया है। यद्यपि ऐसा प्रयास करते समय उसने अनेक त्रुटियाँ की हैं किंतु इस प्रतियोगिता-मय संघर्ष की कुछ बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से अपनी रक्षा करने का प्रबन्ध करने में जनता सफल हो गयी है। इस प्रकार जिस मनुष्य के पास प्रजातांत्रिक ढंग से स्वतन्त्र नागरिकता के अधिकार हैं उसके पास आर्थिक सुरक्षा को प्राप्त करने का हथियार भी है। परन्तु जो व्यक्ति एक तानाशाह के अधीन है वह जब तक आज्ञा-पालन करता रहता है तब तक आर्थिक व्यवस्था में उसे ऐसा कोई साधन नहीं मिलता कि वह राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। इसके विपरीत उसे यह भय सदा रहता है कि यदि वह तानाशाह के विरुद्ध जायेगा तो दंड-स्वरूप उसे आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उसके ऊपर से तानाशाह की छत्रछाया उठा ली जायेगी। समूहवाद की अप्रगतिशीलता और जटिलता की समीक्षा प्रजातन्त्रवाद की जानी-मानी त्रुटियों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिये।

एक प्रजातन्त्रवादी राज्य में यह आवश्यक नहीं कि सम्मिलित राजनीतिक प्रयास केवल सृजनात्मक कार्यों तक सीमित रहें। कोई भी व्यापक कार्य इस प्रकार संगठित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ सर जौन आर० ने अपनी पुस्तक 'संघर्ष क्यों" में सलाह दी थी कि—"एक खाद्य समिति की स्थापना होनी चाहिये जिसका काम इंगलैंड को प्रत्येक नागरिक तक समुचित भोजन पहुँचाने का होगा। इस कीमत पर कि सभी उसे सहन कर सकें।" किसी भी प्रकार के पदार्थों का उत्पादन करने के

निमित्त अब कि योजनानुसार ऐसा करना सर्वं प्रथम आवश्यकता हो, इसी प्रकार की संस्था के सगठन करने की चेष्टा होनी चाहिये।

भारत में भी पहले कांग्रेसी देहात-सुधार कमेटी ने ऐसे ही प्रश्न को दृष्टि में रखा था। उसने भूमि सम्बन्धी शासन व्यवस्था की अधिकतम अराजनीतिकता की सिफारिश की थी। हमारी समझ से जब तक भूमि समिति का व्यवस्था सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी और जब तक वह पर्याप्त परिणाम में राजनीतिक उत्थान पतन से तथा एक मंत्री की सनकों से मुक्त नहीं रहेगी तब तक योजना में किसी प्रकार का तारतम्य हो ही नहीं सकता। एक विस्तृत पुस्तक "योजना अनित समाज" में जो १६३५ में प्रकाशित हुई थी "योजनाओं के राजनीतिक परिणाम" के अध्याय में कहा गया था—"सुधारवादी और परम्परावादी अब इस बात से सहमत हों कि सार्वजनिक संस्थाओं की व्यवस्था शुद्ध कतम्य पालन के आधार पर होनी चाहिये और ऐसा होने से लोकसभा या किसी भी प्रतिनिधि सभा का कार्य केवल दूरस्थ समय पर अप्रत्यक्ष रूप से साधारण नीति निर्धारित करने का रह जायेगा। यह निष्कर्ष भले ही बड़े अर्थ का है, परन्तु कदापि अस्वाभाविक नहीं है।

अन्य देशों ने भी इस साधारण दृष्टिकोण को विशेष रूप से स्वीकार कर लिया है। संयुक्त राष्ट्र में सबसे महत्व का प्रयोग वहाँ की टेनिसी घाटी योजना में प्रारम्भ हुआ था। वहाँ का क्षेत्र फल ४१ वर्ग मील है और वहाँ की आबादी २५ लाख की है। १६३३ के कानून के अन्तर्गत टेनिसी घाटी की अधिकृत सभा की संस्थापना बहुयोगी योजना के उद्देश्य को लेकर हुई थी। जिन आदर्शों को लेकर इसकी स्थापना एक सार्वजनिक संस्था के रूप में हुई थी उनका स्वरूप था—

१—उसकी व्यवस्था तथा व्यापार की कार्य प्रणाली से सम्बन्धी और राजनीति दूर हो जावे।

२—संस्था घट-बढ़ सके या जब जैसी चाहे बदली जा सके।

३—उसकी नीति तथा कर्मठता में तारतम्य बना रहे। परन्तु उसके काम का ढंग प्रजातांत्रीय बना रहे।

टी० वी० ए० का निर्माण इस प्रकार का हुआ था कि वह अपने निर्णय कार्यस्थल पर ही कर सके जो जनता और उसकी समस्याओं के समीप हो। क्योंकि राष्ट्रीय कार्यक्रम के अनुकूल स्थानीय आवश्यकताओं का देखते हुए वास्तव में कार्यस्थल पर ही आपसी समझौते तथा घट-बढ़ की प्रक्रिया सुविधा से होती है। कार्यस्थल में ही जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। मेरी समझ के अनुसार कार्यस्थल पर निश्चय करने की शक्ति ही किसी भी विकेन्द्रीय कार्यक्रम की जान है। इसके बिना किसी भी शासन-व्यवस्था की नींव पक्की नहीं होगी। कार्यस्थल में परिवर्तनशीलता का ज्ञान तब हुआ था जब यह खोज की जा रही थी कि राष्ट्रीय तथा स्थानीय तथा प्रान्तीय संस्थाओं के साथ कहाँ तक सक्रिय साझेदारी स्वीकार कर सकती है। राष्ट्रीय सरकार की ऐसी कोई इच्छा नहीं थी कि वह घाटी के सामाजिक व राजनीतिक जीवन पर कोई ऐसी योजना ऊपर से लाद दे जो वहाँ की जनता को स्वीकार न हो अपना कार्यक्रम उसने अनेकानेक समझौतों के द्वारा पूरा किया। एक प्रकार के ठेके द्वारा जो काम करने वाला स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओं के बीच निश्चित किये जाते थे। उदाहरण के लिये १९३९ में ३५०० ग्राहकों को विद्युत शक्ति की पूर्ति १०० म्यूनिसिपैल्टियों तथा सरकारी समितियों के माध्यम द्वारा की गयी थी। खेतों पर विद्युत के सैकड़ों उपयोगों के प्रयोग किये गये

तथा उन्हें प्रोत्साहित किया गया। किन्तु सामाजिक जीवन की प्रतिनिधि संस्थाओं के साथ इसके पहले समझौता कर लिया गया था। इस प्रकार समझौतों द्वारा विकास नित्य प्रति बढ़ता जाता क्रम बन जाता है। सार्वजनिक संस्थायें प्रगति के इस क्रम का प्रारम्भ मात्र हैं।

अभी दो कठिन प्रश्न बाकी हैं। पहला यह कि क्या संभव है कि मनुष्य कुछ क्षेत्रों में सहयोग दें और कुछ में विरोध करें? क्या एक या दूसरी प्रवृत्ति सदा ही बढ़ा हुआ रूप नहीं दिखायेगी। राजनैतिक तत्त्वों की विवेचना करते समय किसी योजना के गहन अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि उसका प्रमुख लक्ष्य है ऐसे सहयोग-प्रवृत्ति के व्यक्तियों का समूह निर्मित करना जो आलोचनात्मक मस्तिष्क के नहीं हैं। यह नये ढंग का अनुशासन केवल प्रयोग और परिश्रम द्वारा ही सफल होगा। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या एक दल इस सिद्धान्त को लेकर कार्य करने लगे तो वह सफल होगा? मैं समझता हूँ ऐसा सम्भव है। भारत में बहुत बड़ा जनमत बहुत कुछ इसी प्रकार विचार कर रहा है। किसी बौद्धिक विचार-विमर्ष के कारण नहीं बल्कि स्वाभाविक साधारण ज्ञान परपरागत बुद्धि के फलस्वरूप। इस संघर्ष के कारण कुछ लोगों का कहना है कि राजनीति पर महत्व आने का वातावरण हो गया है। यह नीति यदि भलीभाँति समझायी जावे तो राजनीति ज्ञान और सुधार की महाशक्ति बन सकती है। एक समाज के राजनैतिक विचार जनता के मनोभावों और स्वभाव द्वारा ही ज्ञात होते हैं।

सावधानी से उपाय तथा नई प्रणाली बताने के उपरान्त भी हमारे पिछड़े देश में आर्थिक विकास की योजनायें प्रजातंत्रीय और सहयोगी ढाँचे पर बनानी होंगी। यह प्रभाव

शीघ्रता प्राप्त करने के लिये परम्परागत शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त को अब स्वीकार करना चाहिए। एडमण्ड ने कहा था कि स्वतन्त्रता, सीमित होनी चाहिए ताकि वह बनी रह सके, उसी प्रकार योजना के अन्तर्गत स्वतन्त्रता न केवल सीमित होगी बल्कि उसका उपयोग भी किया जाना चाहिए, ताकि यह बनी रहे या उसका लाभ उठाया सके।

✽

राजनीति का महत्व

धार्मिक भावनाओं और प्रजातन्त्रवाद के सम्बन्धों की सैद्धान्तिक विवेचना तथा लोकसभाओं और धर्मसंघों जैसी संस्थाओं का अध्ययन दोनों ही एक मात्र यही संकेत करते हैं कि हमें राजनीतिक कार्य को सहयोग के रूप में और विवादास्पद प्रश्नों को विचार-विनिमय तथा उचित विरोधी के रूप में ही करना चाहिये। यह हो सकता है कि किसी के लिये किसी विशेष क्षेत्र में सहयोग देना या दृढ़ विरोध करना कठिन प्रमाणित हो। बहुत सम्भव है कि ऐसा द्विविध सम्बन्ध किसी समुदाय वर्ग या दल के पवित्र आत्मभिमान को बुरी तरह ठेस पहुँचाये। यह सम्भव है कि उनके धार्मिक और सामाजिक विचारों का ठेस लगे।

आज की सभ्यता ऐसी भावना के पक्ष में है जो विचार और कार्य के विभिन्न क्षेत्र में समयानुसार सहयोग और विरोध दोनों का एक साथ प्रकट करने में समर्थ हो। राजनीति को राष्ट्रों का जीवन माना जाता है। बहुत प्राचीन काल से इसका महत्व स्वीकार किया जाता रहा है। संस्कृत साहित्य में इसे राजधर्म कहा गया है। महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर से इसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "सभी धर्मों का पालन होता है। राजधर्म में ही सब त्याग है और त्याग को सर्वोत्तम और प्राचीन धर्म कहते हैं। सब विद्यायें राजधर्म में हैं और सब लोकों का उसमें समावेश है।" यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने राजनीति को सब शास्त्रों में प्रधान बताया है। आचार्य कौटिल्य ने अर्थनीति में कहा है कि 'इससे म

मिली हुई वस्तु मिलती है, मिली हुई की रक्षा होती है और रक्षित वस्तु की वृद्धि होती है। संसार का निर्वाह इसी के सहारे होता है।

मध्यकालीन तथा आधुनिक अनेक लेखकों ने राजनीति का बहुत गुणगान किया है। जिनों ही ने इसे अन्य शास्त्रों से श्रेष्ठ बताया है। उन्होंने इसे सभ्यता की कसौटी तथा उसकी रक्षा का एक मात्र साधन माना है। उनका कथन है कि हमारे सामाजिक संगठन में इसका स्थान शरीर में प्राण की तरह है। हमारे जीवन का सुख-दुख इसके अच्छे या बुरे होने पर निर्भर है। अगर राजनीति ठीक है तो हमारी जीवन-यात्रा अच्छी तरह हो जायगी। राजनीति दूषित होने की दशा में हमारी जीवन नौका गहरे दल-दल में फँस जायगी। देश में भुखमरी, कगाली, महामारी छा जायगी और जनता भीतर की अशान्ति और बाहरी संघर्ष का शिकार हो जायगी।

विश्व अधिकाधिक आर्थिक योजना की ओर बढ़ रहा है। यद्यपि आर्थिक दृष्टिकोण से योजना की समस्याओं पर पर्याप्त विचार किया जा रहा है किन्तु राजनीति पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है इस बात को अच्छी तरह भुला दिया गया है। योजनाओं की सफलता उन राष्ट्रों में अधिकांशतः पाई जाती है जहाँ की सरकारें अप्रजातन्त्रीय या प्रजातन्त्र विरोधी हैं तथा राजतन्त्रात्मक या सैनिक शासन की स्थिति को प्रोत्साहन देती हैं। सोवियत रूस और साम्राज्यवादी जापान इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं क्योंकि ये ही ऐसे देश हैं जहाँ आर्थिक विकास की गति अत्यधिक तीव्र रही है।

तानाशाही बनाम प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र के पूर्व परिचित विषय पर या इसके वर्तमान रूपान्तरण एवं एकदलीय अथवा

बहुदलीय सरकार के महत्व तथा विशेषता पर जो आज तर्कवितर्क चल रहे हैं वे बताते हैं कि हमें अभी और कहां तक बढ़ना है। कठिन विषयों के सम्बन्ध में वस्तु विषयक तर्कवितर्क की भारी आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि वर्तमान राजनीति में अनेक ऐसी बातों का समावेश होता है जो नैतिकता की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं। शासक और राष्ट्र के सूत्रधार राज्य की रक्षा राज्य विस्तार और राज्य के विकास आदि की बातें कहते हुए लोगों को युद्धों में मरवाते हैं और अन्य प्रकार से जनता दमन करते रहते हैं। समय-समय पर जनता के विकास की तो बात ही क्या उसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण होता रहता है। फिर वर्तमान राज्य व्यवस्था में एक पक्ष विशेष का जिसे बहुमत कहा जाता है हित होता है और दूसरे पक्ष की अवहेलना होती है।

राजनीतिक और आर्थिक योजनाओं के बीच का क्षेत्र अभी तक अछूता है और विकासोन्मुख वास्तविकता एवं नवीन अनुभवों के प्रसंग के बिना ही दोनों पक्षों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क किये जा रहे हैं। योजना के द्वारा जब कि नियंत्रित की आम वाली अर्थनीति का विकास अपूर्ण होता है और इसके लिये विरोध दबाव या बोझ का सामना करना पड़ता है तब आर्थिक बाधिन वस्तु ही गहरे खतरे का कारण बन जाती है।

जब हम राजनीतिक और आर्थिक परम्पराओं की तुलना करते हैं तो हमें विरोध पक्ष के नये कर्तव्यों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। योजना काल के पूर्व प्रजातंत्रीय प्रथा में प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सब स्थानीय स्वार्थों के लिये सच्चे हृदय से लड़ता था यह जान कर कि अनियंत्रित राजनीतिक शक्तियाँ

अन्त में सन्तुलन स्थापित करेंगी। परन्तु जिस प्रकार विशाल औद्योगिक संस्थायें एवं पूर्व स्थापित महत्व के स्वार्थ आधुनिक व्यावसायिक बाजारों को स्वतन्त्र एवं व्यवस्थित होने देने में बाधक होती हैं उसी प्रकार यदि राजनीतिक दल सहयोगिता को हानि पहुँचा कर प्रतियोगिता पर जोर देते हैं तो प्रजातन्त्र वादी समाज अक्षुण्ण नहीं रह सकते।

श्रीमती बारबरा वुटन ने अपनी श्रेष्ठ पुस्तक में उपयुक्त विचारों की पुष्टि की है और नवीन ढाँचे का कुछ अधिक विस्तार से वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में उनके कुछ सकेत इस प्रकार हैं—

१—एक जटिल समाज में, जहाँ की प्रत्येक सामाजिक नीति किसी न किसी को कष्ट देती ही है या किसी न किसी को अच्छी लगती है सामाजिक भलाई का विचार सबके सहयोग पर न कि सबकी रुचि पर किया जा सकता है।

२—सामाजिक कार्य में मार्ग और उद्देश्य का भेद स्पष्ट नहीं है न ऐसा करना सरल ही है। राजनीतिक नेता गण इस भेद के विषय में किंचित भी चिन्तित नहीं हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि किसी विशिष्ट मार्ग या साधन के प्रति इतनी भक्ति प्रकट की जाती है जितनी कि उसके लक्ष्य के प्रति नहीं। राजनीतिक चालें जब तक प्रत्येक असहयोग को बढ़ाना तथा उससे लाभ उठाना तथा प्रत्येक सहयोग को अनदेखा कर देना अथवा महत्त्व न देना चाहती हैं, तब तक सार्वजनिक मत क्या है यह जानना असम्भव है तथा हम समझौते पर विश्वास करने की अपेक्षा उसे तुच्छ ही मानते रहेंगे।

३—सार्वजनिक समझौता क्या है? अंकगणित के सिद्धान्त इस विषय में विश्वास योग्य नहीं हैं। इसकी वास्तविक कसौटी केवल संख्या पर आधारित न होकर सुव्यवस्थित राजनीतिक

दलों के मतों पर रहनी चाहिये। एक राजनीतिक प्रजातन्त्रवाद में सार्वजनिक दल एक मत हों। इस समझौते के आधार पर योजना तभी सम्भव हो सकती है जब कि सभी राजनीतिक दल सामूहिक रूप में अपने उन आदर्शों का स्पष्टीकरण करने को तैयार हों जिन्हें उन्होंने स्वीकार किया है। इसका मतलब है एक नये प्रकार की विभिन्न दल की सभा या भिन्न दलों के नेताओं की सभा जो भेद बढ़ाने की अपेक्षा समझौते का लाभ में हों। इस प्रकार के नवीन प्रयासों का लक्ष्य साफ रूप से सहयोग की रूप-रेखा बनाने वाला होना चाहिये न कि उसे घटाने या बढ़ाने वाला। किसी भी समय सहयोग या असहयोग का होना वर्तमान वास्तविकतायें हैं। अतः ऐसी मुलाकातें जिनका लक्ष्य केवल सुलझे और उलझे प्रश्नों का पता लगाना है, केवल तथ्य खोजी ही रहनी चाहिये। यह महत्वपूर्ण बात अवश्य है कि जो विषय बहस के योग्य हैं उन पर अवश्य बहस होनी चाहिये पर साथ ही यह भी जरूरी है कि व्यर्थ के विषय बहस के लिये खड़े न किये जायँ, जो केवल बात बढ़ाने के लिये या काल्पनिक हों इसका यह मतलब है कि राजनीतिज्ञों में समझौता करने का साहस हो।

४—धार्मिक रूप में आजकल के स्थापित राजनीतिक दलों के प्रति जनता के उत्साह में कमी हो गयी है। परम्परागत युद्ध के नारे जिन पर कि इतने अधिक व्यक्ति एक साथ ही चारों ओर से कट मरे, आधुनिक समय में कोई सिर पैर नहीं रखते। किसी एक सामाजिक दल की भलाई को ही सार्वजनिक भलाई का नाम नहीं देना चाहिये। किसी भी समय सार्वजनिक भलाई केवल उन्हीं आदर्शों पर निर्मित हो सकती है, जिनके सम्बन्ध में वास्तव में जन साधारण से समझौता हो।

गांधी जी ने कहा है कि 'सर्वव्यापी और नित्य सत्य के

साक्षात् दर्शन करने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर की सृष्टि के छोटे से छोटे प्राणी से प्रेम करे, ठीक उसी प्रकार जैसे कि वह अपने आप से करता है। जो मनुष्य इस बात का प्रयत्न करता है वह जीवन के किसी क्षेत्र से अपने आपको पृथक नहीं कर सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य की साधना ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा किया। इसी प्रकार संसार के मिट जाने वाले राज्य की मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं तो स्वर्ग के राज्य के लिये—प्रयत्नशील हूँ जिसका दूसरा नाम आध्यात्मिक मुक्ति है। मेरे लिये मुक्ति का मार्ग मेरे देश और मनुष्य जाति की निरन्तर सेवा का मार्ग है। प्रत्येक प्राणी के साथ मैं आत्म सात् होना चाहता हूँ। गीता के शब्दों में मित्र और शत्रु दोनों के ही साथ शान्ति पूर्वक रहना चाहता हूँ। अस्तु मेरी देशभक्ति अनन्त स्वतन्त्रता और शान्ति की भूमि की ओर मेरी यात्रा में एक अवस्था मात्र है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मेरे लिये धर्म से पृथक कोई राजनीति नहीं है। राजनीति धर्म की अनु गामिनी है। धर्म से शून्य राजनीति मृत्यु का एक जाल है क्योंकि उससे अपनी आत्मा का हनन होता है।"

इस प्रकार गांधी जी राजनीति में धर्म अथवा सत्य का समा वेश करते थे। उनकी यह बात अधिकांश पश्चिमी लोगों का ही नहीं अनेक भारतीय विचारकों को भी बहुत अटपटी लगी। पर गांधी जी दृढ़ रहे जब कि लोकमान्य तिलक का मत था कि "राज नीति साधुओं का खेल नहीं है" गांधी जी ने कहा कि 'राज नीति केवल साधुओं का काम है।' साधुओं से मेरा मतलब इस शब्द से सूचित अच्छे से अच्छे व्यक्ति से है। इसी प्रकार जब रवीन्द्रनाथ टागुर ने कहा कि "धर्म की इस महान निधि को राजनीति की इस कमजोर नौका में जो दलबन्दी की लहरों से

टकराती रहती है, मत रखो।" गांधी जी ने जवाब में लिखा था कि "बिना धर्म की राजनीति एक मुर्दा है, जिसको सिवा जला देने के और कोई उपयोग नहीं हो सकता।" स्मरण रहे कि गांधी जी के विचार से धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ में नहीं है। उसका अर्थ है विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था में श्रद्धा।

कोई कहता है कि गांधी जी पूँजीपतियों जमींदारों राजा-महाराजाओं के मित्र थे तो उसे भी वह मान्य करते थे और इससे उल्टा कोई कहता है कि दरिद्रनारायण के सच्चे सेवक हैं और शुद्ध साम्यवादी हैं तो उसे भी वे ठीक समझते थे। अगर कोई कहता है कि सनातनी वैष्णव या सच्चे बनिये हैं तो यह बात भी उन्हें मंजूर थी क्योंकि ऐसे सब कथन लोगों को अपने सिद्धान्त को उनकी मदद करते थे।

★

गांधीजी की अहिंसात्मक क्रांति

अभी हमलोगों ने गांधी प्रणीत मूल्य-परिवर्तन की क्रांति देखी। उस क्रांति का उद्देश्य राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और समत्व युक्त समाज रचना की नींव डालना था। आज तक मानवीय इतिहास में सत्कार्य के लिये और खास कर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये हिंसा करना न्याययुक्त और नीतिविहित माना गया है। यहाँ तक की आतंकवादी हिंसा भी स्वतंत्रता के लिये अगर प्रशस्त नहीं तो क्षम्य मानी गयी है।

आज के इस मशीनयुग में महात्मा गांधी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संसार के किसानों में ग्रामीण व्यवसायों और घरेलू उद्योग-धन्धों को बड़े पैमाने पर पुनर्जीवित किया है। उन्होंने इसे इसलिये शुरू किया था कि किसानों को साल के उन दिनों में भी कुछ काम मिल जाय जब कि उनके खेतों पर कोई काम नहीं होता और वे घर पर खाली बैठे रहते हैं। भारतवर्ष में यह समय साल में चार या पाँच महीने रहता है। पहले जमाने में मशीन नहीं थी। कातने बुनने और अन्य ग्रामीण व्यवसायों में परिवार के प्रत्येक आदमी, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी लगे रहते थे। रोजमर्रा के काम के लिये घर घर ही खासा मजबूत कपड़ा कात और बुन लिया जाता था। आज स्थिति यह है कि मनुष्य जाति का कम से कम आधा भाग ऐसा है जो

इस प्रकार की सामयिक बेकारी से पीड़ित हैं। इसका एक बड़ा कारण मशीन के कपड़े का बड़ी तादाद में पैदा होना है जिसने अपने सस्तेपन के कारण धीरे-धीरे गृह-व्यवसायों और उद्योग-धन्धों का शोषण कर दिया है। गांधीजी पहले व्यक्ति थे जो इस बात में पूर्ण विश्वास रखते थे कि घरेलू धन्धों का पुनरुज्जीवन अब भी सम्भव है और इनसे ग्रामीणों को न सिर्फ शारीरिक बल्कि नैतिक मृत्यु की पीड़ा से भी बचाया जा सकता है। उन्हें इस दिशा में लाखों हृदयों में आशा का संचार करने में कामयाबी भी मिली। उनकी प्रतिभा हिन्दुस्तान की चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं रही। चीन में युद्ध के प्रभाव के कारण किसानों ने स्वयं ही रुई बोना, सूत कातना और बुनना शुरू किया। यह भी बिल्कुल सम्भव है कि कनाडा और दूसरे अधिक ठण्डे उत्तरी प्रदेशों के लम्बे और अन्धेरे दिनों में इस प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धे फिर चल पड़ें।

गाँवों के देश भारत में बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण जमीन का बटवारा समय की एक जोरदार माँग बन गयी है। पचास वर्ष पूर्व गाँवों में कुछ ही लोग बिना जमीन के थे। कुछ न कुछ जमीन सबके पास थी। उसी समय से किसानों से जमीन छीनने का काम तेजी से आगे बढ़ा है। बड़े जमींदार शोषण का यह कार्य करने में असमर्थ रहे। इस काम को शहरों में रहनेवाले व्यवसायियों ने अपने मुनाफे से अर्जित धन से किया। इसका नतीजा यह हुआ कि आज गाँवों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या उन लोगों की अपेक्षा अधिक है जिनके पास जमीन है और भूमिहीन लोग साल के बहुत से महीनों में बेकार रहते हैं। इस प्रकार जमींदार और शहरी अमीरों द्वारा किसान की जमीन हड़प

की गयी और गाँवों में रोजगारी के रास्ते सिकुड़ते गये। पश्चिम की मशीनों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के कारण हमारे छोटे उद्योगों का ह्रास होता गया। दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब कि हमारे देश में अपनी सरकार कायम हो गयी ह्रास का काम तेजी से चलता रहा। हमारे देश में करघा-उद्योग को देशी और विदेशी कारखानों के बने उत्पादनों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। आज स्थिति ऐसी है कि हमारे पिछड़े और ग्राम और ग्रामतन्त्र के पुनर्निर्माण के लिये यदि सत्ता स्वयं इस अपने विचारों में मौलिक परिवर्तन नहीं करती तो गृह उद्योग का पुनरुद्धार नहीं हो सकता।

पञ्चवर्षीय योजना में भी पूँजीवादी उत्पादन पर ही ज्यादा जोर है। इसलिये जिस सुधारक के पास कोई राजनैतिक सत्ता न हो या सरकारी मशीनरी पर नियंत्रण न हो उसे जमीन की ओर मुड़ना पड़ेगा। संत विनोबा यही कर रहे हैं। उन्होंने एक तरीका निकाला है जिसके जरिये बिना सरकारी या कानूनी कार्यवाही के भूमिहीनों को भूमि मिल सकती है। यही 'भूमिदान' आन्दोलन की पृष्ठभूमि है। यह भूमि के पुनर्वितरण की दिशा में चलनेवाला क्रान्तिकारी आन्दोलन है। यह देश की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में और आर्थिक समता की दिशा में एक कदम है जिसका रास्ता अहिंसा का है। इस प्रकार विनोबा जी गांधीजी के उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं। इस प्रकार भूदान आन्दोलन युग की भावना के साथ है और युग की पुकार है समता।'

अहिंसा का प्रतिपादन महात्मा जी ने बड़े मौलिक तौर पर किया है। उसके द्वारा उन्होंने संसार को यह दिखा दिया है कि आज महज स्वेच्छापूर्ण कष्ट सहन के बल पर किये गये

सामूहिक नैतिक प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह द्वारा युद्ध की हिंसा पर भी विजय हो सकती है। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें इस दिशा में गौरवपूर्ण विजय मिली। ट्रान्सवाल में जब उन्होंने ड्रेकन-बर्ग की पहाड़ियों को पार करके अपनी सत्याग्रही फौज का संचालन किया तो जनरल स्मट्स ने उनकी व सब शर्तें मान ली जो उन्होंने पेश की थीं। इतना ही नहीं जनरल स्मट्स ने यह भी स्वीकार किया कि नैतिक लड़ाई का यह तरीका जिसमें कोई भी हिंसात्मक हथियार प्रयुक्त नहीं किया जाता ऐसा है कि जिसका सामना नहीं किया जा सकता।

महात्मा गांधी अपनी सर्वोदय विचारधारा का क्रान्तिकारी सन्देश लेकर जनता के बीच में आए थे। उन्होंने समाज रचना का नया स्वरूप और नयी योजना हमारे सामने रखी थी। गांधी जी की विचारधाराओं के विश्लेषण के पहले यह देखना पड़ेगा कि गांधी जी एक अर्थशास्त्री थे या नहीं। चूंकि प्रत्येक समाज रचना का आर्थिक दृष्टिकोण परखना पहली आवश्यकता है।

गांधी जी अन्य अर्थशास्त्रियों की भाँति 'कम काम ज्यादा दाम या सस्ता खरीदो महँगा बेचो' के आधार के अमानवीय एकांगी रूप को अपनाने वाले नहीं थे। उन्होंने मानवीय अर्थशास्त्रियों की परम्परा अपनायी है। मानव जीवन के समस्त विकास तथा उसके राजनैतिक आर्थिक नैतिक एवं व्यक्तिगत पहलू का पूर्ण ध्यान गांधी जी का था। गांधी जी का कोई भी आर्थिक सिद्धांत हवाई नहीं था। उनके सारे विचार पक्के आधार से पुष्ट होकर निकले थे। गांधी जी भारतीय परम्परा धर्म अर्थ काम और मोक्ष के पोषक होने के साथ-साथ पश्चिमी

परम्परा के अथशास्त्रियों के भी पोषक थे। फ्रान्स के प्रगतिवादियों की भाँति इन्होंने भी कृषि को सर्वोत्तम उत्पादक पेशा माना था। उनके सिद्धान्त के अनुसार उसका विकास तथा सम्वर्धन समाज को सम्पत्तिशाली बनाता है। शारीरिक श्रम की प्रधानता का महत्व ही इनके विचारों का दृढ़ पहलू है।

सामाजिक तथा मानवीय अर्थशास्त्र की जिन विचार-धाराओं को रस्किन और कार्लाइल ने प्रस्तुत किया उसका गांधी जी ने पोषण किया। मानवीय अर्थशास्त्र के सृजन के लिये इन्होंने मानव के नैतिक, सामाजिक व्यक्तिगत, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन का बड़ा सुन्दर समन्वय किया है। इन्होंने अर्थशास्त्र को एक ऐसा शास्त्र माना है जो मानव के शारीरिक और आध्यात्मिक भूख की पुष्टि करता है। इसी लिए गांधी जी कल्याणवादी अर्थशास्त्री और सामाजिक वैज्ञानिक कहलाते हैं। वे नैतिक पहलू को साथ रखते हुए साध्य तथा साधन की पवित्रता का ध्यान प्रतिक्षण रखते थे। प्रत्येक व्यक्ति पूरी नैतिकता के साथ अपने आर्थिक सुधार की योजना स्वयं प्रस्तुत करे यही इनके विचार थे। सिसमंडी ने नैतिक तत्व के महत्व को समाज में स्थापित करने का प्रयास किया था। गांधी जी ने भी सच्चे अर्थशास्त्री की भाँति इसी पहलू को प्रधानता दी है। प्रारुधन ने 'न्याय की विस्तृत व्याख्या' में सम्पत्ति को चोरी माना है। गांधी जी ने सम्पत्ति को अपने अहिंसक शब्दावली के साथ चोरी न कह कर धरोहरदारी "ट्रस्टी शिप" का नाम दिया है। जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट की भाँति गांधी जी ने भी संरक्षण नीति की पुष्टि की है।

कल्याणकारी समाज का लक्ष्य मानवीय अहिंसात्मक समाज की रचना करना है। मानवीय आवश्यकतायें न्यूनतम तथा

स्वावलम्बन ही तथा "सादा जीवन उच्च विचार" की भावना को गांधी जी ने सदा आगे रखा। ये विचार मार्क्स के विचार के अनुरूप हैं। जिसने "भौतिक आवश्यकताओं पर नियन्त्रण ही आर्थिक स्वतंत्रता एवं पूर्णता की प्राप्ति करा सकता है" के सिद्धांत का समर्थन किया था।

गांधी जी समाजवादी अर्थशास्त्र, कल्याणकारी अर्थशास्त्र तथा मानवीय अर्थशास्त्र की कल्पना करने वाले अर्थशास्त्र के सुलझे हुए विद्वान थे। उन्होंने अर्थशास्त्र को नया भाग प्रदान किया। गांधी जी ने मार्क्स के आर्थिक विचारधारा में अधिक व्यापकता तथा मानवता का सृजन किया। साम्य तथा साधन की पवित्रता का सन्देश देकर इन्होंने समाज को "शान्ति में ही सुख" का सन्देश दिया। और इस तरह से अपनी विचार-धारा द्वारा गांधी जी ने बेकारी, शोषण, दरिद्रता, वितरण की विषमता, प्रतिस्पर्धा तथा लिप्सा के अन्त का बहुत सरल दृष्टिकोण सामने रखा। सामाजिक रोगों के सबसे सफल निदान-कर्ता के रूप में गांधी जी के विचार जनता के सम्मुख आये। विश्व में गांधी जी की भाँति कोई भी ऐसा महापुरुष पुरुष नहीं हुआ जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का पण्डित हो। मध्यकालीन भूमि-व्यवस्था, दूषित सामाजिक पद्धति, जनता की दरिद्रता तथा ह्रासोन्मुख उद्योग आदि विषम स्थितियों को सामने रख कर उन्होंने अपना काम निश्चित किया तथा अर्थशास्त्र के उपभोग उत्पादन विनिमय वितरण तथा राजस्व आदि पर उन्होंने पूर्ण प्रकाश डाला है। इसलिए मानना पड़ता है कि गांधी जी एक बहुत बड़े अर्थशास्त्री थे।

गांधी जी का यह मत था कि जिस प्रकार व्यक्ति के चरित्र का गठन होता है, उसी प्रकार समाज का गठन निर्भर करता है।

इसलिए उन्होंने पहले गरीबों की समस्या ली। पहले नमक कानून का विरोध किया और इसके उपरान्त रचनात्मक कार्यक्रम में खादी तथा ग्रामोद्योग का समावेश किया। मानव के लिए उन्होंने भौतिक साधन की आवश्यकता मानी अवश्य किन्तु कृषि तथा उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया। इस व्यवस्था से पूँजीवादी-सामन्तवादी स्वामित्व की समाप्ति होगी तथा प्रत्येक व्यक्ति मुक्त वातावरण में अपने आर्थिक जीवन का निर्माण कर सकेगा। उसी का यन्त्र होगा उसी के साधन होंगे उसी का संचालक मस्तिष्क होगा और उसी के अनुकूल कार्य होंगे।

गांधी जी की समाज-व्यवस्था और मानव विकास का चित्र विकेन्द्रीय उद्योगों आर्थिक तथा राजनैतिक दासता से मुक्ति समानता स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्र से ओतप्रोत एक ऐसे जीवन की स्थापना है जिसमें मनुष्य सदाचार पूर्ण और आध्यात्मिक जीवन बिता सके।

समष्टिवादी भी प्रजा को स्वतन्त्र तथा समाज को शान्तिपूर्ण बनाने के लिए संसार में शासनहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। लेकिन उनका रास्ता गांधी जी से भिन्न है। ये शासन-यन्त्र को उत्तरोत्तर संगठित करके ही शासन को विघटित करना चाहते हैं। गांधी जी का कहना है कि हमें जिस ओर जाना है हमारी दिशा भी उसी ओर होनी चाहिये। प्रतिकूल दिशा में चलकर कोई अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता। शासन को समाप्त करना है तो यह काम संगठित करने से नहीं बनेगा। विघटन का काम तो विघटन के रास्ते से ही होगा। यही कारण है कि गांधी जी 'नयी तालीम' के द्वारा जनता को उसकी आवश्यकता की पूर्ति तथा समाज की व्यवस्था दोनों के ही लिए स्वावलम्बन का अभ्यास करा कर

शासन के दायरे को क्रमशः घटाना चाहते थे। ताकि अन्त में वह घेरा बिल्कुल समाप्त हो जाय और जनता शासन से मुक्त होकर पूर्णतः स्वावलम्बी हो जाय। इस तरीके से काम यह होता है कि इस विघटन की प्रगति के साथ-साथ जनता की स्वतंत्रता में प्रगति होती रहती है और अन्त में वह पूर्णतः स्वतन्त्र हो जाती है।

शासन को क्रमशः अधिकाधिक संघटित करने का प्रयत्न जनता की स्वतंत्रता को क्रमशः घटाता जायेगा। साधारण विचारक की यह बात समझ से परे है कि अति संगठित केन्द्रीय शासन तब कब और कैसे अपना काम समाप्त करके अपने आप सूखकर प्रजा को मुक्त कर सकेगा। कहा जा सकता है कि जब यह केन्द्रीय शासन पूर्णत्व को प्राप्त होगा तो वह प्रकृति के नियमानुसार अन्त को पंचतत्त्व को प्राप्त हो जायेगा। यह वैज्ञानिक नियम हर चीज में लागू होता है। लेकिन आजकल की वैज्ञानिक विषमता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक वैज्ञानिक आदर्श स्थिति है जो सम्भवतः समाज की अन्तिम स्थिति होगी और उसके बाद समाज का कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में प्रजा मुक्त होकर ही क्या करेगी।

जनता को इस बात में दिलचस्पी नहीं होती कि किसी अनन्त कालीन आदर्श स्थिति में उसकी क्या दशा होगी। बल्कि उसे तो इस बात में दिलचस्पी होती है कि उस आदर्श तक पहुँचने की राह में उसकी क्या अवस्था रहेगी। वस्तुतः आदर्श तो रेखाबिन्दु जैसी कल्पना की वस्तु है, दिखाई देने की नहीं।

इस तरह गांधी और मार्क्स की योजनाओं का अन्तर अपने-आप समझ में आ जाता है। समष्टिवादी योजना में प्रजा संगठित केन्द्र की वज्र-मुष्टि में दबी पड़ी रहती है परन्तु गांधी जी की योजना में वह शासन को तोड़ती हुई तथा अपनी स्वतन्त्रता को स्थापित करती हुई आगे बढ़ती है।

सर्वोदय

मानव की आदि आवश्यकता उसकी भौतिक आवश्यकता है जिससे वह जीवित रह सके। दूसरी आवश्यकता आध्यात्मिक आवश्यकता है जिससे वह विकसित और अग्रसर हो सके। मानव मात्र को दोनों की प्राप्ति और इस प्रकार मानव की समग्र उन्नति ही सर्वोदय है। सर्वोदय की व्याख्या करते समय हमें गांधी जी द्वारा रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' की भावना का स्पष्टीकरण सामने रखना पड़ेगा। रस्किन की विचारधारा के निम्न-सूत्र हैं।

१—व्यक्ति का श्रेय समष्टि के श्रेय में निहित है।

२—वकील के काम की कीमत और नाई के काम की कीमत बराबर ही है। क्योंकि हर एक को अपने व्यवसाय में से अपनी जीविका चलाने का समान अधिकार है।

३—मजदूर या किसान का अथवा कारीगर का ही जीवन सच्चा और सर्वोत्कृष्ट है।

सर्वोदय शब्द हमारी भारतीय संस्कृति का मूल है। और यह हमारे ऊँचे आदर्शों को प्राचीन काल से प्रेरणा दता रहा है। जैनाचार्य समन्त भद्र ने दो हजार वर्ष पूर्व इस भावना को व्यक्त करते हुवे कहा है—

सर्वा पदा मंत कर निरतं सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव।

गीता में योगी और भक्त के लक्षण में कहा गया है वह "सर्व भूत हिते रता" होता है। समस्त सन्तों तथा धर्म संस्थापकों ने इस आदर्श को सर्वश्रेष्ठ माना है। ऋषियों की सहस्त्रों वर्ष पुरानी प्रार्थना है।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु। सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।

यह श्लोक गांधी जी का प्रणम्य मंत्र है। अहिंसा और शांति के आधार पर स्थापित वर्ग-विहीन जाति-विहीन शोषण विहीन तथा एक ऐसे समाज की स्थापना जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समाज को सर्वांगीण विकास करने का अवसर प्राप्त हो सकता है यही सर्वोदय समाज का साध्य है। अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण का पश्चिमी सिद्धान्त सर्वोदय नहीं मानता है। जिस प्रकार एक कुटुम्ब का मालिक कुटुम्ब के सब सदस्यों का कल्याण चाहता है उसी प्रकार सर्वोदय सबके कल्याण में विश्वास करता है। मनुष्य का जीवन समाज के पायण से ओत-प्रोत है। अतः उसके कार्यकलापों का हेतु भी समाज सेवा समाज-धारण और समाज समृद्धि होना चाहिये। समाज को शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्रदान करने के लिए शरीर-बल और बुद्धि-बल दोनों की मान्यतायें समान होनी चाहिए। दोनों का सामाजिक और आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए। आर्थिक पूंजीवाद की अपेक्षा बौद्धिक पूंजीवाद समाज के लिए अधिक खतरनाक है। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने ऐसा विधान बनाया था कि बुद्धिजीवी लोग बुद्धि का विक्रय न करें। बल्कि अस्तेय और अपरिग्रह का व्रत लें और इस तरह से समाज को एक सूत्र में बाँधें। सर्वोदय की प्राप्ति साम्ययोग की राह से होगी। व्यक्तियों के शारीरिक गुण तथा सामर्थ्य में कितनी ही भिन्नता क्यों न हो परन्तु सभी मनुष्य नैतिक तथ्य तथा सत्य की अनुभूति में समान और एक हैं यही 'सर्वोदय' है। प्रत्येक व्यक्ति को सेवक के गुण से सम्पन्न होना, दुर्गुणों का सतत विरोध करना ऐसे साधन प्रस्तुत करना जो सब साधारण को उपलब्ध हो सकें, व्यक्तिगत

गुणों को सामूहिक शक्ति में बदल देना आदि कार्य 'सर्वोदय' विचारधारा के सच्चे लक्षण हैं।

एकादश व्रत, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्वाद, अस्तेय अपरिग्रह अभय, अस्पृश्यता निवारण, शरीर-श्रम सर्व-धर्म समभाव तथा स्वदेशी-भावना का नित्य पारायण करके आत्म शक्ति प्राप्त करना प्रत्येक समाज सेवी के लिए आवश्यक है।

हिंसा से संघर्ष

१६१४ में तिलक मांडले जेल से छूटकर आये प्रथम महायुद्ध की विभीषिका विश्व पर मंडरा रही थी। गांधी जी १६१५ में लन्दन होकर भारत लौटे थे और उन्होंने ब्रिटिश सेना के लिये रंगरूट भरती किये। परन्तु निष्क्रियता और ईस्टर १६१६ का आयरी विद्रोह तिलक के प्रखर स्वभाव को बरदाश्त नहीं हुये और वह होमरूल के पक्ष में एक जोश भरे ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन के लिये भड़क उठे। उनकी आन्दोलनकारी साथिन श्रीमती एनी बेसेन्ट थीं। जो और कुछ नहीं तो वक्तृत्व और प्रोत्साहन की भाषा में उनसे भी बढ़ी चढ़ी थीं इनके जोरदार सहायकों में सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर और मुहम्मद अली थे।

भारत की धरती भीतर के ज्वालामुखी की आवाज से गड़गड़ा उठी। केवल राजनैतिक लोग ही नहीं बल्कि सेना के सिपाही और किसान तक भी महसूस करने लगे कि ब्रिटेन की लड़ाई में वे जो खून बहा रहे थे उसका मुआवजा मिलना चाहिये। अतः २० अगस्त १६१७ को भारत के राज्य सचिव एडविन एस० माण्टेग्यू ने कामन्स सभा में घोषणा की कि ब्रिटिश नीति यह दृष्टि में रखती है कि न केवल प्रशासन के हर विभाग में भारतीयों का उत्तरोत्तर अधिक संसर्ग हो बल्कि स्वशासित संस्थायें भी उन्हें ही प्रदान की जायँ ताकि ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहते हुये भारत को क्रमोन्नति से उत्तरदायी सरकार की प्राप्ति हो।" इस औपनिवेशिक दर्जे का वादा समझा गया।

तिलक का विचार था कि कभी-कभी राज्य के यन्त्र में

अधिकार के पद ग्रहण करना भी वांछनीय हो सकता है। एक बार उन्होंने गांधी जी को पचास हजार रुपये का चेक भेजकर शर्त लगाई कि अगर वह वाइसराय से यह वचन ले सकें कि फौज में भरती होने वालों में से कुछ को अफसरों के पद दे दिये जायगे तो वह ब्रिटिश सेना के लिये पाँच हजार मराठे भरती कर सकते हैं। गांधी जी ने चेक लौटा दी। शर्त लगाना उन्हें पसन्द नहीं था। वह तो यह महसूस करते थे कि अगर कोई आदमी कोई काम करता है तो इसलिये करता है कि उसमें उसका विश्वास है, इसलिए नहीं कि उससे उसे कुछ मिल जायगा।

नवम्बर १९१८ में विजय पूर्वक युद्ध समाप्त हो गया। अशान्ति ने ज्यादा प्रतीक्षा नहीं की। वह १९१९ के प्रारम्भ में ही पैदा हो गयी।

अगस्त १९१८ में तिलक को दुबारा नजरबन्द किया जा चुका था। श्रीमती बेसेण्ट भी गिरफ्तार थीं। शौकत अली, मुहम्मद अली को युद्ध के दौरान में ही बन्दी बना लिया गया था। गुप्त अदालतें भारत के बहुत से भागों में लोगों को सजायें दे रही थीं। युद्ध कालीन सेंसर प्रतिबन्धों से अनेक अखबारों का मुँह बन्द कर दिये गये थे। इनसे बहुत कटुता उत्पन्न हुई। परन्तु युद्ध का अन्त होने पर देश ने आशा की कि नागरिक स्वतन्त्रता फिर स्थापित कर दी जायगी।

लेकिन इसके विपरीत सर रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी ने १९ जुलाई १९१८ को एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें बहुत युद्धकालीन शक्तियों को जारी रखने की सिफारिश की गयी थी। रौलट के फैसले की कांग्रेस दल ने बड़ी क्षमता से भर्त्सना की लेकिन फिर सरकार ने इस सिफारिशों के अनुरूप एक

विधेयक फरवरी १९१९ में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश कर दिया।

गांधी जी अभी पेचिस की बीमारी से उठे थे। यह मान कर कि विधेयक कानून बन जायगा। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने विजयपूर्ण प्रयत्नों के द्वारा सविनय अवज्ञा की तैयारी शुरू कर दी। कमजोर होते हुए भी उन्होंने बहुत से शहरों की यात्रा की और सरकार पर इस दमनकारी कानून को वापस लेने का दबाव डालने के इरादे से एक विराट राष्ट्र-व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन के लिए जमीन तैयार की। १२ मार्च १९१९ को रौलट ऐक्ट कानून बन गया। सारे भारत में बिजली दौड़ गयी। क्या यही औपनिवेशिक दर्जे की शुरूआत थी? महात्मा गांधी जो उन दिनों मद्रास में थे। ११ अप्रैल को बम्बई में गांधी जी ने एक सभा में भाषण दिया और हिंसापूर्ण कृत्यों की निन्दा की।

बम्बई से गांधी जी साबरमती आश्रम गए। वहां भी उन्होंने १४ अप्रैल को एक विराट सभा में भाषण दिया। अहमदाबाद के लोगों ने भी हिंसापूर्ण कार्यवाहियाँ की थीं। इनके प्रायश्चित्त स्वरूप गांधी जी ने बहत्तर घण्टे के उपवास की घोषणा की। साबरमती से गांधी जी सीधे नड़ियाद गये वहाँ उन्हें पता लगा कि हिंसापूर्ण कार्यवाहियाँ छोटे छोटे नगरों में भी फैल गयी थीं। खिन्न होकर गांधी जी ने नड़ियाद निवासियों से कहा कि 'सत्याग्रह का आन्दोलन मेरी हिमालय जैसी भूल थी' १८ अप्रैल को उन्होंने आन्दोलन उठा लिया। बहुत लोगों ने खिल्ली उड़ाई। परन्तु महात्मा जी अपनी गलती कबूल करके कभी नहीं पछताये। इस दौरान में पंजाब प्रान्त खौल रहा था। वहाँ जो घटना घट रही थी उसका फल १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर शहर में प्रकट हुआ जिसे सर वेलण्टाइन शिरोल ने

ब्रिटिश भारत के इतिहास-वृत्त में काला दिन बतलाया। गाँधी जी के लिए यह एक मोड़ था। भारतवासी इसे कभी नहीं भूले। सरकार द्वारा नियुक्त जाँच कमीशन ने जिसके अध्यक्ष लार्ड हंटर थे पंजाब के दंगों की कई महीने तक छानबीन करके अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की।

गाँधी जी ने "यंग इण्डिया" में लिखा था कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बिना समाज का निर्माण करना सम्भव नहीं जिस प्रकार मनुष्य अपने सींग या पूँछ नहीं लगा सकता उसी प्रकार यदि उसमें स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं है तो वह मनुष्य के रूप में अस्तित्व नहीं रख सकता। अतः आकस्मिक यह अवस्था नहीं है जिसमें लोग भेड़ों की तरह बर्ताव करें।"

अपने सम्पूर्ण राजनैतिक जीवन में गाँधीजी अहिंसा के लिये संघर्ष करते रहे। ऐसे समय भी जब भारतीय जनमत संघर्ष के लिए क्षुब्ध रहता था उसका संगठन भी पूरा रहता था। गाँधी जी को हिंसा की तनिक भी भनक मिलते ही वे सजग हो जाते थे और इस भय से अपने सत्याग्रह का मोर्चा भंग कर देते थे कि कहीं आजादी के लिए संघर्ष करने वाली जनता में हिंसा न आ जाय। भले ही दूसरे लोग इसकी आलोचना करें।

पूरी आजादी की लड़ाई में जनता को अहिंसक रखने के लिये गाँधी जी को अनेकों बार अनशन करना पड़ा। जनता को शांति और संयम का पाठ पढ़ाने के लिये पता नहीं कितने प्रयास करने पड़े।

इस तरह धीरे धीरे एक एक कदम फूँक-फूँक कर रखते हुये देश के उस नेता ने देश को आजादी के द्वार पर खड़ा किया। सन् १६२१ सन् १६३२ सन् १६३२ सन् १६४२ के एक एक कदम आगे बढ़ने वाले संघर्षों के बाद भारत स्वतंत्रता के द्वार पर पहुँचा।

इसी समय भारत के इतिहास में हिंसा का सबसे घिनौना रूप उपस्थित हुआ।

बंगाल के नोआखाली में गाँधी जी ने साँप-बिच्छुओं की बस्तियों पर नंगे पैर घूमकर जनमत को हिंसा का शमन किया।

बंगाल के दंगों की प्रतिक्रिया बिहार में भयानक हुई।

पूर्वी बंगाल की स्थिति तनिक सुधरी तो गांधीजी को बिहार की तरफ ध्यान देने का कुछ मौका मिला। मार्च के पहले दूसरे हफ्ते में गांधीजी ने बिहारियों से सम्पर्क स्थापित किया। गांधीजी बिहार की प्रान्तीय मुस्लिमलीग के भूतपूर्व सभापति अब्दुल बारी से भी मिले। बाँकीपुर मैदान में प्रार्थनासभा में गांधीजी ने कहा "मैं हमेशा से यह कहकर अपने को फूला करता आया हूँ कि मैंने अपनी सेवा के बल पर बिहार को अपना बना लिया है।

गांधीजी ने आगे कहा कि 'बिहार तो तुलसीकृत रामायण का प्रदेश है। बिहार वाले तो आसानी से जान सकते हैं कि पाप क्या है पुण्य क्या है? इनके हाथों से जो भी पाप हो गया है वह बहुत बड़ा है उसका प्रतिकार भी उतना ही होना चाहिये।"

अगर यह मान भी लिया जाय कि यह झगड़ा मूलतः राजनैतिक है तो भी क्या इसका यह अर्थ है कि शालीनता सभ्यता और नैतिकता के सारे सिद्धान्त धूल में मिला दिये जाय?

अगर हिन्दुस्तान के ४० करोड़ निवासियों में किसी विषय के साथ मतभेद है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे जानवर बन जायँ तथा मर्दों, औरतों और बच्चों को कत्ल करने लगें।

अगर हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से में कुकृत्य हो रहा है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे भागों में भी वही कुकृत्य

होने लगे। जनता का कर्तव्य यह है कि वह जहाँ कहीं भी अच्छाई होवे उस उसकी नकल करे और जहाँ कहीं भी बुराई होवे देखे उस ओर से आँख फेर ले।

बिहार शांत हुआ तो पंजाब में आग भड़की।

हिंसा व साम्प्रदायिकता की आँच पाकर देश को इतना तपा दिया कि गाँधी जी विकल हो गये।

वे दिल्ली गये, उन्होंने अनशन किया। भावना की और साम्प्रदायिकता की आग बुझ सी गई।

३० जून सन् १९४७ को विश्व की सबसे बड़ी अहिंसक ज्योति हिंसा के हाथों बुझा दी गई। राष्ट्र पिता अमर हो गये।

भारत का सारा सरकारी तन्त्र आज उन लोगों के हाथ में है जो गांधी जी को "राष्ट्रपिता" मानते हैं और रोज-ब-रोज गांधी जी के नाम और सिद्धान्तों की दुहाई देते नहीं अघाते। इसलिए अन्य विचारधारा वालों के हाथ में सत्ता आने पर वे जो कुछ करना चाहेंगे वह सब सरकार खुद ही करके उनके आन्दोलन को बेकार कर सकती है। हिंसात्मक क्रांति की बात तभी पैदा हो सकती है जब कि सरकारी तन्त्र समाजवाद के उसूलों का मानने वाला न हो और कानूनी आन्दोलन द्वारा सत्ता हाथों में लेने की लोगों को आशा ही न हो।

भारतवर्ष की अज्ञान जनता आज स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी अत्यन्त दयनीय दशा में है। वह किसी भी तरह कष्टों से छुटकारा पाना चाहती है। भिन्न-भिन्न वादों का विचार करने की उसमें शक्ति नहीं है। जो उसकी मिन्नत पूरी करे वही उसका देव ऐसी उसकी स्थिति है। इसलिए किसी का विरोध करने से उसका तात्विक उत्तर देने से अथवा सत्ता के बल पर उसका दमन करने से काम नहीं होगा। जिस तरह बरसात

में नदी-नाले सब तरफ से उमड़ कर अधिक गहरे स्रोत की तरफ जाते हैं उसी तरह स्वराज्य-काल में सभी सेवकों की सेवा मामीण और आपद्‌ग्रस्त जनता की तरफ दौड़ जानी चाहिये। देहात के लोगों में आज भी ऐसी श्रद्धा है। कि वे सोचते हैं कि अगर कभी हमारा उद्धार होगा तो गांधी जी के मार्ग से ही होगा। आज की सरकार गांधी जी के सहयोगियों की है। देश की सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस भी गांधीजी की बढ़ायी हुई है। सर्वोदय वाले रचनात्मक कार्यकर्ता तो मानो गांधी विचार की ध्वजा ही फहराते हैं। भारत के समाजवादी भी गांधी जी की ही सन्तान हैं जिन्होंने इस देश में समाजवाद स्थापित करने की घोषणा की है। ये दोनों तीनों या चारों मिलकर अपनी शक्ति के अनुसार अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप किन्तु सद्विचारों से जनता की सेवा में जुट जायें तो दैन्य, दारिद्र्य और दुःख कहाँ टिकेंगे ?

लेकिन इन चारों ने आज चार रास्ते पकड़ लिये हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का नाम सभी लेते हैं किन्तु राहें सबकी अलग-अलग हैं।

★

सर्वोदय व्यवस्था में निर्वाचन

स्वराज के माने ऐसी सरकार जो बालिग मताधिकार के आधार पर बनेगी। मताधिकार उन्हीं बालिगों को प्राप्त होगा जिन्होंने शरीर-श्रम द्वारा देश की सेवा की होगी।

—महात्मा गांधी

वर्तमान निर्वाचन पद्धति के दोषों पर विचार करने से कहने की इच्छा होती है कि निर्वाचन-प्रथा प्रजातन्त्र में ही न रहे। परन्तु प्रजातन्त्र में विधान सभा आदि का संगठन करना है तो उसमें सदस्यों का निर्वाचन तो करना ही होगा। इस प्रकार सर्वोदय राज व्यवस्था में चुनाव का स्थान तो रहेगा परन्तु उसका रूप ऐसा परक किया जायगा कि उसमें वर्तमान दोष न रहें। इस प्रकार शासन की प्रारम्भिक इकाइयों अर्थात् ग्राम-पंचायतों और नगर की पंचायतों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप में होगा। मतदाता के लिये आवश्यक होगा कि वह शरीर-श्रम से निर्वाह करने वाला या राष्ट्र की सेवा करने वाला हो। यही बात नगर-पंचायतों के सम्बन्ध में भी होगी। उनका भी चुनाव प्रत्यक्ष होगा। ग्राम-पंचायतों और नगर पंचायतों के सदस्य जिला सभाओं के सदस्यों को चुनेंगे। जिला सभाओं के सदस्य प्रादेशिक विधान सभाओं के सदस्यों तथा केन्द्रीय संसद 'पार्लियामेण्ट' के सदस्यों का चुनाव करेंगे। इस प्रकार जिला सभाओं प्रादेशिक विधान सभाओं और संसद का चुनाव परोक्ष रूप से होगा।

आजकल संविधान में विधान सभाओं आदि की सदस्यता के उम्मीदवार के लिये आयु आदि की कुछ औपचारिक योग्यतायें

ही निर्धारित की जाती हैं लोक-सेवा आदि की योग्यतायें निश्चित नहीं की जाती। गांधी जी ने जैसी योग्यता की माँग मतदाता के लिये की है इससे भी विशिष्ट योग्यता उम्मीदवार के लिये ठहरायी है। इस प्रकार सर्वोदय-व्यवस्था में उम्मीदवार वही व्यक्ति होना चाहिये जो शरीर श्रम करता हो और जिसने शरीर-श्रम द्वारा समाज की अच्छी सेवा की हो।

स्मरण रहे कि सर्वोदय-व्यवस्था में कोई व्यक्ति स्वय उम्मीदवार बनने के लिये लालायित नहीं होगा। दूसरों के बहुत आग्रह पर ही वह उम्मीदवार बनना स्वीकार करेगा। उम्मीदवार बनने पर वह किसी से मत माँगने नहीं जायेगा। और न अपने मित्रों व एजेन्टों आदि से ही सिफारिश करायेगा।

पहले कहा गया है कि जिला सभाओं, प्रादेशिक विधान सभाओं तथा संसद का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होगा। यह बात बहुत से आदमियों को प्रतिगामिता सूचक या पीछे की लौटाने वाली प्रतीत होगी। परन्तु इस विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार करने की जरूरत है। आजकल चुनाव किस तरह होते हैं और कैसी अनीति से जीते जाते हैं। उसमें पैसे की जितनी जरूरत होती है और पैसे के बल पर जनतन्त्र को जितना दूषित किया जाता है इन घातक दोषों से बचने के लिये विधान सभाओं और संसद के प्रत्यक्ष चुनाव छोड़ने ही होंगे। प्रत्यक्ष चुनाव केवल स्थानीय संस्थाओं तक परिमित रहेगा। जहाँ आदमी यह अच्छी तरह जानते हैं कि कौन व्यक्ति कैसे चरित्र का और कैसे विचार वाला है।

इस प्रकार सर्वोदय व्यवस्था में निर्वाचन पद्धति का उपयोग बहुत सरल और सीमित होगा। निर्वाचक ऐसे ही सज्जन को अपना मत देंगे जिसके चरित्र से अच्छी तरह अवगत होंगे।

वही व्यक्ति जनता द्वारा चुना जायगा जिसने सामाजिक जीवन में ईमानदारी परिश्रम निष्पक्षता और लोक हितैषिता का सबसे अधिक परिचय दिया हो। जो लोभ-तृष्णा और परिग्रह से मुक्त हो। इस तरह विधान-सस्थाओं के सदस्यों का जीवन लोक-सेवियों का जीवन होगा उनके रहन-सहन में सादगी होगी तथा वे साधारण पारिश्रमिक से सन्तुष्ट होंगे।

यों तो क्रमशः वातावरण ऐसा बन जायगा कि निर्वाचक अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन करें तथापि उन्हें इस बात की शिक्षा मिलती रहनी चाहिये। युवकों को अपने विद्यार्थी जीवन में ही समझा दिया जाना चाहिए कि मताधिकार बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार है और इसका उपयोग अच्छी तरह अपनी जिम्मेवारी समझकर करना चाहिये। सिद्धान्तिक शिक्षा के साथ विद्यार्थियों को इस विषय की व्यावहारिक शिक्षा भी मिलनी चाहिये। वे विविध संस्थाओं के पदाधिकारियों का चुनाव करें तो उसमें अपनी दृष्टि सार्वजनिक हित की ओर रखने के लिए प्रेरित किये जायँ।

विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य नागरिकों को निर्वाचन सम्बन्धी शिक्षा देने के लिये व्याख्यान उपदेश कथा-कहानियाँ शिक्षा-प्रद प्रहसन नाटक आदि की व्यवस्था रहनी चाहिये। लोगों को एस ही व्यक्ति के चुनने की शिक्षा दी जानी चाहिए जिन्होंने व्यक्तिगत आदर्श प्राप्त कर लिया हो। अथवा जो अधिक स्वा-लम्बी जीवन बिताते हों जो निस्वार्थी नम्र लोक-सेवी और परिश्रमी हों। जो लोभ और भ्रष्टाचार से परे हों। निर्वाचक जो मत दें वे प्रचार या कन्वेसिंग के परिणाम स्वरूप नहीं उम्मीदवारों की लोक सेवा को देखकर दें। वास्तव में किसी

उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार तो उसकी ओर से अथवा उसके मित्र या रिश्तेदार आदि की ओर से होना ही नहीं चाहिये।

वर्तमान दशा में चुनावों में विविध पार्टियों या पक्षों का बोलबाला होने से सार्वजनिक जीवन में कितनी गन्दगी आई हुई है। इसका जिक्र किया जा चुका है। सर्वोदय-व्यवस्था में यह असह्य है। उसे हटाने के लिये तुरत ही क्या किया जाना चाहिये? इस विषय पर विचार करते हुये श्री विनोबा जी ने यह सुझाव दिया है कि म्युनिसिपैलिटी, ग्राम-पञ्चायत और लोकल बोर्ड आदि में जहाँ जन-सेवा के काम करने होते हैं उनमें राजनीतिक वादों का बहुत सम्बन्ध नहीं आता न आना ही चाहिये। भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों के लोगों को कोई एक सामान्य कार्यक्रम मिलना चाहिये जो सबका सामान्य रूप से मान्य हो। उनके बीच समान आधार का कार्यक्रम उपलब्ध होना चाहिये जिसमें सबकी एक राय हो। अगर यह व्यवस्था चले तो आज जिस तरह आचारों का संघर्ष होता है वह नहीं होगा। जनता के सामने अनेक रायें रखी जाने से उसकी बुद्धि में भेद होता है। उसकी श्रद्धा स्थिर नहीं रहती। इस प्रकार ग्राम पञ्चायत म्युनिसिपैलिटी आदि में राजनैतिक पक्ष का भेद नहीं आना चाहिये। इन संस्थाओं के चुनाव के लिये जो भी मनुष्य खड़ा रहेगा वह सेवक के नाते ही खड़ा रहेगा और लोग जिसे चुनेंगे उसे अच्छा सेवक मानकर ही चुनेंगे।

राज्य में निर्वाचकों का उत्तरदायित्व स्पष्ट है। उन्हें अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करना चाहिये। उनका पहला काम तो यही होगा कि प्रत्येक निर्वाचक यह देखेगा कि उसका नाम निर्वाचक सूची में दर्ज हो गया है। इसके साथ ही यदि उसे किसी अन्य निर्वाचक का नाम सूची में आने से छूटा हुआ

मालूम हो तो उसे उसका भी नाम दर्ज कराने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी का नाम गलती से सूची में दर्ज करा दिया गया है तो उस नाम को हटवा देना चाहिये जिससे सूची पूरी हो और उसमें कोई त्रुटि न हो।

निर्वाचकों का दूसरा कार्य यह है कि निर्वाचन में अपना मत विवेकपूर्वक निष्पक्ष होकर दें। वे अपने आपको जाति-बिरादरी सम्प्रदाय और इसअन्मी आदि के क्षुद्र और संकीर्ण विचारों से ऊपर रखें और उस सज्जन का मत दें जो यथेष्ठ योग्य और अनुभवी हो। सर्वोदय की दृष्टि से प्रत्यक्ष चुनाव गाँवों में होगा। जहाँ आदमी एक दूसरे के गुण स्वभाव और चरित्र से अच्छी तरह परिचित होते हैं। इसलिये निर्वाचकों को उक्त कार्य में कुछ कठिनाई नहीं होगी।

जिला सभा के निर्वाचन में ग्राम-पत्रों को प्रादेशिक निर्वाचन में जिला सभा के सदस्यों को और केन्द्रीय निर्वाचन में प्रादेशिक विधान सभाओं के सदस्यों को मत देने का अधिकार होगा। इन्हें भी अपने उत्तरदायित्व को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य पालन करना होगा।

समाप्त

डाक्टर साथ गांधीजी के कमरे में गये। अली-बंधु, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास और बहुत-से दूसरे लोग बिस्तर के पास ज़मीन पर बैठे थे। उपवास तोड़ने से पहले गांधीजी बोले और उन्होंने उनसे अनुरोध किया कि एकता की खातिर ज़रूरत पड़े तो अपनी जान भी निछावर कर दें। मुस्लिम नेताओं ने अपना वचन दोहराया। फिर भजन गाये गये। डा० अन्सारी नारंगी का रस लाये और गांधीजी ने उसे पी लिया। इस प्रकार उपवास समाप्त हुआ।

९

धन और गहने

१९२४ के उत्तरार्ध में संसार में युद्धोत्तर सामान्य स्थिति और शांति उत्पन्न होती जा रही थी।

भारत भी आराम कर रहा था और फूट तथा निष्क्रियता के मज़े ले रहा था। युद्ध-विराम और अमृतसर के बाद के समय का जोश ठंडा पड़ गया था। विश्वास और संघर्ष की भावना का स्थान शंका और निराशा ने ले लिया था। शायद गांधी जी की महिमा ने उग्र राष्ट्रीयता का उत्साह मंद कर दिया था। उनका इक्कीस दिन का उपवास असफल हो गया था। इसने बहुतों को प्रभावित किया था और कुछ लोगों का रुख भी बदल दिया था परंतु हिंदू-मुस्लिम तनाव वैसा-का-वैसा बना हुआ था।

गांधीजी इस समय को ब्रिटेन से लड़ने के लिए उपयुक्त नहीं समझते थे। यह समय घर के किले की मरम्मत करने का था। उनका कार्यक्रम था—आगामी राजनैतिक अवसरों के लिए नैतिक तैयारी ठोस रूप में हिंदू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण और खादी का प्रचार।

बुद्धिजीवी लोग अभी तक उनकी बातों के कायल नहीं हुए थे। गांधीजी का कहना था कि शिक्षित भारतवासी वर्गों में विभक्त होते जा रहे हैं। 'उनका तरीका मेरा तरीका नहीं है।' उन्होंने चेतावनी दी कि अगर वे उनकी खादी-नीति का समर्थन नहीं करेंगे तो "शिक्षित भारत उस एकमात्र प्रत्यक्ष तथा वास्तविक बंधन से कटकर अलग हो जायगा जो उसे जनता के साथ बांधे हुए है।"

शिक्षित वर्ग को [illegible] होने पर गांधीजी ने कहा था—"मैं

शिक्षित भारतवासियों द्वारा कांग्रेस की तरक्की और रहनुमाई के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहता और मैं पसंद करूंगा कि मेरे जैसे आदमी की अपेक्षा जिसने अपना भाग्य पूरी तरह जनता के साथ जोड़ दिया है और जिसका शिक्षित भारत के सामूहिक मानस के साथ मौलिक मतभेद है, वे लोग ही यह काम करते रहें।"

एक अमरीकी पादरी ने एक बार गांधीजी से पूछा कि उन्हें सबसे ज्यादा परेशान करनेवाली क्या चीज है ? उन्होंने जवाब दिया—"शिक्षित वर्ग के हृदय की कठोरता ।

वह कबूल करते थे कि वह बुद्धिजीवी लोगों पर फिर भी असर डालना चाहते थे "परंतु कांग्रेस का नेतृत्व करके नहीं बल्कि उनके हृदयों में धीरे-धीरे प्रवेश करके+ कांग्रेस के राजनैतिक नेतृत्व में खींचे जाने पर उन्हें खेद था। अब वह उससे हट रहे थे।

१९२४ में जेल से छूटने के बाद जब उन्होंने अपना यह इरादा जाहिर किया तो भारत का आमुमंडल विरोध की ऊंची आवाजों से भर गया । इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"मैं पसंद नहीं करता न कभी मैंने पसंद किया है कि हर बात के लिए मुझ पर निर्भर रहा जाय। राष्ट्रीय काम-काज को चलाने का यह बिल्कुल निकृष्ट तरीका है । कांग्रेस एक आदमी का तमाशा नहीं बननी चाहिए, जैसाकि उसके बन जाने का खतरा है चाहे वह एक आदमी कितना ही भला और महान क्यों न हो।

इसके बावजूद उन्हें १९२५ के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए राजी कर लिया गया। उनके मित्रों ने दलील दी कि उनकी गैरहाजरी से कांग्रेस के दो टुकड़े हो जायंगे —एक ओर उनके रचनात्मक कार्यक्रम को माननेवाले दूसरी ओर स्वराज्य पार्टी जो कौंसिलों में राजनैतिक कार्य की हामी थी । उन्होंने इसकी कीमत वसूल की कांग्रेस के सदस्यों के लिए खादी पहनने की कड़ी शर्त लगाकर।

किसीने कहा कि राजनीति से हट जाने पर उन्हें अपना नैतिक प्रभुत्व खोना पड़ेगा । इसका बिल्कुल स्पष्ट प्रत्युत्तर था— नैतिक प्रभुत्व उससे चिपके रहने के प्रयत्न से कभी नहीं बना रह सकता । वह तो बिना चाहे आता है और बिना प्रयत्न के बना रहता है।

सच तो यह है कि उनका नैतिक प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था बिना इसका लिहाज किये कि वह क्या करते थे और क्या नहीं करते थे । भारत की धरती और भारतीय मनोवृत्ति उसका पोषण करती थी। १९२५ के सारे वर्ष उन्होंने

भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे की यात्रा की।

जहाँ-कहीं वह जाते भीड़-की-भीड़ उन्हें घेर लेती। उन्हें देवता मानना शुरू हो गया था। एक स्थान पर उन्हें बतलाया गया कि सारी गोंड जाति उनकी पूजा करने लगी थी।

बहुत लोग उन्हें बुद्ध और कृष्ण की तरह अवतार मानने लगे। दूर-दूर से लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे।

ढाका में सत्तर वर्ष का एक बूढ़ा उनके सामने लाया गया। वह गांधीजी की तस्वीर गले में लटकाये हुए था और रो रहा था। गांधीजी के पास आते ही वह उनके पांवों में गिर पड़ा और अपने की पुरानी बीमारी का इलाज करने के लिए उन्हें धन्यवाद देने लगा। उस बेचारे ने कहा—"जब सारे उपाय बेकार हो गये तो मैंने गांधीजी का नाम जपना शुरू कर दिया और एक दिन मैं बिलकुल चंगा हो गया।

गांधीजी ने उसे झिड़की दी—"तुमको मैंने नहीं बल्कि भगवान ने चंगा किया है। मेहरबानी करके मेरी तस्वीर तो गले में से उतार दो।

पढ़े-लिखे लोग भी इससे बरी नहीं थे। एक बार जिस गाड़ी में गांधीजी यात्रा कर रहे थे वह झटके के साथ रुकी। किसीने जंजीर खींच दी थी। पता लगा कि कोई वकीलसाहब सिर के बल गाड़ी से गिर गये थे। जब उन्हें उठाया गया तो उनके कहीं चोट नहीं लगी थी। चोट न लगने का कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह गांधीजी के साथ यात्रा कर रहे थे। गांधीजी ने हँसकर कहा—"तब तो आपको गाड़ी से गिरना नहीं चाहिए था।" परन्तु यह मजाक उस भक्त की समझ में नहीं आया।

जब स्त्रियां घूंघट निकाले हुए गांधीजी के सामने आतीं तो वह कहते— "भाई से क्या पर्दा?" और वे तुरन्त घूंघट हटा लेतीं।

धन इकट्ठा करने के मामले में गांधीजी न तो किसीको बख्शते थे और न कोई उनसे इन्कार कर सकता था। स्त्रियों के गहने उतरवाने में उन्हें खास मजा आता था। एक बार मेरे एक अमरीकी मित्र ने उनका एक चित्र लाने को कहा जिस पर उनके हाथ से दस्तखत किया भी हो। मुझे आश्रम से एक चित्र मिल गया। मैंने गांधीजी से अनुरोध किया कि वह उस पर हस्ताक्षर कर दें। "अगर तुम हरिजन-कोष के लिए पचास रुपये लाओ तो।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

मैंने कहा—"दे दूँगा।" उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये।

गांधीजी के कुछ मित्र उन पर खादी को जरूरत से ज्यादा महत्व देने का दोष लगाते थे। उनका कहना था कि यह मशीन का युग है और गांधीजी की सारी शक्ति बुद्धिमानी तथा चातुरता भी समय को पीछे ले जाने में सफल नहीं हो सकती।

बहुत-से पढ़े-लिखे लोग खादी की खिल्लियां उड़ाते थे। वे इसे मोटी और खुरदरी कहते थे।

गांधीजी विचार-शक्ति और शारीरिक शक्ति को जोड़ना चाहते थे शहर और गांव को एक करना चाहते थे अमीर और गरीब को परस्पर बांधना चाहते थे।

इस श्रम ने गांधीजी को बिल्कुल थका दिया। एक-एक दिन में सभाओं के लिए तीन चार जगह रुकना रात में दूसरी जगह ठहरना भारी पत्र-व्यवहार—जिसे वह कभी नहीं टालते थे अनगिनत व्यक्तिगत मुलाकातें जिनमें पुरुष और स्त्रियां बड़ी-से-बड़ी राजनैतिक समस्याओं पर तथा छोटी-से-छोटी व्यक्तिगत कठिनाइयों पर उनकी सलाह चाहते थे—इन सबने उन्हें कमजोर कर दिया। इसलिए नवंबर १९२५ में उन्होंने सात दिन का उपवास कर डाला।

भारत उनके लिए चिंतित हो उठा। उपवास क्यों? गांधीजी ने बतलाया—"जनता को मेरे उपवासों की उपेक्षा करनी होगी। ये तो मेरे जीवन के अंग हैं। अगर मैं आंखों के बिना काम चला सकूं तो उपवासों के बिना भी रह सकता हूं। बाह्य-जगत के लिए आंखों का जो उपयोग है, वही उपयोग अंतर्जगत के लिए उपवासों का है। शायद मैं बिल्कुल गलत काम कर रहा हूं। उस हालत में दुनिया मेरी चिता पर यह वाक्य लिख सकेगी—'ओ बेवकूफ! तू इसी लायक था'।

गांधीजी के उपवास के फलस्वरूप उपवासों के बारे में उनके विचार जानने के लिए अनुरोधों की बाढ़ आ गई। इसका उत्तर उन्होंने 'यंग इंडिया' में एक लेख के द्वारा दिया। उन्होंने लिखा "अपने डाक्टर मित्रों से क्षमा मांगते हुए, परन्तु अपने तथा अपने साथी-उमियों के संपूर्ण अनुभव के आधार पर मैं बिना संकोच कहता हूं कि उपवास करो १ यदि आपको कब्ज हो २ यदि आपमें खून की कमी हो ३ यदि आपको बुखार आता हो ४ यदि आपको बदहजमी हो ५ यदि आपके सिर में दर्द हो ६ यदि आपको वात रोग हो ७. यदि आपको संधिवात (गठिया) हो यदि आप झुंझलाते और क्रोध करते हों ९ यदि आपका चित्त विषादग्रस्त हो १ यदि आपको हर्षातिरेक हो। फिर आपको न तो नुस्खों की जरूरत होगी न बाजारू दवाइयों की। उनके हर रोग के लिए एक ही पेटेंट नुस्खा था—उपवास। उन्होंने लिखा "जब भूख लगे तभी खाओ और वह भी तब जब

तुम अपने खाने के लिए परिश्रम कर चुके हो।

शिविर में उपवास के लिए नौ नियम भी दिये गये "शुरू से ही अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति का संचय करो २ उपवास के दिनों में भोजन का विचार ही करना छोड़ दो ३ जितना भी ठंडा पानी पी सकते हो पीओ ४ रोज गरम पानी से शरीर को अंगोछो ५ नियमित रूप से एनिमा लो ६ खुली हवा में जितना अधिक सो सकते हो सोओ ७ सुबह की ठंडी हवा में स्नान करो ८ उपवास के बारे में सोचना बिल्कुल बंद कर दो ९ तुम्हारा उपवास चाहे जिस अभिप्राय से हो इस अमूल्य समय में सृष्टिकर्ता का ध्यान करो और आपको ऐसे नये अनुभव होंगे जिनकी आपको स्वप्न में भी आशा नहीं हुई होगी।

गांधीजी की कांग्रेस-अध्यक्षता का वर्ष अब समाप्त हो गया था और दिसंबर १९२५ में कानपुर में उन्होंने अपनी गद्दी श्रीमती सरोजनी नायडू को सौंप दी। तब उन्होंने एक वर्ष के 'राजनैतिक मौन' का व्रत लिया।

गांधीजी ने देखा कि राजनैतिक भारत छिन्न-भिन्न तथा साहसहीन हो रहा है। अत मौन के लिए यह अच्छा समय था

१ १०

मौन का वर्ष

मौन-वर्ष में बावन मौन-सोमवार थे जब गांधीजी बिल्कुल नहीं बोलते थे। मौन-सोमवार के दिन वह मुलाकातियों की बातें सुनते और कभी-कभी कागज का एक टुकड़ा फाड़कर उस पर पेंसिल से कुछ जवाब लिख देते थे।

१९४२ मे मैंने गांधीजी से उनके मौन का अभिप्राय पूछा।

उन्होंने बतलाया—"यह तब हुआ जब मैं टुकड़े-टुकड़े हो रहा था मैं कठोर परिश्रम कर रहा था सख्त गरमी में रेलगाड़ियों मे सफर करता था अनेक सभाओं में लगातार बोलता था रेल में तथा अन्य स्थानों पर हजारों लोग मेरे पास आते थे जो सवाल पूछते थे अनुनय करते थे और मेरे साथ प्रार्थना करना चाहते थे। मैं सप्ताह में एक दिन आराम करना चाहता था। इसलिए मैंने मौन का दिन प्रारंभ किया। यह सही है कि बाद में मैंने इसे तरह-तरह के गुणो से ढक दिया और आध्यात्मिक जामा पहना दिया। परंतु वास्तव में नीयत सिर्फ यही थी कि मैं एक दिन की छुट्टी चाहता था।

परंतु बावन सोमवारों के सिवा यह 'मौन' वर्ष किसी भी अर्थ में मौन नहीं था। उन्होंने यात्राएं नहीं कीं सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं दिये परंतु वह बातचीत करते थे मिलते थे मुलाकातियों से मिलते थे और भारत तथा दूसरे देशों के हजारों व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करते रहते थे।

गांधीजी के रुख में एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगा था। उन्हें शक होने लगा था कि ब्रिटेन की नीति हिंदू-मुस्लिम एकता-विरोधी है। सरकार मुसलमानों के साथ पक्षपात करती हुई मालूम देती थी।

गांधीजी का खयाल था कि हिंदू-मुस्लिम-एकता से भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। अब उन्होंने महसूस किया कि जब तक अंग्रेजों का 'तीसरा दल' यहां मौजूद है, तब तक हिंदू-मुस्लिम मेल-जोल लगभग असंभव है।

गांधीजी का नुस्खा था कि बहुसंख्यक हिंदू अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ अच्छा बर्ताव करें और दोनों अहिंसा का पालन करें। हिंदू लोग उग्र रूप में उन पर मुस्लिमपरस्ती का दोषारोपण करने लगे।

परंतु इस वर्ष का सबसे प्रचंड विवाद कुत्तों के बारे में हुआ। कई महीनों तक यह तूफान गांधीजी के सिर पर मंडराता रहा।

अहमदाबाद के मिल-मालिक अबालाल साराभाई ने अपनी मिल के अहाते में चक्कर लगानेवाले साठ आवारा कुत्तों को पकड़वाकर मरवा डाला।

कुत्तों के मरवाने के बाद साराभाई घबरा गये और उन्होंने अपनी व्यथा गांधीजी के सामने रख दी। गांधीजी ने कहा—"इसके सिवा और चारा ही क्या था ?

अहमदाबाद की जीव-दया-समिति ने जब इस बात-चीत का हाल सुना तो वह गांधीजी के सिर हो गई। एक क्रोध भरे पत्र में उसने गांधीजी को लिखा—"जब हिंदू धर्म किसी भी जीव की हत्या पाप मानता है, तो क्या आप इसलिए बावले कुत्तों को मारना ठीक समझते हैं कि वे आदमियों को काट खायेंगे और उनके काटने से दूसरे कुत्ते भी बावले हो जायंगे ?

गांधीजी ने इसे 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर दिया और इसके उत्तर में डेढ़ पृष्ठ का लेख छापा— 'हम जैसे अपूर्ण और भूलें करनेवाले मनुष्यों के सामने कुत्तों को मारने के अलावा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। कभी-कभी हमारे सामने उस आदमी को मारने का अनिवार्य कर्तव्य आ जाता है जो लोगों को मारता हुआ पाया जाय।

इस लेख पर रोष-भरे पत्रों की बाढ़ आ गई। इतना ही नहीं कोसमा-काकर गांधीजी को गालियां सुनाने लगे। परंतु गांधीजी अपनी बात पर अड़े रहे। 'यंग इंडिया' के दूसरे अंक में उन्होंने फिर इसी प्रकार लिखा।

कुत्तों के बारे में वाक् प्रवाह जारी रहा। 'यंग इंडिया' के तीसरे अंक में गांधी जी ने इस मसले पर तीन पृष्ठ लिख डाले। उन्होंने बतलाया कि कुछ विरोधी आलोचकों ने तो शिष्टता की मर्यादा का अतिक्रमण किया है।

उन्होंने लिखा—"प्राण-हरण भी कर्तव्य हो सकता है। मान लीजिये कि कोई आदमी बदहवास होकर तलवार हाथ में लिये बेतहाशा दौड़ता फिर रहा है, जो सामने आये उसे मार डालता है और उसको जिंदा पकड़ने की किसीकी हिम्मत नहीं होती। इस दीवाने को यमपुरी पहुंचानेवाला समाज की कृतज्ञता का पात्र होगा।

'यंग-इंडिया' में कुत्ता-विवाद ने उत्तेजना का रिकार्ड कायम कर दिया परंतु एक बछड़े ने भी तूफान खड़ा किया। आश्रम का एक बछड़ा बीमार हो गया। गांधीजी ने उसका उपचार किया और जब उसकी वेदना देखी तो निश्चय किया कि उसे मार डालना ही उचित है। गांधीजी के सामने डाक्टर ने बछड़े को इंजेक्शन लगाया जिससे वह मर गया। इसके विरोध में प्रचंडता-पूर्ण पत्रों का तांता लग गया। गांधीजी दृढ़ता के साथ कहते रहे कि उन्होंने ठीक किया।

१९२६ के 'यंग-इंडिया' में गांधीजी की कलम या पेंसिल से जो बहुत से लेख निकले उनमें उन्होंने गर्भ-निरोध के कृत्रिम उपायों का लगातार विरोध किया। वह इन्हें पश्चिमी बुराई कहते थे। परंतु वह संतति निर्यमन के विरोधी नहीं थे। उन्होंने हमेशा इसकी हिमायत की। परंतु वह आत्म-निग्रह—शरीर पर मन के नियंत्रण—द्वारा संतति-निग्रह के हिमायती थे।

विदेशों में गांधीजी की ख्याति फैल रही थी। फ्रांसीसी लेखक रोम्यां रोलां ने उनके बारे में एक पुस्तक लिखी। जगह-जगह से खासकर अमरीका से उनके पास निमंत्रण आये कि वहां आयें। उन्होंने सबको इन्कार कर दिया। उन्होंने बताया—"मेरा कारण बहुत सीधा-सादा है। मुझमें अभी इतना आत्म-विश्वास नहीं है कि मेरा अमरीका जाना उचित हो। मुझे संदेह नहीं है कि अहिंसा का आंदोलन चिरस्थायी हो गया है। इसकी अंतिम सफलता के बारे में मुझे किसी तरह का संदेह नहीं है। परंतु अहिंसा की प्रभावकारी शक्ति का मैं प्रत्यक्ष प्रदर्शन

नहीं दे सकता। इसलिए मैं महसूस करता हूं कि तबतक मुझे सीमित भारतीय मंच से ही प्रचार करना चाहिए।

व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक दृष्टि से गांधीजी को कोई जल्दी नहीं थी और वह एक साल तक चुप बैठे रहे। १९२६ में राजनीति से इस छुट्टी में उन्हें मानो मजा आ रहा था। इससे उनके शरीर को आराम लेने का और उनकी आत्मा को इधर-उधर घूमने का अवसर मिल गया था।

उन्होंने मित्र बनाये उस्तरे की धार जैसे पैने दिमागवाले वकील राजगोपालाचारी महादेव देसाई, जो उनके सचिव और शिष्य हुए और चार्ली एंड्रूज जिन्हें वह 'गुड सैमेरिटन' (सबका भला चाहनेवाला) कहते थे। उनका कहना था—'यह मेरे लिए सगे भाई से भी बढ़कर हैं। जितना गहरा लगाव मुझे एंड्रूज से है उतना और किसीसे है यह मैं नहीं समझता।" हिंदू संत को एंड्रूज से बढ़कर कोई संत नहीं मिला। ईसाई पादरी को गांधीजी से बढ़कर कोई ईसाई नहीं मिला। शायद यह भारतीय और यह अंग्रेज इसलिए भाई-भाई थे कि वे सच्चे अर्थों में धार्मिक थे। शायद धर्म ने उन्हें इसलिए साथ जोड़ दिया था कि राष्ट्रीयता उन्हें अलग नहीं करती थी। जहां राष्ट्रीयता लोगों को अलग-अलग नहीं करती वहां धर्म उन्हें भाई बना देता है।

११
चकाकर धूर

जब गांधीजी मौन के वर्ष को पार करके निकले तो उनके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उनका कार्यक्रम अब भी वही था—हिंदू-मुस्लिम-एकता अस्पृश्यता-निवारण और खादी प्रचार।

दिसंबर १९२६ में साबरमती से रवाना होकर गांधीजी एक-के-बाद-एक सभाओं में प्रचार करते हुए कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गोहाटी पहुंचे। रास्ते में उन्हें एक दुखदायी घटना का समाचार मिला जिसने भारत को दहला दिया था। अब्दुलरशीद नामक एक नौजवान मुसलमान स्वामी श्रद्धानंद से मिलने गया और उनसे धार्मिक समस्याओं पर चर्चा करने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी रोग-शय्या पर पड़े थे डाक्टर ने उन्हें पूरे आराम की सलाह दी थी। जब स्वामीजी ने अपने कमरे के बाहर नौकर तथा अड़ियल आगंतुक के बीच झगड़े की

आवाज सुनी तो उन्होंने उस आदमी को अंदर बुलवाया। भीतर आने पर स्वामीजी से अब्दुलरशीद ने कहा कि कमजोरी दूर होने ही वह उनसे सुनी के साथ बातें करेंगे। उसने पीने का पानी मांगा। जब नौकर पानी लेने गया तो अब्दुलरशीद ने रिवाल्वर निकालकर स्वामीजी के सीने में कई गोलियां दाग दीं और उन्हें मार डाला।

मुस्लिम समाचार-पत्र स्वामीजी पर आक्रमण कर रहे थे कि वह भारत में हिंदुओं का प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। कांग्रेस में अपने एक भाषण में गांधीजी ने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि स्वामीजी उनके शत्रु नहीं थे। उन्होंने कहा कि अब्दुलरशीद अपराधी नहीं था। अपराधी तो वे लोग थे जो एक-दूसरे के विरुद्ध विद्वेष की भावनाएं भड़काते थे।

कांग्रेस-अधिवेशन में जब राष्ट्रवादियों ने पूर्ण स्वाधीनता तथा इंग्लैंड से संपूर्ण संबंध-विच्छेद के पक्ष में प्रस्ताव रखा। गांधीजी ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा—"ये लोग मानव प्रकृति में तथा गुट अपने-आप में घमण्ड प्रकट करते हैं। ये लोग ऐसा क्यों समझते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य के संचालकों में भी हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता ? यदि भारत अपने गौरव को महसूस करे और मजबूत हो जाय तो इंग्लैंड बदल जायेगा।'

गांधीजी ने तदनुसार राष्ट्र को भीतर से मजबूत बनाने के प्रयत्न जारी रखे अन्यथा स्वाधीनता के पक्ष में प्रस्ताव का कोरे शब्द और बेकार संदेश के अतिरिक्त कोई अर्थ ही न होता।

इसलिए गांधीजी ने फिर देश का दौरा किया।

परंतु हिंदू-मुस्लिम समस्या गांधीजी के प्रयत्नों को चुनौती देती रही। उन्होंने मंजूर किया—"मैं निरुपाय हो गया हूं। मैं इससे हाथ धो बैठा हूं, परंतु मैं ईश्वर में विश्वास करनेवाला हूं।"

कलकत्ता से गांधीजी बिहार होते हुए महाराष्ट्र पहुंचे। पूना में विद्यार्थियों ने उनसे अंग्रेजी में भाषण देने की मांग की। गांधीजी ने अंग्रेजी में बोलना शुरू किया लेकिन थोड़ी देर बाद हिंदुस्तानी में बोलने लगे क्योंकि वह इसे राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वहां से वह बम्बई आये जहां लोगों ने उनकी खूब आवभगत की और खूब रुपया दिया। वहां से वह फिर बंगलौर की गाड़ी पकड़ने के लिए पूना गये।

पूना स्टेशन पर गांधीजी ने इतनी कमजोरी महसूस की कि उन्हें उठाकर बंगलौर की गाड़ी में बिठाया गया। उनकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और वह बड़ी मुश्किल से एक बकरी पुर्जा लिख सके। रात की नींद ने उन्हें ताजा कर

दिया और दूसरे दिन कोल्हापुर में उन्होंने सात सभाओं में भाषण दिये परंतु आखिरी सभा में वह थकावट से चूर होकर गिर पड़े।

फिर भी वह काम करते ही रहे। दूसरे दिन उनकी तबीयत इतनी गिर गई कि उनमें भाषण देने की शक्ति नहीं रही। परन्तु वह अपने मेजबान के घर की बरसाती पर बैठ गये और भीड़ उनके सामने से होकर निकलने लगी। बेलगांव में भी वह एक सभा में तो गये परन्तु बोले नहीं। अंत में एक डाक्टर ने उन्हें समझाया कि उनकी हालत चिन्ताजनक है और उन्हें आराम करना चाहिए। तब उन्हें एक पहाड़ी नगर में ले जाया गया जहां समुद्र की हवा खूब आती थी।

अपने मित्र तथा चिकित्सक डा॰ जीवराज मेहता के आग्रह पर गांधीजी दो महीने आराम करने के लिए राजी हो गये।

१९२७ के अप्रैल महीने मे गांधीजी मैसूर में स्वास्थ्य-लाभ करते रहे। रियासत के प्रधान मंत्री उनसे मिलने आये और बातचीत के दौरान मे उन्होंने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यदि मैसूर के सरकारी कर्मचारी खादी पहनें तो उन्हें कोई ऐतराज नहीं होगा।

बाद के वर्षों में गांधीजी के चिकित्सक डा॰ विधानचंद्र राय तथा बंबई के डा॰ मचेरशाह गिल्डर ने बतलाया कि मार्च १९२७ मे कोल्हापुर में गांधीजी को दिल का हल्का-सा दौरा हुआ था। बाद मे शरीर पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं मालूम दिया। डा॰ गिल्डर, जो १९३२ के बाद गांधीजी के हृदय विशेषज्ञ बन गये थे बतलाते हैं कि गांधीजी का हृदय उनकी आयु के औसत आदमी के हृदय से अधिक बलवान था। उनकी (डा॰ गिल्डर की) जानकारी में गांधीजी का रक्त चाप कभी बढ़ा हुआ नहीं पाया गया सिवा उन मौकों के जब वह किसी महत्व पूर्ण निश्चय पर पहुंचने में लगे हुए होते थे। एक बार गांधीजी जब सोने लगे तो उनका रक्तचाप बढ़ा हुआ था परंतु सुबह सामान्य था क्योंकि रात भर में उन्होंने एक निर्णायक प्रश्न पर अपना मत स्थिर कर लिया था। डा॰ गिल्डर का कहना है कि झुंझलाहट पैदा करनेवाले व्यक्तियों की उपस्थिति या सार्वजनिक आक्रमण या अपने काम के बारे में चिंता गांधीजी के रक्तचाप पर कभी असर नहीं डालती थी रक्तचाप को बढ़ानेवाला वह मंथन होता था जो किसी निश्चय से पूर्व उनके मस्तिष्क मे चलता था।

नये वाइसराय लार्ड अरविन अप्रैल १९२६ में रीडिंग का स्थान लेने के लिए आ चुके थे।

कुछ क्षेत्रों में वाइसराय के पद पर एक धर्मपरायण व्यक्ति की नियुक्ति एक धर्मपरायण देश पर जिसका विरोधी नेता एक महात्मा था पंचवर्षीय शासन के लिए शुभ लक्षण मानी गई।

परन्तु उन्नीस महीनों तक अरविन ने न तो गांधीजी को बुलाया और न इस सबसे अधिक प्रभावशाली भारतीय से भारत की स्थिति पर चर्चा करने की कोई इच्छा प्रकट की। २६ अक्तूबर १९२७ को मंगलौर में गांधीजी के पास संदेश पहुंचा कि वाइसराय ५ नवंबर को उनसे मिलना चाहते हैं।

महात्माजी ने तुरंत अपना दौरा स्थगित कर दिया और दिल्ली की यात्रा की। पूर्व-निश्चित समय पर उन्हें वाइसराय के सामने उपस्थित किया गया। भीतर जाते समय वह अकेले ही थे। वाइसराय ने विधान मंडल के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल, १९२७ के कांग्रेस-अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगर तथा १९२८ के निर्वाचित कांग्रेस-अध्यक्ष डा॰ अनसारी को भी बुलाया था।

जब ये लोग बैठ गये तो वाइसराय ने इन्हें एक पर्चा दिया जिसमें एक सरकारी ब्रिटिश कमीशन के भावी आगमन की घोषणा थी। इस कमीशन के नेता सर जॉन साइमन थे तथा इसका उद्देश्य भारतीय स्थिति पर रिपोर्ट देना और राजनैतिक सुधारों की सिफारिश करना था।

इसको पढ़कर गांधीजी ने ऊपर देखा और प्रतीक्षा की। वाइसराय कुछ नहीं बोले।

गांधीजी ने पूछा—"क्या हमारी मुलाकात का सिर्फ यही मतलब है?"

"जी हां।" वाइसराय ने उत्तर दिया।

बस मुलाकात यहीं खत्म हो गई। गांधीजी चुपचाप दक्षिण भारत लौट गये।

गांधीजी का वाइसराय से सामना होने के बाद अन्य भारतीय नेताओं को भी साइमन कमीशन के भावी आगमन की सूचना इसी ढंग से दी गई। किसीके साथ भी कोई चर्चा या ब्यौरेवार बात नहीं हुई। अरविन ने आशा प्रकट की भारतवासी इस कमीशन के सामने गवाहियां दें और सुझाव पेश करें।

साइमन कमीशन बर्कनहेड[1] के दिमाग की मनचली उपज थी।

साइमन कमीशन के समाचार ने भारत को क्षोभित कर दिया। यह कमी

---

१ लार्ड बर्कनहेड उस समय भारत के लिए ब्रिटिश सरकार के राज्य-सचिव थे।

धन भारत के भाग्य का फैसला करनेवाला था। परंतु इसके सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था।

३ फरवरी १९२८ को जब साइमन कमीशन ने बंबई में पदार्पण किया तो काले झंडों तथा 'साइमन वापस जाओ' के नारों से उसका स्वागत किया गया। जबतक कमीशन भारत में रहा उसके सदस्यों के कानों में यह नारा गूंजता रहा।

साइमन ने समझौते की कोशिश की। उसने प्रलोभन दिये और मिन्नतें कीं परन्तु प्रतिनिधि की हैसियत रखनेवाले एक भी भारतीय ने उनसे नहीं मिलना चाहा। कमीशन ने ईमानदारी से मेहनत की और तथ्यों तथा आंकड़ों का होशियारी से सपादित एक पोथा तैयार किया। ब्रिटिश शासन पर यह एक विद्वत्तापूर्ण मर्सिया था।

१२

सत्याग्रह की तैयारी

गांधीजी लड़ाई में बहुत धीरे-धीरे उतरते थे। अधिकतर विद्रोहियों के विपरीत वह अपने विपक्षी से युद्ध-सामग्री प्राप्त नहीं करते थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें उनके विशिष्ट स्व-निर्मित हथियार 'सविनय अवज्ञा' के उपयोग का अवसर दिया था। फरवरी १९२२ में चौरीचौरा में भीड़ द्वारा पुलिस के सिपाहियों की निर्मम हत्या ने उन्हें बारडोली का सत्याग्रह स्थगित करने को प्रेरित किया था परंतु वह भूले नहीं। उन्होंने छ वर्ष प्रतीक्षा की और १२ फरवरी १९२८ का उसी स्थान बारडोली में सत्याग्रह का शख बजाया।

गांधीजी ने इसका सचालन खुद नहीं किया। वह तो दूर से निगहबानी करते रहे उसके बारे मे लंबे-लंबे लेख लिखते रहे और व्यापक रूप से निर्देशन और प्रेरणा देते रहे। वास्तविक नेता थे वल्लभभाई पटेल और उनके सहायक थे। अब्बास तैयबजी।

पटेल के नेतृत्व मे गाववालों ने टैक्स देने बंद कर दिये। कलैक्टर ने उनकी भैंसें जब्त कर ली। किसानों को खेतों से खदेड़ दिया गया रसोईघरों पर ताले बोले गये और टैक्स के बदले में बरतन भांडे कुर्क कर लिए गये। किसान-लोग अहिंसा का पालन करते रहे।

१२ जून को बारडोली के सम्मान में सारे भारत में हड़ताल मनाई गई।

पटेल की गिरफ्तारी की किसी समय भी आशंका थी। इसलिए २ अगस्त को गांधीजी बारडोली जा पहुंचे। ६ अगस्त को सरकार ने घुटने टेक दिये। उसने वादा किया कि सब कैदी छोड़ दिये जायेंगे, कुर्क की हुई सब जमीनें वापस कर दी जायेंगी, कुर्क किये जानवर या उनकी कीमतें लौटा दी जायेंगी और मूल बात यह, कि बढ़े हुए टैक्स मंसूख कर दिये जायेंगे।

गांधीजी ने दिखा दिया कि उनका हथियार कारगर सिद्ध हुआ।

क्या वह इसका विशाल पैमाने पर उपयोग करना चाहेंगे?

भारत में उथल-पुथल मच रही थी। ३ फरवरी १९२८ से जब साइमन कमीशन ने बंबई में कदम रखा था भारत ने उसका बहिष्कार कर दिया था। गांधी जी का बहिष्कार इतना पूर्ण था कि उन्होंने कमीशन का कभी नाम तक नहीं लिया। उनके लिए उसका अस्तित्व ही नहीं था। परन्तु दूसरे लोगों ने उसके विरुद्ध प्रदर्शन किये। लाहौर में एक विशाल साइमन-विरोधी सभा में पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय पर पुलिस की लाठी पड़ी और कुछ ही दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। इसी समय के लगभग लखनऊ में साइमन-विरोधी सभा में जवाहरलाल नेहरू पर भी लाठियां पड़ीं। दिसंबर १९२२ में लाहौर के सहायक पुलिस सुपरिंटेंडेंट साण्डर्स की हत्या कर दी गई। भगतसिंह, जिस पर इस हत्या का आरोप था फरार हो गया और उसे तुरंत ही एक वीर का दर्जा प्राप्त हो गया।

बंगाल में तूफानी चिड़िया सुभाषचंद्र बोस जिनकी विचार-धारा थी—"मुझे खून दो और मैं तुमसे आजादी का वादा करता हूं" बहुत लोकप्रिय हो गये और उतावले नवयुवकों का एक बड़ा दल उनके पीछे हो गया। गांधीजी इस भावुक वातावरण को पहचान गये। उनके मुंह से एक शब्द निकलने की देर थी कि देश भर में हजार बारदोलियां उठ खड़ी होतीं। परंतु चतुर युद्ध-नायक की तरह गांधीजी लड़ाई के लिए उपयुक्त समय और स्थान हमेशा सावधानी से चुनते थे।

अनिश्चितता की इस मानसिक स्थिति में गांधीजी दिसंबर १९२८ में कलकत्ता में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन के लिए चल पड़े।

कांग्रेस अधिवेशन में सीधी कार्रवाई की मांग की गई। लेकिन गांधीजी जानते थे कि संगठन क्या चीज है और वास्तविकता क्या है। कांग्रेस युद्ध की बात करती थी। क्या यह सेना कारगर थी? गांधीजी कांग्रेस की 'कायापलट' करना चाहते थे।

परंतु कांग्रेस अपना अधिकार नहीं चाहती थी। सावधानी उसके कार्यक्रम में

ही नहीं थी। नवयुवकों का नेतृत्व करनेवाले सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि तुरंत स्वाधीनता की घोषणा कर दी जाय और उसके बाद स्वाधीनता का युद्ध छेड़ दिया जाय। गांधीजी ने सलाह दी कि ब्रिटिश सरकार को दो वर्ष की चेतावनी दी जाय। दबाव पड़ने पर उन्होंने इसे कम करके एक वर्ष कर दिया। यदि ३१ दिसंबर १९२९ तक भारत को औपनिवेशिक दर्जे के अंतर्गत आजादी न मिली तो "मैं अपने आपको 'इंडिपेंडेंसवाला' घोषित कर दूंगा।"

१९२६ का वर्ष नाजुक और निर्णायक बनने जा रहा था।

८ अप्रैल को भगतसिंह ने लेजिस्लेटिव असेंबली भवन में जाकर सदस्यों के बीच दो बम फेंके और फिर पिस्तौल से गोलियां चलाना शुरू कर दिया। सर जान साइमन ने गैलरी में बैठे हुए इस कांड को देखा। यह भारत में उनका अंतिम बड़ा अनुभव था। उसी महीने कमीशन इंग्लैंड लौट गया।

मई १९२९ में इंग्लैंड के राष्ट्रीय चुनावों में मजदूर दल को अल्पमत प्राप्त हुआ परंतु चूंकि इस दल के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी इसलिए उसीने पद-ग्रहण किया और रैमजे मैकडॉनल्ड प्रधान मंत्री बने। जून में लार्ड अरविन नई सरकार से और खासकर भारत के नये राज्य-सचिव मि. वेजवुड बैन से सलाह मशविरा करने इंग्लैंड गये।

१९३ की पहली जनवरी अब दूर नहीं थी।

लार्ड अरविन मजदूर सरकार के सदस्यों आदि से कई महीने चर्चाएं करके अक्तूबर में वापस आ गये। वाइसराय ने देखा कि भारत की परिस्थिति 'खतरे की हालत के किनारे पर' है। १९३ की महान चुनौती के लिए पूरी तैयारी कर ली गई।

तदनुसार अक्तूबर १९२९ की अंतिम तारीख को लार्ड अरविन ने 'अपना अत्यंत महत्त्वपूर्ण बयान' दिया जिसमें गोलमेज परिषद बुलाये जाने की बात थी।

कुछ दिन बाद गांधीजी दिल्ली में डा. अनसारी श्रीमती ऐनी बेसेंट, मोतीलाल नेहरू सर तेजबहादुर सप्रू पंडित मालवीय श्रीनिवास शास्त्री आदि से मिले और एक 'नेताओं का घोषणा-पत्र' प्रकाशित किया गया। वाइसराय की घोषणा के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अनुकूल थी।

गांधीजी तथा समोमूढ राजनीतिज्ञों के इस मैत्रीपूर्ण रुख ने तूफान खड़ा कर दिया खासकर जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बसु की ओर से। परंतु इससे विचलित न होकर तथा इस भरोसे के साथ कि राष्ट्र अंग्रेजों से शांतिपूर्ण सम-

मौका स्वीकार कर लेता गांधीजी तथा उनके साथियों ने अपनी खोजबीन जारी रखी। उन्होंने २१ दिसंबरको तीसरे पहर वाइसराय से मिलने का समय निश्चित कर लिया।

यह मुलाकात ढाई घंटे चली। गांधीजी ने पूछा कि क्या वाइसराय महोदय ऐसी गोलमेज परिषद का वादा कर सकते हैं जो भारत को संपूर्ण और तुरंत औपनिवेशिक दर्जा देनेवाला मसविदा तैयार करे, जिसमें साम्राज्य से विलग होने का अधिकार भी सम्मिलित हो?

अरविन ने उत्तर दिया कि कोई खास रुख अख्तियार करने के लिए वह परिषद के निर्णय की पूर्व-कल्पना करने में या उसे बांधने में बिलकुल असमर्थ हैं।

ये घटनाएं दिसंबर के अंत में लाहौर में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में होनेवाले ऐतिहासिक कांग्रेस-अधिवेशन की भूमिका बनीं।

और ठीक उसी क्षण जब १९२९ का वर्ष समाप्त हुआ और १९३ का वर्ष प्रारंभ हुआ कांग्रेस ने गांधीजी को अपना सूत्रधार बनाकर आज़ादी का झंडा फहरा दिया और पूर्ण स्वाधीनता तथा संबंध-विच्छेद की घोषणा करनेवाला प्रस्ताव पास कर दिया।

सत्याग्रह कब कहां और किस मुद्दे से किया जाय इसका निर्णय गांधीजी पर छोड़ दिया गया।

१३

समुद्र-तट को रंगभूमि

गांधीजी व्यक्तियों के सुधारक थे। इसलिए उन्हें उन साधनों की चिंता थी जिनके द्वारा भारत की मुक्ति प्राप्त हो सके। यदि साधनों ने व्यक्ति को भ्रष्ट कर दिया तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

नव वर्ष की शाम के हर्षमस्ती समारोह के बाद के सप्ताहों में गांधीजी सत्याग्रह के ऐसे रूप की तलाश में रहे, जिसमें हिंसा की गुंजाइश न हो।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जो उन दिनों साबरमती के आस-पास थे १ जनवरी को गांधीजी से मिलने आये। उन्होंने पूछा कि १९३ में गांधीजी देश को क्या देनेवाले हैं। गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं रात-दिन व्यग्रतापूर्वक सोच रहा हूं, परंतु मुझे घोर अंधकार में प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं देती।"

छः सप्ताह तक गांधीजी अंतरात्मा की आवाज सुनने की राह देखते रहे।

अंत में शायद उन्होंने यह आवाज सुन ली जिसका अर्थ यही हो सकता था कि वह एक निश्चय पर पहुंच गये हैं, क्योंकि 'यंग इंडिया' का २७ फरवरी का अंक गांधीजी के 'मेरी गिरफ्तारी के बाद' शीर्षक संपादकीय लेख से शुरू हुआ और फिर उसमें नमक-कानून के अत्याचारों को बहुत जगह दी गई। अगले अंक में नमक-कानून के अन्तर्गत दी जानेवाली सजाओं का जिक्र किया गया। २ मार्च १९३० को गांधीजी ने वाइसराय को एक लंबा पत्र लिखा जिसमें नोटिस दिया गया कि नौ दिन बाद सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

किसी सरकार के सर्वोच्च अधिकारी को इससे अधिक निराला पत्र आज तक नहीं मिला था

"प्रिय मित्र

"सत्याग्रह शुरू करने से पूर्व और जिस खतरे से मैं इतना डर रहा हूं उसे उठाने से पूर्व मैं आपसे बात करना और कोई रास्ता निकालना चाहता हूं।

"मेरी निजी निष्ठा बिल्कुल स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को चोट नहीं पहुंचा सकता, आदमियों को तो पहुंचा ही कैसे सकता हूं चाहे वे मुझे या मेरे लोगों को कितना ही भारी नुकसान क्यों न पहुंचायें? इसलिए यह मानते हुए भी कि ब्रिटिश शासन एक अभिशाप है, मैं किसी भी अंग्रेज को या उसके उचित हित को हानि पहुंचाने का इरादा नहीं करता।

"और ब्रिटिश शासन को मैं अभिशाप क्यों मानता हूं?

"अपनी उत्तरोत्तर शोषण की पद्धति और बरबाद करनेवाले सैनिक तथा सिविल शासन के खर्चे से जिसे यह देश कदापि नहीं उठा सकता यहां के करोड़ों मूक व्यक्तियों को चूस डाला है।

"राजनैतिक रूप से उसने हमें गुलाम बना दिया है। उसने हमारी संस्कृति की जड़ खोखली कर दी है और हम लोगों को शस्त्र न रखने देने के निर्दय निषेध की नीति के कारण आध्यात्मिक रूप से भी हमें तेजहीन कर दिया है।

"मुझे भय है कि निकट भविष्य में भारत को स्वायत्त शासन देने की कोई इच्छा नहीं है।

"यह नितांत स्पष्ट है कि जिम्मेदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश-नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार नहीं करते जिससे भारत में ब्रिटेन के व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। यदि शोषण की प्रक्रिया का अंत करने के लिए कुछ

नहीं किया गया तो बड़ी तेजी से भारत रक्तरंजित हो जायगा।

मैं आपके सामने कुछ मुख्य बातें उपस्थित करता हूँ।

"सारी मालगुजारी का बहुत बड़ा भाग भूमि से प्राप्त होता है। उस पर जो भयंकर दबाव है, उसमें स्वतंत्र भारत में पर्याप्त परिवर्तन होना चाहिए। सारी मालगुजारी पद्धति में ऐसा सुधार होना चाहिए कि उससे किसानों का मुख्य रूप से हित साधन भला हो। लेकिन ब्रिटिश-पद्धति तो ऐसी बनाई गई प्रतीत होती है कि उससे किसान के प्राण ही निकाल लिए गये हैं। अपने को जीवित रखने के लिए उसे जिस नमक का प्रयोग करना पड़ता है उस नमक पर इस ढंग से कर लगा है कि उसका सबसे अधिक बोझ उसी पर पड़ता है। नमक सबको एक लाठी से हांकता है। गरीब आदमी के लिए यह कर और भी भारी बोझ पड़ता है जब यह ध्यान आता है कि यह ऐसी चीज है, जिसे गरीब आदमी अमीर से अधिक खाता है। आबकारी की आमदनी भी गरीबों से ही होती है। यह उनके स्वास्थ्य और नैतिकता की बुनियाद का ही खोखला कर डालती है।

"ऊपर जिस अन्याय का उल्लेख किया गया है, वह उस विदेशी शासन को चलाने के लिए किया जाता है जो स्पष्टतः संसार का सबसे मंहगा शासन है। अपने वेतन को ही लीजिये। यह प्रति मास २१)रुपये से ऊपर पड़ता है अप्रत्यक्ष भत्ते आदि अलग। आपको ७) प्रति दिन से अधिक मिलता है, जबकि भारत की औसत आमदनी दो आने प्रति-दिन से भी कम है। इस प्रकार आप भारत की औसत आमदनी से पांच हजार गुने से भी कहीं अधिक ले रहे हैं। ब्रिटिश प्रधान-मंत्री ब्रिटेन की औसत आमदनी का सिर्फ नब्बे गुना लेता है। मैं घुटने टेककर आपसे विनय करता हूं कि आप इस विषय पर विचार करें। यह निजी दृष्टांत मैंने एक दुःखद सत्य को आपके गले उतारने की खातिर लिया है। मनुष्य के रूप में आपके प्रति मेरे मन में इतना मान है कि मैं आपकी भावनाओं को चोट पहुंचाने की इच्छा नहीं कर सकता। मैं जानता हूं, जितना वेतन आप पाते हैं उतने की आपको आवश्यकता नहीं है। शायद आपका समूचा वेतन दान में जाता है। लेकिन जिस नियम द्वारा ऐसी व्यवस्था होती है उसे तत्काल खत्म कर देना चाहिए। वाइसराय के वेतन के बारे में जो सत्य है, वही सारे शासन के बारे में है। ब्रिटिश सरकार की सुसंगठित हिंसा को सुव्यवस्थित अहिंसा ही रोक सकती है।

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी जो फिलहाल सत्याग्रह-

आश्रम के वासियों तक ही सीमित होगी परंतु अंत में उसमें वे लोग भी आ सकेंगे, जो सम्मिलित होना चाहेंगे।

'मेरी इच्छा अहिंसा द्वारा ब्रिटिश लोगों में हृदय-परिवर्तन करने और इस प्रकार उन्हें यह दिखाने की है कि भारत को उन्होंने कितना नुकसान पहुंचाया है। मैं आपके देशवासियों को हानि नहीं पहुंचाना चाहता—मैं तो उनकी सेवा ही करना चाहता हूं जैसेकि अपने देश की करना चाहता हूं।

"यदि भारत के लोग मेरा साथ दें जैसीकि मुझे आशा है कि देंगे तो वे जो कष्ट सहन करेंगे उससे पत्थर-जैसा हृदय भी पिघल जायगा। हां यदि ब्रिटिश राष्ट्र इससे पहले ही पीछे हट जाय तो बात दूसरी है।

"सविनय-अवज्ञा की योजना द्वारा उन बुराइयों का निराकरण होगा जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है। मैं बड़े आदर-भाव से आपको आमंत्रण देता हूं कि आप उन बुराइयों को तत्काल दूर करने के लिए मार्ग प्रशस्त करें और इस प्रकार समान व्यक्तियों के सच्चे सम्मेलन के लिए रास्ता साफ करें। यदि आप इन बुराइयों को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं निकाल सके और यदि मेरे इस पत्र का आपके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो इस महीने के ग्यारहवें दिन मैं आश्रम के उतने संगी-साथियों के साथ जितने कि मैं ले सकूंगा नमक-कानून की धारा को तोड़ने के लिए निकल पड़ूंगा। मैं जानता हूं कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरी योजना को विफल कर सकते हैं। मुझे आशा है कि अनुशासित ढंग पर हजारों लोग मेरे बाद इस काम को जारी रखने के लिए तैयार होंगे।

"यदि आप इस मामले की मुझसे चर्चा करना चाहें और तब तक के लिए इस पत्र के प्रकाशन को स्थगित करना चाहें तो तार दे दीजिये। तार पाते ही मैं खुशी से रोक दूंगा।

"यह पत्र मैंने किसी भी प्रकार धमकी देने के लिए नहीं लिखा बल्कि एक निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवाले के सामान्य तथा पवित्र कर्तव्य के रूप में लिखा है। इसलिए मैं इसे एक ऐसे युवक अंग्रेज-मित्र के हाथ भेज रहा हूं, जो भारतीय हित में विश्वास करता है।

आपका सच्चा मित्र
मो० क० गांधी"

इस पत्र को वाइसराय के पास ले जानेवाले एक अंग्रेज शांतिवादी (क्वेकर) रेजिनाल्ड रेनाल्ड्स थे। उन्होंने वाइसराय भवन में जाकर यह पत्र वाइसराय को

लिया जो उसे लेने के लिए मेरठ का पाला मैच छोड़कर तत्काल लौट आये थे।

अरविन ने उत्तर न देना ही पसंद किया। उनके सचिव ने कुछ शब्दों में प्राप्ति-स्वीकार करते हुए लिख भेजा— हिज एक्सेलेंसी को यह जानकर खेद हुआ कि आप ऐसी कार्य प्रणाली का विचार कर रहे हैं, जिसमें कानून का उल्लंघन और सार्वजनिक शांति को खतरा स्पष्ट रूप से अवश्यंभावी है।

इस कानून और व्यवस्था के पुर्जे ने जिसमें न्याय और नीति का मामला सुलझाने की अस्वीकृति दी गई थी गांधीजी के मुंह से ये शब्द निकलवाये—"मैंने घुटने टेककर रोटी मांगी और बदले में मुझे पत्थर मिला। अरविन ने गांधीजी से मिलने से इन्कार कर दिया। उन्हें गिरफ्तार भी नहीं कराया। गांधीजी ने कहा—"सरकार बड़ी हैरान और परेशान है। विद्रोही को न पकड़ना खतरे की बात थी और पकड़ते तो उसमें भी खतरा था।

११ मार्च का सारा देश चाव और कौतूहल से उमड़ रहा था।

गांधीजी को प्रतीत हुआ कि जीवन का यह सबसे अच्छा अवसर है।

१२ मार्च को प्रार्थना करके गांधीजी तथा आश्रम के अठहत्तर सदस्यों ने साबरमती से डांडी के लिए प्रस्थान किया। गांधीजी के हाथ में एक इंच मोटी और ५४ इंच लंबी लाठी थी जिसके एक ओर लोहा लगा था। धूल भरे रास्तों और गांवों में होकर गांधीजी और उनके ७८ अनुयायियों ने २४ दिन में २_ मील रास्ता पार किया। गांधीजी ने कहा— 'हम लोग भगवान के नाम पर कूच कर रहे हैं।

जब ५ अप्रैल को गांधीजी डांडी पहुंचे तो आश्रमवासियों का यह छोटा-सा दल बढ़ते-बढ़ते कई हजार की अहिंसक सेना बन गया।

५ अप्रैल की रात भर आश्रमवासियों ने प्रार्थना की और सुबह सब लोग गांधीजी के साथ समुद्र तट पर गये। गांधीजी ने समुद्र में गोता लगाया किनारे पर लौटे और लहरों का छोड़ा हुआ कुछ नमक उठाया। इस प्रकार गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के उस कानून को तोड़ दिया जिसके अनुसार सरकारी ठेके से न लिया हुआ नमक रखना गुनाह था।

एक शक्तिशाली सरकार को सार्वजनिक रूप से चुनौती देते हुए चुटकी भर नमक उठाना और मुजरिम बन जाना—इसके लिए एक महान कलाकार की सूझ-बूझ, ज्ञान और प्रदर्शनात्मक बुद्धि की आवश्यकता थी।

नमक उठाने के बाद गांधीजी वहां से छूट गये। इससे भारत भर को इशारा मिल गया।

इसके बाद तो बिना हथियारों का बलवा हो गया। भारत के सभी समुद्र-तट पर का हर एक ग्रामवासी नमक बनाने के लिए तसला लेकर समुद्र में उतर पड़ा। पुलिस ने सामूहिक रूप से गिरफ्तारियां शुरू कर दीं। पुलिस ने बल प्रयोग भी शुरू कर दिया। सत्याग्रही लोग गिरफ्तारी का प्रतिरोध नहीं करते थे परंतु अपने बनाये हुए नमक की जब्ती का प्रतिरोध करते थे।

गांवों में लाखों लोग अपना नमक बनाने लगे। नमक-सत्याग्रह सारे देश में फैल गया। लगभग एक लाख राजनैतिक अपराधी जेलों में ठूंस दिये गये।

गांधीजी ने डांडी के समुद्र-तट पर नमक बनाया। उसके एक महीने बाद सारा भारत क्षुब्ध होकर विद्रोह की भावना से उबल रहा था। परंतु चटगांव के सिवा भारत में कहीं हिंसा नहीं हुई और कांग्रेस की ओर से तो कहीं हिंसा हुई ही नहीं।

४ मई को गांधीजी का शिविर कराडी में था। उसी रात को पौने बजे जब सब सोये हुए थे सूरत के अंग्रेज जिला मजिस्ट्रेट ने तीस हथियारबंद सिपाहियों और दो अफसरों के साथ बाड़े में धावा बोल दिया। अंग्रेज अफसर ने गांधीजी के चेहरे पर टार्च की रोशनी डाली। गांधीजी जाग उठे और मजिस्ट्रेट से बोले—"क्या आप मुझे चाहते हैं?"

मजिस्ट्रेट ने औपचारिक रूप से पूछा

"क्या आप मोहनदास करमचंद गांधी हैं?"

"जी हां।

"मैं आपको गिरफ्तार करने आया हूं।

"कृपया मुझे नित्य-कर्म के लिए कुछ समय दीजिये।

मजिस्ट्रेट ने मान लिया।

मंजन करते-करते गांधीजी ने कहा—"मजिस्ट्रेट साहब क्या मैं जान सकता हूं कि मुझे किस अपराध में गिरफ्तार किया जा रहा है? क्या दफा १२४ में?"

"जी नहीं दफा १२४ में नहीं। मेरे पास लिखित हुक्मनामा है।"

गांधीजी ने पूछा —"क्या आप उसे पढ़कर सुनाने की कृपा करेंगे?"

मजिस्ट्रेट ने पढ़ा "चूंकि गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल मोहनदास करमचंद गांधी की कार्रवाइयों को खतरा समझते हैं, इसलिए उनका आदेश है कि उक्त मोहनदास करमचंद गांधी को १८२७ के रेगुलेशन २५ के मातहत प्रतिबंध में

रखा जाय और सरकार की मर्जी हो तबतक वह जेल भुगते और तुरंत यरवदा सेंट्रल जेल पहुंचाया जाय।

गांधीजी ने पंडित खरे से भजन गाने को कहा। भजन के दौरान में गांधीजी ने सिर झुका लिया और प्रार्थना की। फिर वह मजिस्ट्रेट के पास गये और वह उन्हें तैयार खड़ी हुई गाड़ी में ले गया।

गांधीजी पर न तो मुकदमा चला न सजा दी गई और न जेल की अवधि ही निश्चित की गई।

जेल में दाखिल होने पर अधिकारियों ने गांधीजी को नापा। वह ५ फुट ५ इंच ऊंचे थे। शायद कभी उन्हें फिर तलाश करने की जरूरत पड़े इसलिए उन्होंने उनके शरीर पर किसी चिह्न की खोज की। दाहिनी जांघ पर घाव का निशान था नीचे के दाहिने पलक पर तिल था और बाईं कोहनी के नीचे फली के आकार का एक निशान।

गांधीजी को जेल में रहना प्रिय था। अपनी गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद उन्होंने मीराबहन को लिखा—"मैं यहां खूब सुख हूं और नींद की कमी पूरी कर रहा हूं।

अपने मंगलवार को उन्होंने आश्रम के छोटे बच्चों के नाम एक पत्र भेजा

"छोटी चिड़ियां मामूली चिड़ियां बिना पंखों के नहीं उड़ सकती। हां पंख हों तो सब उड़ सकती हैं। लेकिन बिना पंखोंवाले तुम लोग उड़ना सीख लोगे तो तुम्हारी सारी मुसीबतें सचमुच दूर हो जायेंगी। और मैं तुम्हें उड़ना सिखाऊंगा।

"देखो मेरे पंख नहीं हैं लेकिन मन से मैं उड़कर रोज तुम्हारे पास पहुंच जाता हूं। देखो यह रही छोटी विमला यह रहा हरी और यह है धरमकुमार। और मन से तुम भी उड़कर मेरे पास आ सकते हो।

"मुझे बताओ कि तुम में से कौन-कौन प्रभुभाई की शाम की प्रार्थना में ठीक से प्रार्थना नहीं करते ?

"तुम सब अपनी सही करके मुझे चिट्ठी भेजो। जो सही न कर सकें, वे क्रास (×) लगा दें।

—बापू के आशीर्वाद"

गिरफ्तारी के कुछ ही समय पहले गांधीजी ने वाइसराय के नाम एक पत्र का मसविदा तैयार किया था जिसमें लिखा था कि "यदि ईश्वर की इच्छा हुई," तो उनका इरादा कुछ साथियों को लेकर धरासना के नमक भंडार पर धावा

करने का है। ईश्वर को यह मंजूर नहीं था परंतु गांधीजी के साथी इस योजना पर अमल करने के लिए चल पड़े। श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में पच्चीस सौ स्वयंसेवक उस स्थान पर जा पहुंचे।

युनाइटेड प्रेस का विख्यात संवाददाता वेब मिलर वहां मौजूद था और उसने वहां का आंखों-देखा हाल लिखा है—"नमक की विशाल क्यारियों के चारों ओर खाइयां खोद दी गई थीं और कांटेदार तारों की बाड़ लगा दी गई थी। मणीलाल गांधी के नेतृत्व में गांधीजी की सेना बिल्कुल खामोशी के साथ आगे बढ़ी और बाड़े से लगभग सौ गज की दूरी पर रुक गई। भीड़ में से एक छांटा हुआ दस्ता आगे बढ़ा और खाइयों को पार करके कांटेदार तारों की बाड़ के पास पहुंचा। पुलिस अफसरों ने उन्हें पीछे हटने का हुक्म दिया परन्तु वे बढ़ते ही चले गये। हुक्म मिलते ही बीसियों सिपाही बढ़ते हुए लोगों पर एकदम टूट पड़े और उनके सिरों पर लोहे का मूठ लगी लाठियां बरसाने लगे। किसी भी सत्याग्रही ने चोटें बचाने के लिए हाथ तक न उठाया। न कोई लड़ाई थी न खींच-तान। सत्याग्रही केवल आगे बढ़े चले जाते थे—जबतक कि लाठियों की मार से गिर न जाते।"

एक अंग्रेज अफसर सरोजिनी नायडू के पास पहुंचा और बोला—"आपको गिरफ्तार किया जाता है। मणीलाल को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

अंग्रेज लोग भारतवासियों को जूतों और बंदूक के कुंदों से मार रहे हैं। भारतवासी न तो गिड़गिड़ाते थे न शिकायत करते थे न पीछे हटते थे। इस चीज ने इंग्लैंड को बलहीन और भारत को अजेय बना दिया।

१४

विद्रोही के साथ मंत्रणा

इंग्लैंड के कितने ही मजदूरदली मंत्री और उनके समर्थक भारत की स्वाधीनता के हामी थे। गांधीजी और हजारों भारतीय राष्ट्रवादियों को जेलों में रखना मजदूर-दल को लजानेवाली बात थी। लार्ड इरविन के लिए तो गांधीजी का कारावास परेशानी से अधिक था। इससे उनका शासन ही ठप हो गया था।

मैकडोनल्ड (ब्रिटिश प्रधान-मंत्री) और इरविन के लिए यह स्थिति राजनैतिक दृष्टि से असहनीय थी। जेल में बैठे हुए गांधीजी उनके लिए उतनी ही

युवराज भारत गये थे तब गांधीजी उनके चरणों में गिर पड़े। अगली बार स्लोकोंब से मुलाकात होने पर गांधीजी मुस्कराये और बोले— "मि. स्लोकम, यह बात तो आपकी कल्पना को भी लजाती है। मैं भारत के गरीब-से-गरीब अछूत के आगे घुटने टेक दूंगा और उसके चरणों की धूल ले लूंगा, परंतु मैं युवराज तो क्या बादशाह तक के पांवों में नहीं गिरूंगा केवल इस कारण से कि वह धृष्टतापूर्ण पराक्रम का प्रतिनिधि है।

बादशाह जार्ज पंचम तथा रानी मेरी के साथ चाय-पान के लिए गांधीजी बकिंघम महल गये। इस घटना से पूर्व सारे इंग्लैंड में यह उत्सुकता रही कि वह क्या पहनकर जायेंगे। वह धोती, कम्बल, दुशाला और अपनी लटकती हुई घड़ी पहनकर गये। बाद में उनसे किसीने पूछा कि वह काफी कपड़े पहनकर गये थे या नहीं? उन्होंने उत्तर दिया—"बादशाह इतने कपड़े पहने हुए थे जो हम दोनों के लिए काफी थे।

इंग्लैंड के युद्धकालीन प्रधान मंत्री डेविड लॉयड जार्ज ने गांधीजी को चर्ट में अपने फार्म पर बुलाया। उनकी तीन घंटे बातें हुईं। १९३८ में जब मैं लॉयड जार्ज से मिलने चर्ट गया तो उन्होंने गांधीजी की मुलाकात का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि नौकरों ने वह काम किया जो आजतक कोई भी मेहमान उन्हें करने के लिए प्रेरित नहीं कर सका था—वे सब-के-सब इस संत से मिलने के लिए बाहर निकल आये।

चार वर्ष बाद मैंने गांधीजी को बतलाया कि लॉयड जार्ज ने उनकी मुलाकात के बारे में मुझसे बात की थी। गांधीजी ने उत्सुकता से पूछा—"अच्छा, उन्होंने क्या कहा था?

"उन्होंने कहा कि आप उनके कोच पर बैठ गये और ज्योंही आप बैठे कि एक काली बिल्ली, जिसे उन दोनों ने पहले कभी नहीं देखा था, खिड़की में से आकर आपकी गोद में बैठ गई।

गांधीजी ने याद करके कहा—"यह ठीक है।

"लॉयड जार्ज ने यह भी कहा कि जब आप चले गये तो बिल्ली भी गायब हो गई।

गांधीजी ने कहा—"यह बात मुझे मालूम नहीं।

मैंने फिर कहा—"लॉयड जार्ज ने बताया कि जब मिस स्लेड चर्ट में उनसे मिलने आईं तो वही बिल्ली फिर आ गई।

"यह बात भी मुझे मालूम नहीं" गांधीजी ने कहा।

चार्ली चैपलिन ने गांधीजी से मिलना चाहा। गांधीजी ने कभी उनका नाम नहीं सुना था उन्होंने कभी चल-चित्र नहीं देखा था। जब उन्हें चार्ली चैपलिन के बारे में बतलाया गया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। परंतु जब उन्हें यह बताया गया कि चार्ली चैपलिन का जन्म एक गरीब घर में हुआ था तो उन्होंने डा कटियाल के घर पर उनसे मुलाकात की। चार्ली चैपलिन का सबसे पहला सवाल यह था कि मशीन के बारे में उनका क्या मत है। संभव है कि इस प्रश्न के उत्तर से ही इस अभिनेता को बाद में अपनी एक फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली हो।[1]

जार्ज बर्नार्ड शा ने भी गांधीजी से मिलने का सम्मान प्राप्त किया। शा ने प्रसा धारण नम्रता के साथ गांधीजी से हाथ मिलाया और अपने-आपको महात्मा माइनर (छोटा महात्मा) बतलाया। शा के विनोद में गांधीजी को खूब मजा आया।

गांधीजी लार्ड अरविन जनरल स्मट्स कैंटरबरी के आर्कबिशप हैरल्ड लास्की सी पी स्काट आर्चर हैरसन आदि सैकड़ों लोगों से मिले। चर्चिल ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी मैडम मेरिया मांटेसरी के ट्रेनिंग कालेज में गये वहां अपने भाषण में उन्होंने कहा—"मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चा जन्म से अपराधी नहीं होता। जब बच्चा बढ रहा हो उस समय माता-पिता यदि अपना आचरण अच्छा रखें तो बच्चा स्वभाव से ही सत्य और प्रेम का नियम पालन करेगा। सैकड़ों— मैं कहने वाला था हजारों—बच्चों के अपने अनुभव के आधार पर मैं जानता हूं कि मान अपमान की भावना उनमें आप-हम से अधिक होती है। ईसा मसीह ने एक बहुत ही तथ्यपूर्ण बात कही है कि ज्ञान बच्चों के मुह से निकलता है। मैं इस बात में विश्वास करता हूं।

गांधीजी दो बार आक्सफोर्ड गये और उनकी ये यात्राएं स्मरणीय हैं। पहली बार वह बैलियोल के मास्टर, प्रोफेसर लिंडसे के यहां ठहरे। दूसरी बार वह डा एडवर्ड टॉमसन के घर पर ठहरे। यहां उनकी बातचीत एक मंडली के साथ हुई, जिसमें प्रोफेसर लिंडसे गिल्बर्ट मरे, प्रोफेसर एस कूपलैंड सर माइकेल सैडलर, पी सी सिर्योन तथा अन्य सुलझे हुए दिमागवाले व्यक्ति थे।

---

१ चार्ली चैपलिन की मशहूर फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' में मशीनों का मजाक उड़ाया गया है।

परेशानी के हेतु थे जितने सत्याग्रह-यात्रा पर जाते हुए या समुद्र-तट पर या आश्रम में।

अपनी उलझन और भारत में बढ़ते हुए विद्रोह को महसूस करके अधिकारियों ने महात्माजी की गिरफ्तारी के दो ही सप्ताह बाद १९ और २० मई को लंदन के मजदूरदली-पत्र 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता खूबसूरत और लाल दाढ़ीवाले जार्ज स्लोकम को जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति दी। गांधीजी ने स्लोकम को वह शर्तें बतलाईं, जिन पर वह ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए तैयार हो सकते थे। जुलाई में वाइसराय की मर्जी से उदारदली नेता सर तेजबहादुर सप्रू व श्री जयकर मंत्रणा के लिए जेल में गांधीजी के पास गये। गांधीजी ने कह दिया कि कांग्रेस-कार्यसमिति से परामर्श किये बिना वह उनके सुझावों का जवाब नहीं दे सकते। तदनुसार मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सैयद महमूद को संयुक्त प्रांत की जेल से स्पेशल ट्रेन द्वारा गांधीजी के पास पूना जेल पहुंचाया गया, जहां श्रीमती नायडू और वल्लभभाई पटेल भी कैद थे।

दो दिन (१४-१५ अगस्त) की चर्चाओं के बाद नेताओं ने सार्वजनिक घोषणा की कि उनके तथा ब्रिटिश सरकार की स्थिति के बीच 'न पटनेवाली खाई' है।

१२ नवंबर १९३० को लंदन में पहली गोलमेज परिषद शुरू हुई। कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इसमें शामिल नहीं हुआ।

२६ जनवरी १९३१ को स्वाधीनता-दिवस पर अरविन ने गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू तथा बीस से अधिक अन्य कांग्रेसी नेताओं को बिना शर्त रिहा कर दिया। इस सद्भावना सूचक संकेत के सम्मान में गांधीजी ने वाइसराय को मुलाकात के लिए पत्र लिखा।

अरविन तथा गांधीजी की पहली मुलाकात १७ फरवरी को तीसरे पहर २-३० बजे शुरू हुई और शाम के ६-१० बजे तक चली।

गांधीजी और अरविन १८ फरवरी को तीन घंटे तक और १९ को आधा घंटे तक फिर मिले। इस बीच अरविन अपने अधिकारियों को छः हजार मील दूर लंदन तार खटखटा रहे थे और गांधीजी नई दिल्ली में कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यों के साथ लंबी बैठकें कर रहे थे। (मोतीलाल नेहरू का ६ फरवरी को देहांत हो चुका था)। दोनों दलों के बीच इधर-से-उधर दौड़ते हुए सप्रू, जयकर व शास्त्री गतिरोध टालने का प्रयत्न कर रहे थे।

कठिनाइयां पैदा होने लगीं। सात दिन तक कोई बातचीत नहीं हुई। १ मार्च

को गांधीजी फिर मरविन से मिलने आये और दोनों आधी रात के बाद तक बातें करते रहे। गांधीजी रात को २ बजे पैदल ही अपने निवास-स्थान पर पहुंचे।

अंत में बहुत से आपसी वाद-विवाद के बाद ५ मार्च को सुबह गांधी-अरविन समझौते पर हस्ताक्षर हो गये। दो राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने एक इकरारनामे पर, एक सुलहनामे पर, एक स्वीकृत मसविदे पर, हस्ताक्षर कर दिये जिसका हर वाक्य हर शर्त कड़ी सौदेबाजी से ठोक-पीटकर तैयार की गई थी। ब्रिटिश प्रवक्ताओं ने दावा किया कि इस लड़ाई में अरविन की जीत हुई और इस दावे के पक्ष में काफी कहा जा सकता था। परंतु महात्माजी जितनी दूर की बातों पर विचार करते थे उसके लिहाज से भारत और इंग्लैंड के बीच सिद्धांत रूप से जो बराबरी का दर्जा कायम हो गया था वह उस व्यावहारिक रियायत से अधिक महत्त्वपूर्ण था जिसे वह इस अनिच्छुक साम्राज्य से ऐंठ सकते थे।

समझौते पर हस्ताक्षर होने के तुरंत ही बाद सरकार पर उसे भंग करने के आरोप लगाये गये और इस बार गांधीजी को नये वाइसराय लार्ड विलिंग्डन से फिर मंत्रणाएं करनी पड़ीं। मामला तय होने के बाद कराची के कांग्रेस-अधिवेशन ने जो सुभाषचंद्र बोस के कथनानुसार "महात्माजी की लोकप्रियता तथा प्रतिष्ठा का सर्वोच्च शिखर था" गांधीजी को दूसरी गोलमेज परिषद् के लिए अपना एक-मात्र प्रतिनिधि चुना।

गांधीजी १२ सितंबर को लंदन पहुंचे और ५ दिसंबर तक इंग्लैंड में रहे। वह लंदन के ईस्ट एंड (पूर्वी छोर) में किंग्स्ले हाल नामक भवन में कुमारी म्यूरियल लैस्टर के मेहमान होकर ठहरे।

मित्रों ने उनसे कहा कि यदि वह किसी होटल में ठहरें, तो उन्हें काम के लिए तथा आराम के लिए कई घंटे बच सकते हैं परंतु गांधीजी ने कहा कि उन्हें अपनी ही तरह के गरीब लोगों के बीच रहने में आनंद मिलता है।

सुबह के समय गांधीजी किंग्स्ले हाल के चारों ओर की गलियों में घूमते थे जिनमें निम्न वर्ग के लोग रहते थे। काम पर जानेवाले नर-नारी मुस्कराहट के साथ उनका अभिवादन करते थे और कुछ लोग उनसे बातचीत भी करने लगते थे। बच्चे दौड़कर आते और उनका हाथ पकड़ लेते।

समाचार-पत्रों के लिए गांधीजी अद्भुत सामग्री थे और पत्रकार लोग उनकी हरएक गतिविधि के समाचार देते थे। बाज स्लोकोंब ने गांधीजी की उदारता के बारे में एक कहानी लिखी और उदाहरण के तौर पर बतलाया कि जब इंग्लैंड के

युवराज भारत गये थे तब गांधीजी उनके चरणों में गिर पड़े। अगली बार स्लोकोंब से मुलाकात होने पर गांधीजी मुस्कराये और बोले—"मि. स्लोकम यह बात तो आपकी कल्पना को भी लजाती है। मैं भारत के गरीब-से-गरीब अछूत के आगे घुटने टेका हूंगा और उसके चरणों की धूल ले लूंगा परंतु मैं युवराज तो क्या बादशाह तक के पांवों में नहीं गिरूंगा केवल इस कारण से कि वह धृष्टतापूर्ण पराक्रम का प्रतिनिधि है।

बादशाह जार्ज पंचम तथा रानी मेरी के साथ चाय-पान के लिए गांधीजी बकिंघम महल गये। इस घटना से पूर्व सारे इंग्लैंड में यह उत्सुकता रही कि वह क्या पहनकर जायंगे। वह धोती चप्पल दुशाला और अपनी लटकती हुई घड़ी पहनकर गये। बाद में उनसे किसीने पूछा कि वह काफी कपड़े पहनकर गये थे या नहीं? उन्होंने उत्तर दिया—"बादशाह इतने कपड़े पहने हुए थे जो हम दोनों के लिए काफी थे।

इंग्लैंड के युद्धकालीन प्रधान मंत्री डेविड लॉयड जार्ज ने गांधीजी को चर्ट में अपने फार्म पर बुलाया। उनकी तीन घंटे बातें हुईं। १९३८ में जब मैं लॉयड जार्ज से मिलने चर्ट गया तो उन्होंने गांधीजी की मुलाकात का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि नौकरों ने वह काम किया जो आजतक कोई भी मेहमान उन्हें करने के लिए प्रेरित नहीं कर सका था—वे सब-के-सब इस संत से मिलने के लिए बाहर निकल आये।

चार वर्ष बाद मैंने गांधीजी को बतलाया कि लॉयड जार्ज ने उनकी मुलाकात के बारे में मुझसे बात की थी। गांधीजी ने उत्सुकता से पूछा—"अच्छा उन्होंने क्या कहा था?

"उन्होंने कहा कि आप उनके कोच पर बैठ गये और ज्योंही आप बैठे कि एक काली बिल्ली जिसे उन लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था खिड़की में से आकर आपकी गोद में बैठ गई।

गांधीजी ने याद करके कहा—"यह ठीक है।

"लॉयड जार्ज ने यह भी कहा कि जब आप चले गये तो बिल्ली भी गायब हो गई।

गांधीजी ने कहा—"यह बात मुझे मालूम नहीं।

मैंने फिर कहा—"लॉयड जार्ज ने बताया कि जब मिस स्लेड चर्ट में उनसे मिलने आईं, तो वही बिल्ली फिर आ गई।

"यह बात भी मुझे मालूम नहीं" गांधीजी ने कहा।

चार्ली चैपलिन ने गांधीजी से मिलना चाहा। गांधीजी ने कभी उनका नाम नहीं सुना था, उन्होंने कभी चल चित्र नहीं देखा था। जब उन्हें चार्ली चैपलिन के बारे में बतलाया गया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। परंतु जब उन्हें यह बताया गया कि चार्ली चैपलिन का जन्म एक गरीब घर में हुआ था, तो उन्होंने डा० कटियाल के घर पर उनसे मुलाकात की। चार्ली चैपलिन का सबसे पहला सवाल यह था कि मशीन के बारे में उनका क्या मत है। संभव है कि इस प्रश्न के उत्तर से ही इस अभिनेता को बाद में अपनी एक फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली हो।[1]

जार्ज बर्नार्ड शा ने भी गांधीजी से मिलने का सम्मान प्राप्त किया। शा ने प्रसन्न और नम्रता के साथ गांधीजी से हाथ मिलाया और अपने-आपको महात्मा माइनर (छोटा महात्मा) बतलाया। शा के विनोद में गांधीजी को खूब मजा आया।

गांधीजी लार्ड अरविन, जनरल स्मट्स, कैंटरबरी के आर्कबिशप, हैरल्ड लास्की, सी० पी० स्काट, ग्रार्थर हैंडरसन आदि सैकड़ों लोगों से मिले। चर्चिल ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।

गांधीजी मैडम मेरिया मांटेसरी के ट्रेनिंग कालेज में गये, वहां अपने भाषण में उन्होंने कहा— "मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चा जन्म से अपराधी नहीं होता। जब बच्चा बढ़ रहा हो, उस समय माता-पिता यदि अपना आचरण अच्छा रखें तो बच्चा स्वभाव से ही सत्य और प्रेम का नियम पालन करेगा। सैकड़ों— मैं कहने वाला था, हजारों—बच्चों के अपने अनुभव के आधार पर मैं जानता हूं कि मान अपमान की भावना उनमें आप-हम से अधिक होती है। ईसा मसीह ने एक बहुत ही तथ्यपूर्ण बात कही है कि ज्ञान बच्चों के मुंह से निकलता है। मैं इस बात में विश्वास करता हूं।

गांधीजी दो बार आक्सफोर्ड गये और उनकी ये यात्राएं स्मरणीय हैं। पहली बार वह बैलियोल के मास्टर, प्रोफेसर लिंडसे के यहां ठहरे। दूसरी बार वह डा० एडवर्ड टॉमसन के घर पर ठहरे। यहां उनकी बातचीत एक मंडली के साथ हुई, जिनमें प्रोफेसर लिंडसे, गिल्बर्ट मरे, प्रोफेसर एच० कूपलैंड, सर माइकेल सैडलर, पी० सी० लियोन तथा अन्य सुलझे हुए दिमागवाले व्यक्ति थे।

---

१ चार्ली चैपलिन की मशहूर फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' में मशीनों का मजाक उड़ाया गया है।

इस दिमागी भगड़े का जिक्र करते हुए टॉमसन ने लिखा है—"तीन घंटे तक उन्हें छाना गया और उनसे जिरह की गई। यह गांधी की कड़ी देनेवाली परीक्षा थी परंतु वह एक क्षण के लिए भी विचलित या निरुत्तर नहीं हुए। मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास जम गया कि परम आत्म-संयम और अनुद्विग्नता के मामले में संसार ने सुकरात के समय से आज तक दूसरी टक्कर का पैदा नहीं किया। और एक-दो बार जब मैंने अपने-आपको उन लोगों की जगह रखा जिन्हें इस अजेय स्थिरता और अविचलता का सामना करना पड़ा तो अनायास ही मैं समझ गया कि एथेंस वासियों ने उस फकीर-तार्किक को जहर क्यों पिलाया था।"

इंग्लैंड में चौरासी दिन के निवास में गांधीजी के जितने सार्वजनिक और सामाजिक सरकारी और गैर-सरकारी वक्तव्य हुए, उन सबमें उन्होंने सबसे ऊपर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि भारत की स्वाधीनता से उनका क्या तात्पर्य था।

अपनी पारदर्शी सरलता नम्रता और मिलनसारी से गांधीजी सबको मित्र बना लेते थे। उन्होंने इंग्लैंड के ईसाइयों का हृदय जीत लिया और वे उन्हें भाई और बंधु की तरह मानने लगे। बहुत से लोग उन्हें 'झक्की' समझते थे और वह निस्संदेह झक्की हो भी सकते थे। परंतु वह प्रचंड-से प्रचंड व्यक्ति की शत्रुता को भी नर्म कर देते थे। वह तो शेर की मांद में कूद गये और वह लंकाशायर में जा पहुंचे जहां विदेशी कपड़े के विरुद्ध और खादी के पक्ष में उनके आंदोलन ने बेकारी और मिलों में घाटे पैदा कर दिये थे। एक सभा में एक आदमी ने कहा—"मैं एक बेकार हूं, परंतु यदि मैं भारत में होता तो मैं भी वही कहता जो गांधी कहता है।"

गांधीजी की रक्षा के लिए सरकार ने स्काटलैंड यार्ड के दो जासूस—सार्जेंट इवान्स और सार्जेंट रोजर्स—तैनात किये। वे दोनों 'इस छोटे-से आदमी' पर फिदा हो गये। गांधीजी तो उन्हें न दूर-दूर रखते थे न उनकी उपेक्षा करते थे। वह उनसे बातें करते थे और उनके घरों पर भी गये। इंग्लैंड से रवाना होने से पहले उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इन जासूसों को उनके साथ ब्रिंडिसी (इटली) तक भेजा जाय। नौकरशाही ने उनसे इस निराली प्रार्थना का कारण पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया—"क्योंकि वे मेरे परिवार के अंग हैं।

व्याख्यानों भाषणों वाद-विवादों समाचार-पत्रों के लिए मुलाकातों यात्राओं, अनगिनती व्यक्तिगत कार्यक्रमों और ढेर-के-ढेर पत्रों के उत्तरों के बीच वह उस सरकारी काम में भी भाग लेते थे जिसके कारण वह लंदन आये थे अर्थात् गोल

मेज परिषद। सरकारी तथा गैर-सरकारी गतिविधियों में वह दिन-रात के इक्कीस घंटे व्यस्त रहते थे। सुरक्षित डायरियों से पता लगता है कि कभी-कभी वह सुबह २ बजे सोते थे १ ४५ पर प्रार्थना के लिए उठ जाते थे ५ से ६ तक फिर आराम करते थे और इसके बाद दूसरी सुबह को १ या २ बजे तक उन्हें दम लेने को फुरसत नहीं मिलती थी। इस कार्यक्रम ने उन्हें थका डाला। वह अपने शरीर को सहन शक्ति की हद से आगे हांकने में मजा लेते थे। नतीजा यह हुआ कि गोलमेज परिषद को वह बढ़िया चीज नहीं मिली जो वह दे सकते थे। फिर भी परिषद में भाग लेनेवालों ने उनके मुह से कुछ निराली और अनोखी बातें सुनी।

गोलमेज परिषद बुरी तरह असफल रही। भारत के धार्मिक भेदों को गहरा करके इसने भविष्य पर धूमिल और दुखदाई असर डाला।

परिषद ने एक अल्पसंख्यक समिति नियुक्त की जिसमें छ अंग्रेज तेरह मुसलमान दस हिंदू दो अछूत दो मजदूर प्रतिनिधि दो सिख एक पारसी दो भारतीय ईसाई, एक ऐंग्लो-इंडियन दो भारत प्रवासी अंग्रेज और चार महिलाएं रखे गये। केवल महिलाओं ने पृथक निर्वाचन की मांग नहीं की। समिति के तेरह मुसलमानों में से केवल एक राष्ट्रीय मुसलमान था जो राजनीति में भारतीय और धर्म में पैगंबर का अनुयायी था। बाकी बारह धर्म को राज्य के साथ मिलाते थे और अपने धार्मिक समुदाय के हितों को समूचे भारत के कल्याण से ऊपर रखते थे।

परिषद के मुख्य अधिवेशन में भाषण देते हुए मी फजलुलहक ने कहा था—"मैं नहीं समझता कि सर आस्टिन चेंबरलेन को कभी डा मुंजे तथा मुझ जैसे मनुष्य जाति के दो बेमेल नमूना से पाला पड़ा हो जो अलग-अलग धर्मों को मानते है और अलग-अलग ईश्वरो की पूजा करते हैं।

"एक ही ईश्वर! एक सदस्य बीच में बोल उठे।

श्रीफजलुलहक ने इस पर आपत्ति जताते हुए कहा—"नहीं एक ही ईश्वर नही हो सकता। मेरा खुदा पृथक निर्वाचन चाहता है।

मुसलमान प्रतिनिधि ईश्वर के भी टुकड़े कर रहा था। परंतु गांधीजी न तो ईश्वर के टुकड़े करना चाहते थे न भारत के। उन्होंने परिषद से कह दिया कि वह पृथक निर्वाचन के बिल्कुल विरोधी हैं। उन्होंने कहा कि स्वाधीन भारत में भारतीय सब भारतीयो को भारतीय की तरह मत देंगे। भारतीय राष्ट्रीयता का मूल और बाहरवालों के लिए उसकी प्रेरणा यह नही थे कि वह नये राष्ट्रीय अभिमान पैदा करे—यह तो पहले ही से बहुत थे—बल्कि यह कि इंग्लैंड और संसार

को साम्राज्यवाद के भयानक प्रभाव से मुक्त करे और भारत में धर्म को राजनीति से अलग कर दे। इसके विपरीत अंग्रेजों की व्यवस्था में गोलमेज परिषद में पुराने अलगावकारी प्रभावों को बढ़ाया और नये पैदा करने का प्रयत्न किया।

परम-धर्मनिष्ठ हिंदू महात्मा गांधी के लिए धर्म, वंश, जाति, वर्ग या अन्य किसी आधार पर किसीके विरुद्ध भेद भाव रखना असंभव था। अछूतों के समानाधिकार के लिए और उस नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए, जो हिंदू या मुसलमान या पारसी या ईसाई न होकर भारतीय थी, गांधीजी की देन वास्तविक महत्व रखती है।

१ दिसंबर १९३१ को गोलमेज परिषद के मुख्य अधिवेशन में उसके सभापति जेम्स रैमजे मैकडोनल्ड, इंग्लैंड के प्रधान-मंत्री, ने गांधीजी का हवाला देते हुए उन्हें हिंदू कहा।

"हिंदू नहीं!" गांधीजी ने पुकारा।

अपने भगवान के लिए गांधीजी हिंदू थे। ब्रिटिश प्रधान मंत्री के लिए तथा राजनीति में वह भारतीय थे। लेकिन गोलमेज परिषद में ऐसे भारतीय गिने-चुने थे और भारत में तो और भी कम।

१५
वापसी

गांधीजी ने संसार के लगभग सारे स्वतंत्र देशों के व्यक्तियों और समुदायों से क्षमा-याचना की। भारत में काम होने के कारण वह उनके निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकते थे। घर लौटते हुए वह एक दिन के लिए पेरिस ठहरे। एक सिनेमा भवन में मेज पर बैठकर उन्होंने एक बड़ी सभा में भाषण दिया। इसके बाद वह रेल से स्विट्जरलैंड गये जहां वह लेमान झील के पूर्वी छोर पर विलेन्यूवे में रोम्यां रोलां के साथ पांच दिन रहे।

रोम्यां रोलां जिनका 'जीन क्रिस्तोफ' बीसवीं सदी की एक महान साहित्यिक कृति है, काउंट लियो टाल्स्टाय से प्रभावित हो चुके थे। रोलां ने टाल्स्टाय और गांधी जी के बीच विवेकपूर्ण तुलना की। १९२४ में उन्होंने कहा था—"गांधीजी के लिए हर चीज प्रकृत है—शांतिमय सादा और शुद्ध—और उनके सारे संघर्ष धार्मिकतोन्मेष से पूत हैं। दूसरी ओर टाल्स्टाय के लिए हर वस्तु अभिमान के विरुद्ध अभिमान-

पूर्ण विद्रोह है, घृणा के विरुद्ध घृणा है और वासना के विरुद्ध वासना है। टाल्स्टाय में हर वस्तु हिंसात्मक है, यहां तक कि उनका अहिंसा का सिद्धांत भी।

टाल्स्टाय को तूफान ने झकझोर दिया था, गांधीजी शांत और धीर थे। गांधीजी अपनी पत्नी से या किसी भी चीज से दूर भागनेवाले नहीं थे। जिस हाट में गांधीजी बैठे हुए थे, उसमें करोड़ों मनुष्य अपने-अपने सौदों और ठेलों और चिंताओं और विचारों को लिये इधर-उधर आते-जाते थे, परंतु गांधीजी अविचल भाव से बैठे थे और उनमें तथा उनके चारों ओर निस्तब्धता थी। हाथीदांत की मीनार में या कैलास की ऊंचाई पर गांधीजी का दम घुट जाता है।

रोलां और गांधीजी १९३१ से पहले कभी नहीं मिले थे। रोलां को गांधीजी का परिचय रवींद्रनाथ और एंड्रयूज की बातों से प्राप्त हुआ था। उन्होंने गांधीजी की रचनाएं भी पढ़ी थीं। रवींद्र की भांति रोलां भी गायक थे। रामकृष्ण परमहंस पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी।

रोलां गांधीजी को संत मानते थे। सन १९२४ में उन्होंने गांधीजी के जीवन चरित में लिखा था—"गांधीजी तो बहुत ऊंचे संत हैं, बड़े ही पवित्र और उन वासनाओं से मुक्त, जो मनुष्य में सुप्त पड़ी रहती हैं।"

५ दिसंबर को गांधीजी के पहुंचने से पूर्व उनकी यात्रा के संबंध में रोलां के पास हजारों पत्र आ गये थे। एक इटली निवासी गांधीजी से यह जानना चाहता था कि अगली राष्ट्रीय लाटरी में कौनसे नंबर के टिकट पर इनाम आयगा। स्वीजरलैंड के कुछ संगीतज्ञों ने गांधीजी को खिड़की के नीचे रोज रात को संगीत सुनाने का प्रस्ताव भेजा था। लेमान के दूध विक्रेताओं के मंडल ने 'भारत के बादशाह' को दूध मक्खन आदि देने की इच्छा प्रकट की थी। पत्रकारों ने प्रश्नावलियां भेजीं और रोलां के देहाती आवास के आस-पास अड्डा जमा लिया। फोटोग्राफरों ने मकान पर घेरा डाल दिया। पुलिस ने रिपोर्ट दी कि भारतीय आगंतुक को देखने की आशा में यात्री लोग तमाम होटलों में भर गये हैं।

बासठ वर्ष के गांधीजी और पैंसठ वर्ष के रोलां पुराने मित्रों की भांति मिले और दोनों ने एक-दूसरे के साथ पारस्परिक आदर का सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया। गांधीजी मिस स्लेड, महादेव देसाई, प्यारेलाल नैयर तथा देवदास के साथ शाम को पहुंचे, जब ठंड पड़ रही थी और मेंह बरस रहा था। दूसरा दिन सोमवार गांधीजी का मौन-दिवस था और रोलां ने ११ से तबतक की यूरोप की दुखपूर्ण नैतिक

तथा सामाजिक अवस्था पर गर्न्ने मिनट तक व्याख्यान दिया। गांधीजी सुनते रहे और पेंसिल से कुछ प्रश्न लिखते रहे।

मंगलवार को गांधीजी की रोम-यात्रा के बारे में चर्चा हुई। वह मुसोलिनी तथा अन्य इटालियन नेताओं के साथ पोप से भी मिलना चाहते थे। रोलां ने उन्हें चेतावनी दी कि फ़ासिस्त शासन उनकी उपस्थिति का अपने दुष्ट अभिप्राय के लिए उपयोग करेगा। गांधीजी ने कहा कि अगर वे लोग उनके चारों ओर घेरा डालेंगे तो वह उसे तोड़कर बाहर निकल जायेंगे। रोलां ने सुझाया कि वह कुछ शर्तों के साथ वहां जायें। गांधीजी ने उत्तर दिया कि पहले ही से ऐसी व्यवस्था करना उनकी आस्था के विरुद्ध है। रोलां अपनी बात पर ज़ोर देते रहे। तब गांधीजी ने कहा—"अच्छा बतलाइये कि रोम में ठहरने की मेरी योजना पर आपकी अंतिम राय क्या है?" रोलां ने सलाह दी कि उन्हें किन्हीं स्वतंत्र व्यक्तियों के यहां ठहरना चाहिए। गांधीजी ने वादा किया और इस वादे पर अमल भी किया।

रोलां ने यूरोप के बारे में अपनी कही हुई बातों पर गांधीजी के विचार जानने चाहे। गांधीजी ने अंग्रेजी में जवाब दिया जिसका फ़्रांसीसी भाषा में रोलां की बहन ने अनुवाद किया। उन्होंने कहा—"इतिहास से मैंने बहुत कम सीखा है। मेरी पद्धति प्रयोगात्मक है। मेरे सारे परिणामों का आधार व्यक्तिगत अनुभव है।" उन्होंने स्वीकार किया कि यह ख़तरनाक और ग़लत रास्ते पर ले जानेवाला हो सकता है, परंतु मुझे खुद अपने मतों में आस्था रखना आवश्यक है। मेरा सारा भरोसा अहिंसा में है। वह यूरोप को भी बचा सकती है। इंग्लैंड में कुछ मित्रों ने उन्हें उनकी अहिंसात्मक पद्धति की कमज़ोरियां बताने की कोशिश की परंतु उन्होंने कह दिया कि "मैं तो इसीमें विश्वास करता रहूंगा जब तक सारा संसार इस पर शंका करता रहे।"

अगले दो दिन गांधीजी ने लोज़ान और जेनेवा में बिताये। दोनों जगह उन्होंने भाषण दिये और नास्तिकों ने तथा अन्य लोगों ने मौके उनसे जिरह की। गांधीजी ने पूर्ण शांति के साथ उन्हें उत्तर दिये और रोलां ने लिखा है—"उनके चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं पड़ी।"

९ दिसम्बर को रोलां की बातचीत फिर चली। रोलां ने जेनेवा में गांधीजी के कहे हुए इन शब्दों की याद दिलाई कि "सत्य ईश्वर है"। कला में सत्य की समस्या से अपने संघर्ष का ज़िक्र करते हुए रोलां ने कहा—"अगर यह सही है कि 'सत्य ईश्वर है' तो मुझे लगता है कि इसमें ईश्वर के साथ एक महत्त्वपूर्ण गुण—

आनंद—की कमी है क्योंकि मैं आनंदविहीन किसी ईश्वर को नहीं मानता।"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं कला और सत्य के बीच कोई भेद नहीं मानता। मैं इस उक्ति से सहमत नहीं हूं कि 'कला कला के लिए' है। मेरी मान्यता है कि समस्त कलाओं का आधार सत्य होना चाहिए। यदि सुंदर वस्तुएं सत्य को व्यक्त करने के बजाय असत्य को व्यक्त करें, तो मैं उन्हें त्याग दूंगा। मैं इस सूत्र को मानता हूं कि कला आनंद प्रदान करती है और श्रेष्ठ होती है' परंतु यह भी अपनी बताई हुई शर्त के साथ। कला में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए मैं बाह्य वस्तुओं का सही चित्रण आवश्यक नहीं समझता। केवल सजीव वस्तुएं आत्मा को सजीव आनंद उपलब्ध कराती हैं और आत्मा को ऊंचा उठाती हैं।

रोलां असहमत तो नहीं हुए, परंतु उन्होंने सत्य की तथा ईश्वर की खोज में प्रयत्न पर जोर दिया। उन्होंने अपनी अल्मारी से एक पुस्तक निकाली और गेटे के कुछ उद्धरण सुनाये। रोलां ने बाद में स्वीकार किया कि उनका खयाल था कि गांधीजी के ईश्वर को मनुष्य के दुख में आनंद मिलता है।

उन्होंने अगले महायुद्ध के खतरे पर भी बातें कीं। गांधीजी ने अपना मत बतलाते हुए कहा—"यदि कोई राष्ट्र हिंसा का जवाब हिंसा से दिये बिना आत्म-समर्पण की वीरता दिखाये तो वह सबसे अधिक प्रभावशाली पाठ होगा परंतु इसके लिए चरम-आस्था की आवश्यकता है।"

आखिरी दिन ११ दिसंबर को रोलां ने गांधीजी से उन सवालों को लेने की प्रार्थना की जो पेरिस की 'दि प्रोलिटेरियन रिवोल्यूशन' (सर्वहारा क्रांति) नामक पत्रिका के संपादक पीयरी मोनाटे ने भेजे थे। एक सवाल के जवाब में गांधीजी ने दृढ़ता से कहा कि यदि मजदूर-वर्ग पूरी तरह संगठित हो जाय तो वह मालिकों से अपनी बातें मनवा सकता है—"संसार में मजदूर-वर्ग ही एकमात्र शक्ति है।" परंतु रोलां ने बीच में बोलते हुए कहा कि पूंजीपति वर्ग श्रमिकों में फूट डाल सकता है, हड़ताल तोड़नेवाले मजदूर हो सकते हैं। तब मजदूर-वर्ग को जागृत अल्पसंख्यक सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य स्थापित करके मजदूर वर्ग की जनता को अपने हित में संयुक्त होने के लिए बाध्य कर देना चाहिए।

गांधीजी ने निश्चयपूर्वक जवाब दिया—"मैं इसके बिल्कुल विरुद्ध हूं।" रोलां ने इस विषय को छोड़ दिया और अन्य विषय उठाये। उन्होंने पूछा—"आप ईश्वर को क्या मानते हैं? क्या वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है अथवा संसार पर शासन करनेवाला बल?

गांधीजी ने उत्तर दिया—"ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर तो एक शाश्वत सिद्धांत है। इसलिए मैं कहता हूं कि 'सत्य ईश्वर है'। सत्य की आव-श्यकता में तो नास्तिक भी शंका नहीं करते।

इटली की सरकार चाहती थी कि गांधीजी उसके मेहमान हों और उनके लिए उसने तैयारियां भी कर ली थीं। परंतु गांधीजी ने नम्रता के साथ इन्कार कर दिया और वह रोलां के मित्र जनरल मॉरिस के यहां ठहरे। रोम पहुंचते ही गांधीजी डूचे (मुसोलिनी) से मिले। एक सरकारी विज्ञप्ति में बताया गया कि यह मुलाकात बीस मिनट तक हुई। गांधीजी के साथियों का खयाल है कि मुलाकात में दस ही मिनट लगे थे। गांधीजी मुसोलिनी के साथ कोई मानसिक संपर्क न स्थापित कर सके। बाद में गांधीजी ने कहा था—"उसकी बिल्ली जैसी आंखें हैं, जो हर दिशा में फिरती रहती थीं मानो बराबर घूमती रहती हों। उसकी आंखों के रोब के सामने आगंतुक इस प्रकार पस्त हो जाता था जैसे कि डर का मारा हुआ चूहा दौड़कर सीधा बिल्ली के मुंह में चला जाता है।

"मैं तो इस तरह हक्का-बक्का होनेवाला नहीं था" गांधीजी ने बतलाया—"लेकिन मैंने देखा कि उसने अपने आस-पास वस्तुओं को इस तरह जमा रखा था कि कोई भी आगंतुक भय से आतंकित हो जाय। उसके पास पहुंचने के लिए जिन रास्तों से गुजरना होता है, उनमें तलवारें तथा अन्य हथियार बहुतायत से सजे हुए हैं।" गांधीजी ने देखा कि मुसोलिनी के दफ्तर में भी हथियार टंगे हुए थे परंतु उन्होंने यह भी कहा कि वह अपने शरीर पर कोई हथियार धारण नहीं करता।

पोप गांधीजी से नहीं मिला। गांधीजी के दल के कुछ लोगों का खयाल था कि 'पवित्र पिता' ने शायद इस डूचे (मुसोलिनी) की इच्छाओं का पालन किया परंतु ये बातें उन्हें मालूम नहीं। कुछ लोगों का अनुमान था कि यह मुलाकात केवल मुसोलिनी और वैटिकन (पोप का राज्य) के संबंधों के ही कारण नहीं, बल्कि आंग्ल-इटालियन संबंधों के कारण भी नहीं हो पाई। आखिर गांधीजी तो एक ब्रिटिश विरोधी विद्रोही थे।

वैटिकन का पुस्तकालय गांधीजी के लिए आकर्षण की वस्तु था और सेंट पीटर के गिरजे में उन्होंने दो घंटे खुशी के साथ बिताये। सिस्टीन गिरजे में वह सूली पर चढ़े हुए ईसा के सामने खड़े होकर रो पड़े। महादेव देसाई से उन्होंने कहा—"इसे देखकर आंखों में आंसू आये बिना नहीं रहते।

रोम्यां रोलां ने कला की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था। गांधीजी ने

गर्व के साथ कहा—"मैं नहीं समझता कि यूरोपीय कला भारतीय कला से श्रेष्ठ है। एक मित्र को उन्होंने लिखा था—"इन दोनों कलाओं का विकास असमान शैलियों पर हुआ है। भारतीय कला का आधार पूर्णतया कल्पना पर है। यूरोपीय कला प्रकृति की नकल करती है। इसलिए वह आसानी से तो समझ में आ जाती है परन्तु वह हमारा ध्यान पृथ्वी की ओर फेरती है। इसके विपरीत भारतीय कला समझ में आने पर हमारे विचारों को स्वर्ग की ओर ले जाती है।"

गांधीजी के लिए कला का आध्यात्मिक होना आवश्यक था। उनका कहना था—'सच्चा सौंदर्य हृदय की शुद्धता में है।

'यंग इंडिया' में गांधीजी ने लिखा था—"मैं जानता हूं कि बहुत से लोग अपने को कलाकार कहते हैं और उन्हें कलाकार माना भी जाता है परंतु उनकी कृतियों में आत्मा की ऊर्ध्वगामी तरंग तथा तड़प का लेशमात्र भी नहीं होता। सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। सच्ची कला आत्मा को उसके अंतस्तल का अनुभव प्राप्त कराने में सहायक होनी चाहिए। अपने मामले में मैं देखता हूं कि अपने आत्मानुभव में मुझे बाह्य रूपों की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं दावा कर सकता हूं कि वस्तुतः मेरे जीवन में पर्याप्त कला है, भले ही आपको मेरे आस-पास ऐसी वस्तुएं न मिलें जिन्हें आप कला-कृतियां कहते हैं। मेरे कमरे की दीवारें चाहे नंगी हों और मैं छत को भी हटा दूं ताकि मैं सौंदर्य के असीम विस्तार में ऊपर फैले हुए तारापच्छादित आकाश को देखा करूं। क्या अच्छे नक्श-शिखवाली रमणी सुंदर ही मानी जानी चाहिए? हमने सुना है कि सुकरात अपने समय का सबसे अधिक सत्यनिष्ठ व्यक्ति था परंतु उसका चेहरा यूनान में सबसे अधिक कुरूप बतलाया जाता था। मेरे विचार में वह सुंदर था क्योंकि वह सत्य को पाने के लिए छटपटाता रहता था। प्राप्त करने के लिए सबसे पहली वस्तु सत्य है और तब सुंदरता तथा भलाई स्वयं ही आपको प्राप्त हो जायगी। सच्ची कला केवल रूप का ही विचार नहीं करती बल्कि उसके परे जो कुछ है उसका भी विचार करती है। एक कला मारनेवाली है तो एक कला जीवनदायिनी है। सच्ची कला रचयिता के आनंद संतुष्टि तथा पवित्रता का प्रमाण होनी चाहिए।"

रोम छोड़ने से पहले गांधीजी ने टाल्स्टाय की पुत्री को धन्यवाद दिया। जब वह उसके कमरे में बैठे हुए कात रहे थे तब इटली के बादशाह की पुत्री राजकुमारी मैरिया एक दासी के साथ आई और महात्माजी के लिए अंजीरों की एक टोकरी लाई। ये अंजीर इटली की महारानी ने भिजवाये थे।

गांधीजी की उपस्थिति का किसीने भी फासिस्ट-समर्थक उद्देश्य के लिए दुरुपयोग नहीं किया यद्यपि 'गियोर्नेल द इटालिया' ने एक ऐसी मुलाकात का वर्णन छापा जो न तो उन्होंने कभी दी थी और न उस मुलाकात करनेवाले संवाददाता से वह कभी मिले थे।

गांधीजी इटली में कुल मिलाकर अड़तालीस घंटे रहे। ब्रिंडिसी में उन्होंने स्काटलैंड यार्ड के अपने संरक्षकों से विदा ली परंतु प्रोफेसर एडमंड प्रिवट और उनकी पत्नी से नहीं।

प्रोफेसर और उनकी पत्नी रोम्यां रोलां के मित्र थे और विलेन्यूवे से इटली के सीमांत तक गांधीजी के साथ आये थे। जिस समय वे विदा होने लगे उन्होंने कहा कि किसी दिन वे भारत की यात्रा करना चाहते हैं। गांधीजी ने पूछा कि वे उन्हीं के साथ भारत क्यों नहीं चलते? उन्होंने उत्तर दिया कि इसके लिए उनके पास खर्च नहीं है।

गांधीजी ने कहा—"आप शायद पहले और दूसरे दर्जे की बात सोचते हैं। परंतु हम तो जहाज के डेक पर यात्रा करने के लिए केवल दस पौंड प्रति व्यक्ति देते हैं। एक बार भारत पहुंचने पर कितने ही भारतीय मित्र अपने घरों के द्वार आपके लिए खोल देंगे।

प्रिवट-दंपति ने अपनी जेब के तथा बटुए के दाम गिने और भारत चलने का निश्चय कर लिया। १४ दिसंबर को वे लोग गांधीजी के दल के साथ ब्रिंडिसी से पिल्स्ना नामक जहाज पर सवार हुए। दो सप्ताह बाद सब लोग बंबई पहुंच गये।

२८ दिसंबर की सुबह एक विशाल जनसमूह ने गांधीजी का हर्षध्वनि के साथ स्वागत किया। उन्होंने कहा—"मैं खाली हाथ लौटा हूं परंतु मैंने अपनी देश की इज्जत पर बट्टा नहीं लगने दिया। गोलमेज परिषद में भारत के साथ जो बीती थी उसका गांधीजी के शब्दों में यह सार था परंतु परिस्थिति उनके अनुमान से भी ज्यादा निराशाजनक थी।

१६
अग्नि-परीक्षा

इस तरह का शाही स्वागत जहाज के डेक पर यात्रा करनेवाले किसी मुसाफिर को आज तक नहीं मिला था। सुभाषचंद्र बोस ने ताने के साथ कहा था—

"स्वागत में जिस उत्साह, सौहार्द और स्नेह का प्रदर्शन हुआ उससे यह धारणा होती थी कि महात्माजी स्वराज्य अपनी हथेली पर लेकर आये हैं।" गांधीजी अपनी ईमानदारी को लेकर लौटे थे वह उस अर्द्ध-नग्न फकीर की भूमिका से नीचे नहीं उतरे थे जिसने बलशाली ब्रिटिश साम्राज्य के साथ बराबरी के स्तर पर मंत्रणा की थी। यह चीज आजादी से पहले एक ही बार नीचे थी क्योंकि यह भारत की भावना की मुक्ति को व्यक्त करती थी। डांडी-यात्रा के बाद से और विशेषकर गांधी-अरविन समझौते के बाद से भारत अपने को आजाद महसूस करने लगा था। गांधीजी ने इस भावना को बढ़ाया और भारतवासी उनके कृतज्ञ थे। इसके अलावा उनके महात्माजी समुद्र-पार के ठंडे संसार से सही-सलामत लौट आये थे।

गांधीजी अरविन तथा ब्रिटिश-मजदूर सरकार के प्रयत्नों से भारत को १९३०-३१ में आंशिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई थी। परंतु अरविन जा चुके थे और अक्तूबर १९३१ में रैम्जे मैकडोनल्ड की मजदूर-सरकार के स्थान पर मैकडोनल्ड के ही नेतृत्व में दूसरा मंत्रिमंडल बन गया था जिसमें अनुदार दल की प्रधानता थी। सर सैम्युअल होर जो गांधीजी के शब्दों में एक ईमानदार तथा निष्कपट अंग्रेज थे और एक ईमानदार तथा निष्कपट अनुदार-दली थे भारत के राज्य सचिव हुए।

नई ब्रिटिश सरकार ने भारत की आजादी की भावना पर आक्रमण शुरू कर दिया।

जिस समय गांधीजी ने २८ दिसंबर को बंबई बंदर पर कदम रखा उसी घड़ी उनके कानों में पूर्ण विवरण डाल दिया गया। विकट परिस्थिति की पूरी तसवीर शाम तक उनके सामने आ गई और इसे उन्होंने विशाल आजाद मैदान में एकत्र दो लाख श्रोताओं तक पहुंचा दिया।

जवाहरलाल नेहरू तथा संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष तसद्दुक शेरवानी महात्माजी से मिलने बंबई आते समय दो दिन पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। संयुक्त प्रांत में उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत में और बंगाल में व्यापक लगान-बंदी आंदोलन का मुकाबला करने के लिए संकटकालीन आर्डिनेंस जारी कर दिये गये थे। इनके अधीन सेना को मकानों पर कब्जा करने का बैंकों में जमा रुपया कुर्क करने का धन-माल जब्त करने का संदेहास्पद लोगों को बिना वारंट गिरफ्तार करने का अदालती कार्रवाई मंसूख करने का जमानत और हैबियस कार्पस

(बंदी प्रत्यक्षीकरण) से इन्कार करने का, अखबारों को डाक से भेजा जाना रोकने का, राजनैतिक संगठनों को तोड़ने का और धरना तथा बहिष्कार निषेध करने का अधिकार दे दिया गया था।

बंबई की सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा—"जहाज से उतरने पर ये सब बातें मुझे मालूम हुईं। मैं समझता हूं कि ये सब हमारे ईसाई वाइसराय की ओर से बड़े दिन के उपहार हैं।"

उसी शाम को उन्होंने मैजेस्टिक होटल में 'फेलोशिप ऑफ इंडिया लीग' की सभा में कहा—"यूरोप-इंग्लैंड के अपने तीन महीने के प्रवास में मुझे ऐसा एक भी अनुभव नहीं हुआ जिससे मुझे लगता कि आखिर पूर्व-पूर्व है और पश्चिम-पश्चिम है। इसके विपरीत मुझे पहले से भी अधिक विश्वास हो गया है कि मानव-प्रकृति चाहे वह किसी भी जलवायु में पनपती हो, बहुत करके एक-सी है और यदि आप भरोसा तथा स्नेह लेकर लोगों के पास जायें तो आपको बदले में दस गुना भरोसा और स्नेह मिलेगा।"

बंबई पहुंचने के दूसरे दिन गांधीजी ने वाइसराय को तार भेजा, जिसमें उन्होंने आर्डिनेंस पर खेद प्रकट किया और मुलाकात का प्रस्ताव रखा। वर्ष के अंतिम दिन वाइसराय के सचिव का जवाब आया कि सरकार के विरुद्ध कांग्रेस की प्रवृत्तियों के कारण आर्डिनेंस न्यायोचित है। सचिव ने लिखा—"वाइसराय आपसे मिलने को तैयार हैं और आपको यह सलाह देने को तैयार हैं कि आप अपने प्रभाव का समुचित उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं। परंतु हिज एक्सेलेंसी इस बात पर जोर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि जो कदम भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की पूरी सहमति से उठाये हैं, उनके बारे में चर्चा करने के लिए वह तैयार नहीं हैं।"

गांधीजी ने अपने प्रत्युत्तर में कांग्रेस की पैरवी की और सूचना दी कि उन्हें सविनय-अवज्ञा-आंदोलन शुरू करना पड़ सकता है। वाइसराय के सचिव ने २ जनवरी १९३२ को तत्काल उत्तर भेजा जिसमें लिखा था—"हिज एक्सेलेंसी और सरकार यह विश्वास नहीं कर सकती कि आप या कांग्रेस कार्य-समिति सोचते हों कि हिज एक्सेलेंसी किसी लाभ की आशा से आपको ऐसी मुलाकात के लिए निमंत्रित कर सकते हैं, जिसके पीछे सविनय-अवज्ञा फिर से शुरू करने की धमकी हो। और भारत सरकार आपके तार में अभिप्रेत इस स्थिति को भी स्वीकार नहीं कर सकती कि सरकार ने जो कार्रवाइयां की हैं, उनकी आवश्यकता

के बारे में उसकी नीति आपके निर्णय पर निर्भर होनी चाहिए।"

गांधीजी ने उसी दिन जवाब भेज दिया। उन्होंने कोई धमकी नहीं दी थी केवल मत प्रकट किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने दिल्ली समझौते से पहले जबकि सविनय-अवज्ञा-आंदोलन चालू था परविन से मंत्रणा की थी। उनका यह विचार कभी नहीं था कि सरकार को उनके निर्णय पर निर्भर रहना चाहिए। "परंतु" उन्होंने तार में लिखा—"मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि कोई भी लोकप्रिय और वैधानिक सरकार सार्वजनिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों के सुझावों का हमेशा स्वागत करेगी और उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।"

१ जनवरी को गांधीजी ने राष्ट्र को सूचना दी कि "सरकार ने मेरे लिए किवाड़ बंद कर दिये हैं। दूसरे दिन सरकार ने उनके सामने लोहे के किवाड़ लगा दिये। उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया। वह यरवदा जेल में फिर इंग्लैंड के बादशाह के मेहमान हो गये। कुछ ही सप्ताह पहले वह बकिंघम महल में बादशाह और महारानी के मेहमान बन चुके थे।

कांग्रेस पर सरकार का भीषण प्रहार हुआ। सारी कांग्रेसी संस्थाएं बंद कर दी गईं और लगभग सभी नेता जेल में डाल दिये गये। जनवरी में १४८ आदमी राजनैतिक कारणों से जेल गये फरवरी में १७८ । विन्स्टन चर्चिल ने घोषणा की कि दमन के उपाय १८५७ के गदर के समय से अधिक तीव्र थे।

जेल में गांधीजी का अपना विशेष स्थान था। सन १६३१ में इसी यरवदा जेल में चीफ वार्डन उनके पास आया और पूछने लगा कि हर सप्ताह आप कितने पत्र भेजेंगे और कितने बाहर से आनेवाले स्वीकार करेंगे?

"मुझे एक भी पत्र लिखने की दरकार नहीं है। गांधीजी ने जवाब दिया।

"कितने पत्र आप लिखना चाहते हैं ?" वार्डन ने पूछा।

"एक भी नहीं।" गांधीजी ने कहा।

उन्हें पत्र लिखने और पत्र-व्यवहार करने की पूरी छूट दी गई।

जेल के सुपरिटेंडेंट मेजर मार्टिन उनके लिए फर्नीचर, चीनी के बरतन तथा अन्य सामान लेकर आये। गांधीजी ने विरोध-सूचक स्वर में कहा—"यह सब आप किसके लिए लाये हैं ? कृपया इन्हें वापस ले जाइये।

मेजर मार्टिन ने कहा कि केंद्रीय अधिकारियों ने उन्हें अनुमति दी है कि ऐसे सम्माननीय मेहमान पर कम-से-कम तीन सौ रुपया मासिक खर्च करें।

"यह तो सब बहुत ठीक है, गांधीजी ने प्रकट किया—"परंतु यह रुपया

भारत के खजाने से आता है और मैं अपने देश का बोझ नहीं बढ़ाना चाहता। मैं समझता हूं कि मेरा खाने का खर्च पैंतीस रुपये महीने से अधिक नहीं होगा।" इस पर विशेष सामान हटा लिया गया।

यरवदा में सिराज नाम के एक अफसर ने गांधीजी से गुजराती पढ़ने को कहा और रोज पढ़ने आने लगा। एक दिन सवेरे जब सिराज नहीं आया तो गांधीजी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि वह अफसर जेल में फांसी लगाने में व्यस्त था। गांधीजी ने कहा—"मुझे ऐसा लगता है कि मैं बीमार पड़नेवाला हूं।"

वल्लभभाई पटेल भी गिरफ्तार करके यरवदा पहुंचा दिये गये। मार्च में महादेव देसाई को भी दूसरी जेल से बदलकर यरवदा भेज दिया गया, क्योंकि गांधीजी उन्हें साथ रखना चाहते थे।

गांधीजी ध्यान से अखबार पढ़ते थे, अपने कपड़े खुद धोते थे, कातते थे, रात को तारों का अध्ययन करते थे और खूब किताबें पढ़ते थे। उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तक को भी अंतिम रूप दिया, जिसका अधिकांश उन्होंने १९३० में यरवदा से साबरमती-आश्रम को पत्रों के रूप में लिखा था। इसका नाम उन्होंने 'यरवदा मंदिर से' रखा।[1]

जिन दिनों गांधीजी अपने 'जेल-मंदिर' में ईश्वर तथा सदाचार पर अपने इन सरल पत्रों का संपादन कर रहे थे, उसी समय भारत अपने आधुनिक इतिहास के सबसे अधिक तनावपूर्ण पखवाड़े की ओर अग्रसर हो रहा था।

यह गांधीजी का जीवन बचाने के प्रश्न पर केंद्रित था।

राजगोपालाचारी ने लिखा था—"सितंबर १९३२ की वेदना का समरूप तलाश करने के लिए हमको तेईस शताब्दियां पीछे एथेंस जाना होगा, जब सुकरात के मित्र कारागार में उसे घेरे बैठे थे और मृत्यु से बचने के लिए उसपर जोर डाल रहे थे। अफलातून ने इन प्रश्नोत्तरों को लिखित रूप दिया है। सुकरात इस सुझाव पर मुस्कराया और उसने आत्मा की अमरता पर प्रवचन दिया।"

'सितंबर १९३२ की वेदना' गांधीजी के लिए इस वर्ष के शुरू में ही आरंभ हो गई थी। समाचारपत्रों से उन्हें पता लगा था कि भारत के लिए प्रस्तावित नये ब्रिटिश संविधान में न केवल पहले की भांति हिंदुओं तथा मुसलमानों को पृथक

---

१ यह पुस्तक 'मंगल प्रभात' के नाम से 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इसमें सत्य, अहिंसा आदि एकादश व्रतों पर गांधीजी के लेख हैं।

निर्वाचन का अधिकार दिया जायगा बल्कि अछूतों अथवा दलित जातियों को भी। अतएव उन्होंने भारत-सचिव सर सैम्युअल होर को ११ मार्च १९३२ के एक पत्र में लिखा—"दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन उनके लिए तथा हिंदू जाति के लिए हानिकारक है। जहां तक हिंदू-जाति का संबंध है पृथक निर्वाचन उसका अंगोच्छेद और विच्छेद ही करेगा। नैतिक तथा धार्मिक मुद्दे की तुलना में राजनैतिक पहलू महत्वपूर्ण होते हुए भी नगण्य बनकर रह जाता है। इसलिए यदि सरकार अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन का जन्म देने का निश्चय करती है तो मुझे आमरण उपवास करना पड़ेगा।" गांधीजी जानते थे कि इससे सरकार जिसके वह कैदी थे असमंजस में पड़ जायगी। "परंतु जो कदम उठाने का मैं विचार कर रहा हूं वह मेरे लिए एक उपाय नहीं है वह तो मेरे अस्तित्व का अंग है।"

भारत-सचिव ने १३ अप्रैल को उत्तर दिया कि अभी तक कोई निर्णय नहीं किया गया और निर्णय से पूर्व उनके विचार पर गौर किया जायगा।

१७ अगस्त १९३२ तक कोई नई घटना नहीं हुई। परंतु इस तारीख को प्रधान-मंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड ने पृथक निर्वाचन के पक्ष में ब्रिटेन के निर्णय की घोषणा कर दी।

दूसरे दिन गांधीजी ने रैम्जे मैकडॉनल्ड को लिखा—"आपके निर्णय का मुझे अपने प्राणों की बाजी लगाकर विरोध करना पड़ेगा। इसका एकमात्र तरीका यही है कि मैं सोडा और नमक के साथ या खाली पानी के सिवा किसी भी प्रकार का भोजन न लेकर आमरण अनशन की घोषणा कर दूं। यह अनशन २० सितंबर की दोपहर को प्रारंभ होगा।

सितंबर १९३२ की ८ तारीख को भेजे गये लंबे पत्र के उत्तर में प्रधान मंत्री मैकडॉनल्ड ने गांधीजी के पत्र पर बहुत आश्चर्य और अत्यंत हार्दिक खेद प्रकट किया। उन्होंने सरकार के निर्णय के पक्ष में दलीलें दीं और दलितों के लिए पृथक निर्वाचन-पद्धति की व्याख्या की। सुरक्षित स्थानों के वैकल्पिक तरीके को अस्वीकार करते हुए उन्होंने बतलाया कि इस तरीके से दलितों के प्रतिनिधि सवर्णों के बहुमत से चुने जायगे। अतः वे सवर्ण हिंदुओं के इशारा पर नाचनेवाले होंगे। इसलिए उनकी राय में गांधीजी का उपवास करने का इरादा भ्रमपूर्ण था और सरकार का निर्णय अपरिवर्तनशील।

इस पत्र का गांधीजी ने ६ सितंबर को जो उत्तर दिया वह उनकी विशिष्टता लिये हुए था।

"बहस में न पड़ते हुए मैं नम्रतापूर्वक कह देना चाहता हूं कि मेरे लिए यह मामला शुद्ध धार्मिक है। आप कितने ही सहानुभूतिपूर्ण क्यों न हों परंतु संबंधित दलों के लिए मानिक और धार्मिक महत्त्व रखनेवाले मामले में आप सही निर्णय पर नहीं पहुंच सकते। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निर्णय कायम रहे और संविधान अमल में आ जाय तो आप उन हिंदू सुधारकों के कार्य के अद्भुत विकास को कुंठित कर देंगे जिन्होंने जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों के लिए उत्सर्ग किया है?

इसके बाद लंदन के साथ पत्र-व्यवहार समाप्त हो गया।

इस तरह परेशान होनेवालों में मैक्डोनल्ड अकेले ही नहीं थे। अनेक भारतवासी और कुछ हिंदू भी हैरान हो गये। गांधीजी के उपवास का समाचार जवाहरलाल नेहरू ने जेल में सुना। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है—"मुझे गुस्सा आया उन पर, एक राजनैतिक मुद्दे के बारे में उनकी धार्मिक और भावनामय पकड़ पर और इसके संबंध में बार-बार ईश्वर का नाम लेने पर। दो दिन तक मैं अंधेरे में भटकता रहा। परंतु फिर मुझे एक अजीब अनुभव हुआ। मैं एक भावुकता के आवेग में से गुजरा और इसके बाद मैंने कुछ शांति महसूस की और भविष्य मुझे उतना अंधकारमय नहीं लगा। उपयुक्त मौके पर सही बात करने का बापू का निराला ढंग है। हो सकता है कि उनका यह कार्य जो मेरी दृष्टि में असंभव है महान परिणामों की ओर ले जाय। इसके बाद देश भर में जबरदस्त हलचल की खबरें मिलीं। सोचा कि यरवदा जेल में बैठा हुआ यह नन्हा-सा आदमी कितना बड़ा जादूगर है और लोगों के दिलों को प्रभावित करनेवाली डोरियां खींचना यह कितनी अच्छी तरह जानता है।

गांधीजी ने कहा कि उनका उपवास दलित जातियों के लिए किसी भी रूप में पृथक निर्वाचन के विरुद्ध है। यह खतरा दूर होते ही उपवास समाप्त हो जायगा। वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उपवास नहीं कर रहे थे क्योंकि उसने कह दिया था कि यदि हिंदू तथा हरिजन किसी अन्य और पारस्परिक संतोषजनक मतदान व्यवस्था पर राजी हो जायं तो उसे स्वीकार कर लिया जायगा। गांधीजी ने बतला दिया था कि उनके उपवास का उद्देश्य सही धार्मिक कृत्य के लिए हिंदुओं की अंतरात्मा को प्रेरित करना है।

१३ सितंबर को गांधीजी ने घोषित किया कि उनका आमरण उपवास २० सितंबर को प्रारंभ होगा। अब भारत के सामने एक ऐसी चीज आई, जो संसार ने आजतक नहीं देखी थी।

१३ तारीख को राजनैतिक तथा धार्मिक नेताओं में हलचल पैदा हो गई। विधान-सभा में अछूतों के एक प्रवक्ता श्री एम० सी० राजा ने गांधीजी की स्थिति का पूरी तरह समर्थन किया। सर तेजबहादुर सप्रू ने सरकार से गांधीजी को रिहा कर देने की प्रार्थना की। मद्रास के मुस्लिम नेता मामून हुसन ने हरिजनों से अनुरोध किया कि वे पृथक निर्वाचन अस्वीकार कर दें। राजेंद्रप्रसाद ने सुझाव दिया कि हिंदू लोग हरिजनों के लिए अपने मंदिर, कुएं, पाठशालाएं तथा सार्वजनिक सड़कें खोलकर गांधीजी के जीवन की रक्षा करें। पंडित मालवीय ने १६ तारीख को नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। राजगोपालाचारी ने कहा कि २० तारीख को सारा देश प्रार्थना करे तथा उपवास रखे।

कई शिष्टमंडलों ने जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति मांगी। सरकार ने जेल के दरवाजे खोल दिये और गांधीजी से परामर्श करने की खुली इजाजत दे दी। परामर्शकारों तथा गांधीजी के बीच मध्यस्थ का काम करने के लिए देवदास गांधी आ पहुंचे। पत्रकारों को भी गांधीजी तक पहुंचने में कोई रुकावट नहीं थी।

इस अर्से में गांधीजी ने भारत तथा विदेशों में अनेक मित्रों को लंबे-लंबे पत्र लिखे। मीराबहन को भेजे गये पत्र में उन्होंने लिखा—"इससे बचने का कोई रास्ता नहीं था। मेरे लिए यह एक विशिष्ट लाभ तथा कर्तव्य दोनों है। ऐसा अवसर किसीको एक पीढ़ी में या अनेक पीढ़ियों में कदाचित ही प्राप्त होता है।

२० तारीख को गांधीजी सुबह २-३० बजे उठ गये और उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर को पत्र लिखा, क्योंकि वह ठाकुर की स्वीकृति के लिए अत्यंत उत्सुक थे। महात्माजी ने लिखा—"अभी मंगलवार की सुबह के ३ बजे हैं। दोपहर को मैं अग्निमय द्वार में प्रवेश करूंगा। मैं चाहूंगा कि आप इस प्रयत्न को आशीर्वाद दे सकें। आप सच्चे मित्र हैं, क्योंकि आप स्पष्टवादी मित्र हैं और अपने विचारों को अक्सर मुख से प्रकट कर देते हैं। यदि आपका हृदय मेरे कार्य की निंदा करे, तो भी मैं आपकी आलोचना को बहुमूल्य समझूंगा, यद्यपि अब यह मेरे उपवास के दौरान में ही संभव है। यदि मुझे लगे कि मैं गलती पर हूं, तो मैं इतना अभिमानी नहीं हूं कि अपनी भूल को खुले आम स्वीकार न करूं, चाहे इस आत्म-स्वीकृति की कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। यदि आपका हृदय मेरे कार्य को पसंद

करें तो मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। इससे मुझे सहारा मिलेगा।"

गांधीजी ने यह पत्र डाक में डलवाया ही था कि उन्हें ठाकुर का तार मिला—"भारत की एकता तथा सामाजिक अविच्छिन्नता की खातिर बहुमूल्य जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है। मैं हृदय से आशा करता हूं कि हम लोग इस राष्ट्रीय कष्ट-काल को चरम-सीमा तक पहुंचने देने की निर्ममता नहीं दिखायेंगे। हमारे व्यथित हृदय आपकी लोकोत्तर तपस्या को श्रद्धा तथा प्रेम के साथ निहारते रहेंगे।

गांधीजी ने इस प्रेमपूर्ण तथा भव्य तार के लिए ठाकुर को धन्यवाद दिया और लिखा—"जिस तूफान के बीच में प्रवेश कर रहा हूं, उसमें यह मुझे सहारा देगा।

उसी दिन ११-३० बजे गांधीजी ने आखिरी बार भोजन किया। इसमें नींबू का रस शहद और गर्म पानी था। करोड़ों भारतवासियों ने २४ घंटे का उपवास किया। देश भर में प्रार्थनाएं की गईं।

उस दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शांतिनिकेतन के विद्यार्थियों को भाषण देते हुए कहा—"आज भारत के ऊपर ऐसी छाया अंधकार डाल रही है जैसी राहु-ग्रसित सूर्य डालता है। सारे देश की जनता चिन्ता की तीव्र वेदना से संतप्त है जिसकी विश्व-व्यापकता में सांत्वना का महान गौरव है। महात्माजी जिन्होंने अपने त्यागमय जीवन से भारत को वास्तव में अपना बना लिया है, अपने चरम बलिदान का व्रत प्रारंभ कर रहे हैं।

महात्माजी के उपवास की व्याख्या करते हुए ठाकुर ने कहा—"प्रत्येक देश का अपना आंतरिक भूगोल होता है, जहां उसकी आत्मा निवास करती है और जहां भौतिक बल एक इंच भी भूमि नहीं जीत सकता। महात्माजी ने जो प्रायश्चित अपने सिर पर लिया है, वह धर्मकांड नहीं है, बल्कि सारे भारत को तथा सारे संसार के लिए एक संदेश है। हमने देखा है कि महात्माजी जो कदम उठाने पर मजबूर हुए हैं, उससे अंग्रेज लोग चकरा गये हैं। वे स्वीकार करते हैं कि इसे वे समझ नहीं पा रहे। मैं समझता हूं कि उनके न समझने का मुख्य कारण यह है कि महात्माजी की भाषा उनकी भाषा से मूलतः भिन्न है। भारतीय समाज को अंग-विच्छेद रोकने के लिए गांधीजी एक व्यक्ति की स्वयं अपनी बलि दे रहे हैं। यह अहिंसा की भाषा है। क्या इसीलिए पश्चिम इसका अर्थ नहीं लगा सकता?

ठाकुर को इस उपवास में गांधीजी की जान जाने की संभावना नजर आ रही थी। केवल इसी विचार से राष्ट्र की रीढ़ में सनसनी दौड़ गई थी। यदि महात्माजी

को बचाने के लिए कुछ नहीं किया गया तो प्रत्येक हिंदू महात्माजी का हत्यारा होगा।

जेल के सात अहाते में गांधीजी आम के पेड़ की छाया में लोहे की सफेद चारपाई पर लेटे हुए थे। पटेल और महादेव देसाई उनके पास बैठे थे। गांधीजी की सुश्रूषा करने के लिए तथा उन्हें अतिशय शरीर-श्रम से बचाने के लिए श्रीमती नायडू को यरवडा जेल के जनाने वार्ड से बदलकर भेज दिया गया था। एक स्टूल पर कुछ पुस्तकें लिखने के कागज पानी नमक तथा सोडा की बोतलें रखी हुई थीं।

बाहर परामर्शकार लोग मृत्यु के साथ दौड़ लगा रहे थे। २ सितंबर को हिंदू नेतागण बंबई के बिड़ला भवन में एकत्र हुए। इनमें सप्रू सर चुन्नीलाल मेहता राजगोपालाचारी घनश्यामदास बिड़ला राजेंद्रप्रसाद जयकर, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास आदि थे। अछूतों के प्रतिनिधि डा सोलंकी तथा डा अंबेडकर थे।

गांधीजी सदा से हिंदुओं तथा हरिजनों के लिए संयुक्त निर्वाचन चाहते आते थे। वह हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों के भी विरोधी थे क्योंकि इससे दोनों जातियों के बीच की दरार और भी चौड़ी हो जायगी। परंतु १९ तारीख को गांधीजी ने एक शिष्टमंडल को बतलाया कि सुरक्षित स्थानों का बात से वह सहमत हो गये हैं।

परंतु अंबेडकर ने आनाकानी की— विधान-सभाओं में सुरक्षित स्थानों पर बैठनेवाले हरिजन-सदस्य हिंदुओं तथा हरिजनों द्वारा संयुक्त रूप से चुने जायगे अतः हिंदुओं के विरुद्ध हरिजनों की शिकायतें प्रकट करने में उन्हें बहुत हिचकिचाहट होगी। यदि कोई हरिजन हिंदुओं पर अत्यधिक दोषारोपण करने लगे, तो संभव था कि अगले चुनावों में हिंदू लोग उसे हरा दें और किसी अधिक नमनशील हरिजन को चुन दें।

इस न्यायोचित आपत्ति का निपटारा करने के लिए सप्रू ने एक चतुरतापूर्ण योजना निकाली जिसे उन्होंने २ सितंबर को सम्मेलन में पेश किया।

इस योजना पर अंबेडकर के विचारों की हिंदू लोग चिंता के साथ प्रतीक्षा करने लगे। अंबेडकर ने इसकी बारीकी से परीक्षा की और मित्रों से सलाह ली। घंटे बीतते जा रहे थे। अंत में उन्होंने योजना स्वीकार कर ली परंतु साथ ही कहा कि सप्रू-योजना सहित अपने विचारों को संनिहित करने के लिए वह अपना अलग सूत्र तैयार करेंगे।

इससे उत्साहित होकर, परंतु फिर भी अंबेडकर की ओर से शंकाशील रह-कर, हिंदू नेता अब गांधीजी के बारे में सोचने लगे क्या वह सप्रू की नई बात स्वीकार करेंगे ? सप्रू, जयकर, राजगोपालाचारी देवदास, बिड़ला और राजेंद्र प्रसाद रात की गाड़ी से रवाना हुए और सुबह पूना पहुंच गये। सुबह ७ बजे वह जेल के दफ्तर में गये। गांधीजी जो चौबीस से कुछ कम घंटों तक निराहार रहने के कारण कमजोर हो गये थे हंसते हुए दफ्तर में आये और मेज के बीच में स्थान ग्रहण करते हुए प्रसन्न-मुद्रा से बोले—"मैं सभापति हूं।

सप्रू ने अपनी योजना बतलाई। दूसरों ने उसकी व्याख्या की। गांधीजी ने कुछ सवाल पूछे। उन्होंने निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया। आधा घंटा बीत गया। अंत में गांधीजी ने कहा—"मैं आपकी योजना पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने को तैयार हूं, परंतु मैं चाहता हूं कि सारी तसवीर लिखित रूप में मेरे सामने आ जाय। साथ ही उन्होंने अंबेडकर और राजा से मिलने की इच्छा प्रकट की।

अंबेडकर और राजा को अत्यावश्यक निमंत्रण भेजे गये। २२ तारीख की सुबह गांधीजी ने योजना के प्रति नाराजगी जाहिर की। वह हरिजनों के बीच कोई भेदभाव नहीं चाहते थे। न वह यह चाहते थे कि विधान-सभाओं के हरिजन सदस्य हिंदुओं के किसी राजनैतिक एहसान से दबें।

परामर्शकार लोग अत्यंत हर्षित हुए। गांधीजी अंबेडकर को उससे भी ज्यादा दे रहे थे जो अंबेडकर ने मांग लिया था।

उस दिन तीसरे पहर के बाद अंबेडकर गांधीजी के सिरहाने पहुंचे। अधिक-तर बातें उन्होंने ही कीं। वह महात्माजी का जीवन बचाने में सहायता देने को तैयार थे परंतु कहते गये—"मैं अपना मुआवजा चाहता हूं।

जब अंबेडकर ने ये शब्द कहे, तो गांधीजी कष्ट से सहारा लगाकर बैठ गये और कई मिनट तक बोलते रहे। उन्होंने सप्रू-योजना की एक-एक बात पर चर्चा की। इस प्रकार से थककर गांधीजी तकिये के सहारे लेट गये।

अंबेडकर ने सोचा था कि मरणोन्मुख महात्माजी के सामने अपनी स्थिति से पीछे हटने के लिए उनपर दबाव डाला जायगा। परंतु अब गांधीजी ने हरिजन हितैषिता में तो हरिजन-अंबेडकर को भी मात दे दी।

अंबेडकर ने गांधीजी के दृष्टिकोण का स्वागत किया।

उसी दिन श्रीमती गांधी आ गईं, उन्हें साबरमती जेल से बदलकर यरवडा भेजा गया था। ज्योंही वह धीरे-धीरे गांधीजी की ओर बढ़ीं उन्होंने भर्त्सनात्म-

चूसकर गरदन हिलाई और कहा—"फिर वही किस्सा!" गांधीजी मुस्कराये। बा की उपस्थिति से उनका हृदय प्रसन्न हो गया।

उपवास के चौथे दिन बुधवार २१ सितंबर को गांधीजी के हृदय-विशेषज्ञ डा॰ गिल्डर तथा डा॰ पटेल बंबई से आये। जेल के डाक्टरों से सलाह करके उन्होंने निदान किया कि गांधीजी की हालत खतरनाक है। रक्तचाप भयंकर रूप से बढ़ गया था। किसी भी समय मृत्यु हो सकती थी।

उसी दिन अंबेडकर ने हिंदू नेताओं से लंबी बातचीत की और मुआवजे की अपनी नई मांगें पेश कीं। मैक्डोनल्ड के फैसले में प्रांतीय विधान-सभाओं में दलित वर्ग को ७१ स्थान दिये गये थे। अंबेडकर ने १९७ मांगे। इसके अलावा यह सवाल भी था कि सुरक्षित स्थानों को रद्द करने का निश्चय करने के लिए हरिजन-मतदाताओं का जनमत कब लिया जाय। गांधीजी चाहते थे कि हरिजन स्थानों के लिए प्रारंभिक चुनाव पांच वर्ष में समाप्त कर दिये जायं। अंबेडकर पंद्रह वर्ष पर अड़े हुए थे। उनका विश्वास नहीं था कि पांच वर्ष में अस्पृश्यता का लोप हो जायगा।

पांचवें दिन शनिवार, २४ सितंबर को अंबेडकर ने हिंदू नेताओं से फिर बातचीत शुरू की। सुबह विचार-विमर्श के पश्चात वह दोपहर को गांधीजी से मिलने गये। अंबेडकर तथा हिंदू नेताओं के बीच यह तय हुआ कि दलित जातियों के लिए १४७ सुरक्षित स्थान रखे जायं। इस समझौते को गांधीजी ने स्वीकार कर लिया। अब अंबेडकर प्रारंभिक चुनाव दस वर्ष बाद हटाने के लिए तैयार हो गये। गांधीजी ने पांच का आग्रह किया। उन्होंने कहा—"या तो पांच साल रहेंगे या मेरी जिंदगी नहीं रहेगी।" अंबेडकर ने इन्कार कर दिया।

अंबेडकर अपने हरिजन साथियों के पास लौट गये। बाद में उन्होंने हिंदू नेताओं को सूचना दी कि वह पांच वर्ष में प्रारंभिक चुनावों का मत स्वीकार नहीं करेंगे। यह समय दस वर्ष से कम नहीं हो सकता।

तब राजगोपालाचारी ने वह काम किया कि जिससे शायद गांधीजी का जीवन बचा लिया। गांधीजी से पूछे बिना ही उन्होंने अंबेडकर को इस बात पर राजी कर लिया कि प्रारंभिक चुनावों को हटाने का प्रश्न आगे चर्चा के बाद तय किया जाय। इससे शायद जनमत लेना आवश्यक न रहे।

राजगोपालाचारी जेल दौड़े गये और गांधीजी को उन्होंने यह नई व्यवस्था बतलाई।

"इसे दुबारा कहो। गांधीजी ने कहा।

राजगोपालाचारी ने अपनी बात दोहराई।

"बहुत बढ़िया। गांधीजी धीरे से बोले। शायद वह राजगोपालाचारी की बात को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये उन्हें मूर्च्छा-सी आ रही थी परंतु वह राजी हो गये।

उस शनिवार को भारतीय-इतिहास के यरवडा-समझौते का मसविदा तैयार किया गया और गांधीजी के सिवा सब हिंदू तथा हरिजन परामर्शकारों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

रविवार को बंबई में परामर्शकारों के पूरे सम्मेलन ने उस पर छाप लगा दी।

परंतु यह समझौता वास्तविक समझौता नहीं था और गांधीजी तब तक अपना उपवास तोड़ने के लिए तैयार नहीं थे जब तक कि ब्रिटिश सरकार इसे मैक-डोनल्ड के फैसले के स्थान पर स्वीकार करने को राजी न हो। इसका पूरा सार तार द्वारा लंदन भेज दिया गया था जहां चार्ल्स एंड्रूज व पोलक तथा गांधीजी के अन्य मित्र सरकार से जल्दी कार्रवाई कराने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। उस दिन इतवार था मंत्रीगण नगर से बाहर चले गये थे और मैकडोनल्ड ससेक्स में एक मृतक-संस्कार में शामिल होने गये थे।

पूना-समझौते का समाचार सुनकर मैकडोनल्ड वापस दौड़े आये। सर सैम्युअल होर तथा लार्ड लोथियन भी आ गये। रविवार को आधी रात तक वे लोग समझौते के पाठ पर गौर करते रहे।

गांधीजी की जीवन-शक्ति बहुत तेजी के साथ क्षीण होती जा रही थी। उन्होंने कस्तूरबा को बताया कि उनकी चारपाई के आस-पास पड़ी हुई गिनी वस्तुएं किन किन को दी जाय। सोमवार की सुबह ठाकुर कलकत्ता से आये और उन्होंने अपने कुछ चुने हुए गीत महात्माजी को गाकर सुनाये। इससे महात्माजी को कुछ शांति मिली। पूना के कुछ मित्र भी वाद्य-संगीत तथा भजन सुनाने के लिए बुलाये गये। गांधीजी ने सिर हिलाकर तथा धीरे-से मुस्करा कर उन्हें धन्यवाद दिया। वह बोल नहीं सकते थे।

कुछ घंटे बाद ब्रिटिश सरकार ने लंदन तथा नई दिल्ली में एक साथ घोषणा की कि उसने यरवडा-समझौता मान लिया है। अब गांधीजी अपना उपवास तोड़ सकते थे।

सोमवार की शाम को ५.१५ पर ठाकुर, पटेल, महादेव देसाई, श्रीमती नायडू

तथा परामर्शकारों और पत्रकारों की उपस्थिति में गांधीजी ने कस्तूरबा के हाथ से नारंगी के रस का गिलास लिया और उपवास तोड़ दिया। ठाकुर ने अपना भजन गाये। बहुतों की आंखों में आंसू आ गये।

रविवार, २५ सितंबर को बंबई-सम्मेलन में जिसने यरवदा-समझौते या पूना-समझौते पर स्वीकृति की छाप लगाई डा० अंबेडकर ने एक दिलचस्प भाषण दिया। गांधीजी के सद्भावनापूर्ण रुख की सराहना करते हुए अंबेडकर ने कहा— "मैं स्वीकार करता हूं कि जब मैं उनसे मिला तो मुझे आश्चर्य हुआ और महान आश्चर्य हुआ कि उनके और मेरे बीच परस्पर मेल खानेवाली कितनी अधिक बातें थीं। वास्तव में जब भी कोई विवाद उनके सामने गया तो मैं यह देखकर हैरान रह गया कि जो व्यक्ति गोलमेज परिषद में मेरे विचारों से इतना अधिक मतभेद रखता था वह तुरंत मेरी हिमायत करने लगा दूसरे पक्ष की नहीं। मैं महात्माजी का बड़ा कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे ऐसी स्थिति से बचा लिया जो बहुत कठिन हो सकती थी।"

सितंबर-दिसंबर १९३१ की गोलमेज परिषद में गांधीजी ने हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थानों का विरोध किया था क्योंकि इससे हिंदू जाति के टुकड़े हो जाते परंतु ११ सितंबर १९३२ को गांधीजी ने सुरक्षित स्थानों का प्रस्ताव एक अनिवार्य तथा अल्पकालिक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया।

गांधीजी ने हरिजनों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की बात इसलिए मान ली कि वह इसे उस पृथक्करण से हजारों गुना बेहतर समझते थे जो मैकडॉनल्ड के इच्छित पृथक निर्वाचन से उत्पन्न होता। परंतु यही बात गांधीजी गोलमेज परिषद में या उपवास से कुछ महीने पूर्व मान लेते तो वह शायद कट्टर हिंदुओं को अपने साथ नहीं ले जा सकते थे।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिये कि हिंदू नेता उपवास से पूर्व हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान स्वीकार कर लेते। तब क्या उपवास प्रसंग क्षीण होता ? क्या महात्माजी की यंत्रणा अनावश्यक थी ?

भारत के इतिहास में गांधीजी की देन को समझने के लिए इस प्रश्न का उत्तर निर्णायक हैसियत रखता है। ठंडे तर्क और शुष्क विधिवादिता की कसौटी के अनुसार तो गांधीजी को अंबेडकर से समझौता करने के लिए उपवास करने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु भारतीय जनता के साथ गांधीजी का संबंध तर्क और विधिवादिता के आधार पर नहीं था। यह संबंध उच्च मनोभावनापूर्ण था। हिंदुओं

के लिए गांधीजी महात्मा थे। क्या वह उनकी हत्या कर सकता था? उपवास प्रारंभ होते ही मसजिदें, अभियान, फैसले, चुनाव आदि सबका महत्व जाता रहा। गांधीजी के प्राण बचाना जरूरी था।

गांधीजी ने प्रत्येक हिंदू पर अपने जीवन की जिम्मेदारी डाल दी थी। १५ सितंबर को एक वक्तव्य में जिसका व्यापक रूप से प्रचार किया गया गांधीजी ने कहा था—"सवर्ण हिंदुओं तथा प्रतिपक्षी दलितवर्गीय नेताओं के बीच किसी तरह का लेपा-पोतीवाला समझौता उद्देश्य सिद्ध नहीं करेगा। समझौता पुष्ट तभी होगा जब वह वास्तविक होगा। यदि हिंदू जनता का मानस अभी तक अस्पृश्यता को जड़-मूल से नष्ट करने के लिए तैयार नहीं है, तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मेरा बलिदान कर देना चाहिए।

इसलिए जिस समय परामर्शकार गोप मंत्रणाएं कर रहे थे हिंदू समुदाय एक धार्मिक भावनामय उथल-पुथल अनुभव कर रहा था। उपवास-सप्ताह के प्रारंभ में ही हिंदू कट्टरता के गढ़—कलकत्ता का कालीघाट मंदिर तथा काशी का राम-मंदिर—हरिजनों के लिए खोल दिये गये। दिल्ली में सवर्ण हिंदुओं तथा हरिजनों ने बाजारों तथा मंदिरों में आपसी भाई-चारे का प्रदर्शन किया। बंबई में महिलाओं की एक राष्ट्रीय संस्था ने सात बड़े मंदिरों के सामने मतदान की व्यवस्था की। स्वयंसेवकों की निगरानी में मंदिरों के बाहर मतदान पेटियां रखी गईं और उपासकों से कहा गया कि वे अछूतों के मंदिर-प्रवेश पर मत डालें। मतगणना २४७९७ पक्ष में और ४४५ विपक्ष में हुई। परिणामस्वरूप ऐसे मंदिर, जिनमें किसी हरिजन ने कभी पांव नहीं रखा था उनके लिए खोल दिये गये।

उपवास प्रारंभ होने के एक दिन पूर्व इलाहाबाद के बारह मंदिर पहली बार हरिजनों के लिए खोल दिये गये। उपवास के पहले दिन देश के कुछ सबसे पवित्र मंदिरों ने अपने द्वार अछूतों के लिए खोल दिये। २६ सितंबर तक हर रोज और २७ सितंबर से गांधीजी के जन्म दिन २ अक्तूबर तक प्रतिदिन बीसियों धार्मिक स्थानों ने हरिजन-प्रवेश पर प्रतिबंध हटा दिये। बड़ौदा, काश्मीर और कोल्हापुर की रियासतों के सब मंदिरों ने भेद-भाव मिटा दिया। समाचारपत्रों ने सैकड़ों मंदिरों के नाम प्रकाशित किये जिन्होंने गांधीजी के उपवास के मौके से प्रतिबंध हटा लिया था।

जवाहरलाल की कट्टरपंथी माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने कहा कि लोगों को बता दिया जाय कि उन्होंने एक अछूत के हाथ से खाना खाया है। हजारों हिंदू

स्त्रियों ने इसका अनुकरण किया। काशी के हिंदू विश्वविद्यालय में मुख्याचार्य ध्रुव ने अनेक ब्राह्मणों-सहित सार्वजनिक रूप में चमारों और भंगियों के साथ बैठकर भोजन किया।

गांवों तथा छोटे-छोटे नगरों में अछूतों को कुओं से पानी भरने की छूट दे दी गई।

देश भर में सुधार, प्रायश्चित्त तथा आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ गई। उपवास के छः दिनों में बहुत से हिंदू लोग सिनेमा थियेटर, रेस्त्रां आदि में नहीं गये। विवाह तक स्थगित कर दिये गये।

उपवास के बिना गांधीजी तथा अंबेडकर के बीच पूना समझौते से राष्ट्र पर यह प्रभाव नहीं पड़ता। इससे हरिजनों की एक वैधानिक शिकायत भले ही दूर हो जाती परंतु जहां तक हरिजनों के साथ हिंदुओं के व्यक्तिगत व्यवहार का सवाल था यह समझौता एक बेकार की चीज बना रहता। बहुत से हिंदुओं को तो इसका पता भी नहीं लगता। गांधीजी ने देश के मनोभावों का जो मथन किया उसके बाद ही राजनैतिक समझौते का महत्व हुआ।

उपवास से अस्पृश्यता का अभिशाप तो नहीं मिटा परंतु इसके बाद सार्वजनिक रूप से अस्पृश्यता का समर्थन समाप्त हो गया।

यदि अस्पृश्यता के ढांचे को तहस-नहस करने के सिवा गांधीजी अपने जीवन में और कुछ भी नहीं करते तो भी वह एक महान समाज-सुधारक माने जाते। पीछे दृष्टि डालने पर स्थानों आरक्षित चुनावों बनाम आदि के बारे में अंबेडकर से झगड़ा भद्दी बेकार-सी लगती है। वास्तविक सुधार धार्मिक तथा सामाजिक था राजनैतिक नहीं।

उपवास की समाप्ति के पांच दिन बाद गांधीजी का वजन ९९½ पौंड हो गया और वह घंटों तक कातने तथा काम करने लगे।

वह अभी जेल ही में थे।

गांधीजी के उपवास ने भारत के हृदय का स्पर्श किया। गांधीजी को लोगों के हृदयों से बात करने की अनिवार्य आवश्यकता जान पड़ी। मनुष्य के आंतरिक हृदय-तारों तक पहुंचने के लिए उनमें कलाकार की प्रतिभा थी। उनके उपवास मनोभावों के आदान प्रदान के साधन थे। उपवास के समाचार सब अखबारों में छपते थे। जो पढ़ना जानते थे वे बे-पढ़ों को बतलाते थे कि महात्माजी उपवास कर रहे हैं। शहरों में जाना शहरों से सामान खरीदने के लिए आनेवाले किसानों

ने जाना और वे इस समाचार को गांवों में ले गये। ग्रामीणों ने भी यही किया।

'महात्माजी उपवास क्यों कर रहे हैं?

"इसलिए कि हम हिंदू लोग अछूतों के लिए अपने मंदिर खोल दें और अछूतों के साथ अच्छा बर्ताव करें।

गांधीजी की यंत्रणा से उनके भक्तों को पीड़ा पहुंचती थी और वे जानते थे कि पृथ्वी पर ईश्वर के इस अवतार को मारना अच्छा नहीं है। उनकी वेदना को बढ़ने देना पाप है। जिन्हें गांधीजी ने हरिजन कहा है उनके साथ अच्छा सलूक करके गांधीजी के प्राण बचाना पवित्र कार्य है।

१७

राजनीति से अलग

'ऐतिहासिक उपवास' ने गांधीजी को मोटी ऊंची दीवार तोड़कर समाज सुधार के विशाल उपेक्षित क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर दिया। उनके अनेक मित्रों को दुख हुआ क्योंकि वह अपना मार्ग छोड़कर हरिजनों तथा किसानों के कल्याण-कार्य में पड़ गये। राजनीतिक लोग चाहते थे कि वह राजनीतिक बने रहें, परंतु गांधीजी ग्रामीणों के लिए पोषक-तत्वों को सर्वश्रेष्ठ राजनीति तथा हरिजनों के सुख को स्वतंत्रता का राजमार्ग समझते थे।

समाज-सुधार सदा से उनका प्रिय कार्य रहा था। २१ जनवरी १९४२ के 'हरिजन' में उन्होंने घोषणा की थी—"मैंने हमेशा यह माना है कि हर समय पार्लमेंटरी कार्यक्रम किसी राष्ट्र की सबसे छोटी प्रवृत्ति है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा स्थायी कार्य बाहर किया जाता है। वह चाहते थे कि व्यक्ति अधिक करे ताकि राज्य कम करे। नीचे जितना अधिक काम होगा ऊपर से उतनी ही कम सत्ता आरोपित होगी।

वास्तव में सरकार के विरुद्ध गांधीजी की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र थी कि २७ अप्रैल १९४ के 'हरिजन' में उन्होंने प्रतिज्ञा की कि स्वतंत्र भारत की सरकार में वह सम्मिलित नहीं होंगे। उन्होंने कहा कि वह सरकारी जगत के बाहर अपना हिस्सा अदा करेंगे। वह इतने धार्मिक थे कि किसी सरकार के साथ अपने-आपको अभिन्न नहीं बना सकते थे।

चूंकि गांधीजी का दर्शन यह था इसलिए अपने समाज-सुधार-कार्य के लिए

वह अनेक क्रियाशील सदस्योंवाले विशिष्ट स्वेच्छाधीन संगठनों पर निर्भर रहते थे।

फरवरी १९३३ में गांधीजी ने जेल में ही 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की तथा 'यंग इंडिया' के स्थान पर 'हरिजन' निकाला। ८ मई को उन्होंने आत्म-शुद्धि के लिए तथा आश्रमवासियों को मोह के बजाय सेवा का महत्व समझाने के लिए तीन सप्ताह का उपवास शुरू किया। उपवास के पहले ही दिन सरकार ने उन्हें छोड़ दिया। ऐतिहासिक उपवास' के सात दिनों की मंत्रणा के बाद यह निश्चित प्रतीत होता था कि इक्कीस दिन का यह अनशन उनके लिए घातक होगा और ब्रिटिश सरकार गांधीजी को जेल में नहीं मरने देना चाहती थी।

वह उपवास को सकुशल पार कर गये।

छोटा उपवास इतना भयकर क्यों था और दूसरा उससे तीन गुने समय का उपवास आसानी से कैसे सह लिया गया? पहले उपवास में गांधीजी बराबर मंत्रणाएं करते रहे और अस्पृश्यता का कलंक मिटाने की इच्छा उन्हें खाती रही साथ ही उनका शरीर भी जलता रहा। इक्कीस दिन के उपवास में शरीर तथा मस्तिष्क को आराम मिला। उनका छोटा-सा शरीर बलवान इच्छा-शक्ति का दास था।

अपनी रिहाई के लिए सरकार के प्रति मैत्री के संकेत रूप गांधीजी ने सविनय अवज्ञा-आंदोलन छ सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। १५ जुलाई को उन्होंने विलिंगडन को मुलाकात के लिए लिखा। वाइसराय ने इन्कार कर दिया। १ अगस्त को गांधीजी ने मरवदा से रास जाने का विचार किया। उसी रात को उन्हें चौंतीस आश्रमवासियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया परंतु तीन दिन बाद छोड़ दिया गया और पूना शहर में ही रहने का आदेश दिया गया। आधे घंटे बाद उन्होंने इस आदेश को भंग किया और उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया तथा एक वर्ष की कैद की सजा दे दी गई। १६ अगस्त को उन्होंने फिर उपवास आरंभ किया २ अगस्त को हालत खतरनाक हो जाने से उन्हें अस्पताल पहुंचाया गया और २३ तारीख को उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। मगर उन्होंने यही माना कि एक वर्ष की सजा भोग रहे हैं और घोषणा की कि ३ अगस्त १९३४ से पहले वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन फिर से चालू नहीं करेंगे।

१९३३ तक गांधीजी ने अपने-आपको पूर्णतया उन संस्थाओं के हवाले कर दिया जो उन्होंने जन-कल्याण तथा शिक्षण के लिए स्थापित की थीं। उन्होंने साबर

मती आश्रम एक हरिजन संस्था को दे दिया और वर्धा में अपना मुकाम बनाया। यहीं से ७ नवंबर १९३३ को उन्होंने हरिजन-कार्य के लिए दस महीने का दौरा प्रारंभ किया। आराम के लिए बिना एक बार भी लौटे, वह भारत के प्रत्येक प्रांत में घूमे।

१५ जनवरी १९३४ को बिहार प्रांत के बड़े भाग में भयंकर भूचाल आया। गांधीजी अपना दौरा स्थगित कर मार्च में वहां जा पहुंचे। वह गांव-गांव में लोगों को सांत्वना दिलाते तथा उपदेश देते हुए नंगे पांव घूमे। उन्होंने जनता से कहा कि यह भूचाल तुम्हारे पापों का दंड है, "खासकर अस्पृश्यता के पाप का"। इस अंधविश्वास पर ठाकुर को तथा अन्य शिक्षित भारतवासियों को रोष आया। ठाकुर ने गांधीजी की भर्त्सना की। समाचार-पत्रों को दिये गये एक वक्तव्य में ठाकुर ने कहा—"भौतिक दुर्घटनाओं का अनिवार्य तथा एकमात्र मूल भौतिक तथ्यों के किसी संयोग में होता है। यदि हम आचार-नीति के सिद्धांतों को विश्व संबंधी प्राकृतिक घटनाओं से जोड़ने लगें तो हमको मानना पड़ेगा कि मनुष्य की प्रकृति नैतिकता में उस दैव से श्रेष्ठ है, जो अच्छे आचरण के पाठ निकृष्टतम बर्ताव की मनमानी हरकतों के द्वारा सिखाता है। हम तो इस विश्वास में अपने-आपको पूर्णतया सुरक्षित समझते हैं कि हमारे पाप तथा हमारी भूलें चाहे तथा कितने भीषण क्यों न हों उनमें इतना बल नहीं है कि सृष्टि के ढांचे को गिराकर चकनाचूर कर दें।

गांधीजी इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने उत्तर दिया—"जड़ और चेतन के बीच एक अविच्छेद्य गठ-बंधन है। विश्व-संबंधी प्राकृतिक घटनाओं तथा मानव-आचरण का पारस्परिक बंधन एक जीवित विश्वास है और मुझे ईश्वर के निकट ले जाता है। जिस समय गांधीजी ईश्वर की दुहाई देने लगते थे तब उनसे तर्क नहीं किया जा सकता था। दीनों की सहायता करना गांधीजी अपना प्रधान अनिवार्य कर्तव्य जानते थे और चूंकि गांधीजी तथा गांधीजी का ईश्वर साम्यवादी थे इसलिए महात्माजी सर्वशक्तिमान परमात्मा को अपने काम में शामिल कर लेते थे। उन्होंने लिखा था— भूखों मरनेवाली और बेकार जनता के सामने ईश्वर जिस एकमात्र स्वीकार्य रूप में प्रकट होने का साहस कर सकता है, वह है काम और भोजन तथा मजूरी का आश्वासन।

यह विचार कि गांधीजी गरीबी का समर्थन करते थे मिथ्या है। वह तो कुछ चुने हुए आदर्शवादियों को प्रेरित करते थे कि आत्म-त्याग के द्वारा जनता की सेवा

करें। सारे राष्ट्र के लिए उनका कहना था—"किसीने कभी भी यह विचार नहीं किया कि दुर्दमनीय दरिद्रता का परिणाम नैतिक पतन के सिवा कुछ और नहीं हो सकता है।

गांधीजी चरम दरिद्रता और चरम संपत्ति दोनों की निंदा करते थे।

१९३३ और १९३४ के बीच गांधीजी ने अपने जन-प्रस्थान के मार्ग में अन्य बातों को नहीं आने दिया। इसमें अनेक तूफान भी आये। २५ जून १९३४ को पूना में किसी हिंदू ने जो शायद हरिजनों को समानता देने का विरोधी था एक मोटरगाड़ी पर इस भ्रम में बम फेंका कि उसमें गांधीजी बैठे हुए थे। कुछ दिन बाद गांधीजी के एक समर्थक ने एक हरिजन-विरोधी के लाठी मारी। इन दोनों पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए गांधीजी ने जुलाई १९३४ में सात दिन का उपवास किया।

गांवों की सभाओं में तथा 'हरिजन' में गांधीजी कृषक-जनता को भोजन के बारे में प्रारंभिक बातें बताने लगे। वह जानते थे कि बीज का सुधार, खाद का उचित उपयोग और पशुओं की उचित देख-भाल आधारभूत राजनैतिक समस्याओं को हल कर सकते हैं।

गांधीजी ने ग्राम्य-जीवन के उन पहलुओं पर भी ध्यान दिया जो कृषि से संबंध नहीं रखते थे। २९ अगस्त १९३६ के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा—"हमें गांवों को आत्म-निर्भर बनाने पर शक्ति लगानी है।

२६ जुलाई १९४२ के 'हरिजन' में गांधीजी ने आदर्श भारतीय गांव की व्याख्या की—"यह एक संपूर्ण जनतंत्र होगा जो अपनी जीवन-संबंधी खास आवश्यकताओं के लिए पड़ोसियों पर निर्भर नहीं होगा परन्तु फिर भी अन्य अनेक आवश्यकताओं के लिए, जिनमें दूसरे पर निर्भरता अनिवार्य है अन्योन्याश्रित रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक गांव का सबसे पहला काम होगा खुद अपना अनाज पैदा करना तथा अपने कपड़े के लिए कपास पैदा करना। उसमें गोचर-भूमि होगी तथा प्रौढ़ों और बच्चों के लिए मनोरंजन के साधन तथा खेल-कूद के मैदान होगा। गांव में नाटक-घर पाठशाला और सार्वजनिक भवन की व्यवस्था होगी। बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा होने तक शिक्षा अनिवार्य होगी। जहां तक संभव हो प्रत्येक प्रवृत्ति सहकारिता के आधार पर चलाई जायगी। गांधीजी की यह भी कल्पना थी कि प्रत्येक गांव के घर-घर में बिजली पहुंच जाय।

गांधीजी ने एक बार कहा था—"मैं ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकता

तब कोई भी मनुष्य दूसरे से अधिक धनवान नहीं होगा। सर्वाधिक पूर्णता प्राप्त संसार में भी हम असमानता से नहीं बच सकेंगे परंतु हम लड़ाई-झगड़े और कटुता से बच सकते हैं और बचना आवश्यक भी है। आज भी धनवानों तथा गरीबों के पूर्ण मैत्री के साथ रहने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसे उदाहरणों को बढ़ाना चाहिए।

गांधीजी यह काम 'अमानतदारी' के द्वारा कराना चाहते थे।

२८ जुलाई १९४ को गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा था—"गरीबों का शोषण कुछ लखपतियों को नष्ट करके नहीं मिटाया जा सकता बल्कि गरीबों की अज्ञानता को दूर करके और उन्हें शोषणकर्ताओं के साथ असहयोग करना सिखाकर मिटाया जा सकता है। इससे शोषणकर्ताओं का हृदय भी बदल जायगा।

परंतु समय बीतने पर भी तथा गांधीजी के तमाम प्रयोजनों से भी कोई अमानतदार पैदा नहीं हुए। अपनी मृत्यु से पहले गांधीजी को किसी जमींदार अथवा मिल मालिक द्वारा स्वेच्छापूर्वक त्याग का समाचार नहीं मिला।

अतः धीरे-धीरे गांधीजी के आर्थिक विचार बदलने लगे। वह वर्ग-सहयोग का तो समर्थन करते रहे, परंतु गरीबी मिटाने के नये उपाय खोजने लगे। आर्थिक मामलों में वह राज्य की साझेदारी के हामी बन गये। वह कहने लगे कि समानीकरण की प्रक्रिया कानून की सहायता से होनी चाहिए।

१९४१ में तथा दुबारा १९४२ में गांधीजी ने भारतीय पूंजीपतियों को चेतावनी दी—"अहिंसक पद्धति की सरकार स्पष्ट रूप से असंभव है जबतक कि धनवानों तथा करोड़ों भूखे लोगों के बीच की चौड़ी खाई बनी रहती है। यदि संपत्ति तथा संपत्तिजनित अधिकार स्वेच्छापूर्वक नहीं त्यागे गये तथा उन्हें सबके समान हित में नहीं बांटा गया तो एक दिन खूनी क्रांति अवश्यंभावी है।

१९४२ में मैंने गांधीजी से पूछा—"स्वतंत्र भारत में क्या होगा? किसान-वर्ग की समस्या को उन्नत बनाने के लिए आपका क्या कार्यक्रम है?

गांधीजी ने उत्तर दिया—"किसान खुद भूमि छीन लेंगे। हमें उनसे कहना नहीं पड़ेगा कि भूमि छीन लो। वे अपने-आप छीन लेंगे।

"क्या जमींदारों को मुआवजा दिया जायगा?" मैंने पूछा।

"नहीं" गांधीजी ने कहा—"आर्थिक दृष्टि से यह संभव नहीं है।

एक भेंट करनेवाले ने गांधीजी से कहा— कपड़े की मिलों की संख्या बढ़ रही है।

"यह दुर्भाग्य है, उन्होंने कहा—"अच्छा होगा कि किसानों के जिनके पास कम काम रहता है करोड़ों घरों में कपड़ा तैयार हो।"

भौतिक आवश्यकताओं की तथा उन्हें पूरा करनेवाली वस्तुओं की वृद्धि को गांधीजी सुख अथवा वैभव का राजमार्ग नहीं मानते थे। उनका कहना था—"सच्चा अर्थशास्त्र वही है, जो सामाजिक न्याय तथा नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन करता है। आधुनिक परिभाषा में व्यक्तित्व खोकर मशीन का पुर्जा मात्र बन जाना मनुष्य की प्रतिष्ठा को गिराना है।

गांधीजी ने लिखा था— "व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बिना समाज का निर्माण करना संभव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सींग या पूंछ नहीं उगा सकता उसी प्रकार यदि उसमें स्वयं विचार करने की शक्ति नहीं है तो वह मनुष्य के रूप में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। अतः लोकतंत्र वह अवस्था नहीं है जिसमें लोग भेड़ों की तरह बर्ताव करें।

गांधीजी इस धारणा से सहमत नहीं थे कि लोकतंत्र का अर्थ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करके आर्थिक स्वतंत्रता है अथवा बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनैतिक स्वतंत्रता है।

गांधीजी के व्यक्तिवाद का अर्थ था बाह्य परिस्थितियों से अधिकाधिक स्वतंत्रता तथा आंतरिक गुणों का विकास।

१९४२ में जब मैं एक सप्ताह गांधीजी का मेहमान रहा मैंने उनकी कुटिया की दीवार पर केवल एक सजावट देखी ईसा मसीह की एक सादा तसवीर, जिस पर लिखा था—"यह हमारी शांति है। मैंने गांधीजी से इसके बारे में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—"मैं ईसाई हूं। ईसाई, हिंदू, मुसलमान और यहूदी।

यद्यपि गांधीजी एक हिंदू सुधारक थे और हिंदू धर्म पर बाह्य प्रभावों का स्वागत करते थे परंतु हिंदू रिवाजों तथा विश्वासों को छोड़ना उन्हें पसंद नहीं था। १९२७ में देवदास का राजगोपालाचारी की पुत्री लक्ष्मी से प्रेम हो गया और उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। परंतु राजगोपालाचारी ब्राह्मण थे और गांधीजी वैश्य थे और विभिन्न जातियों के बीच विवाह-संबंध नहीं होता। युवक-युवतियों का अपने साथी पसंद करना भी ठीक नहीं था—विवाह-संबंध तो माता-पिता ठीक करते हैं। परंतु देवदास और लक्ष्मी अड़े हुए थे और अंत में दोनों के पिताओं ने इस शर्त पर विवाह की स्वीकृति देना मंजूर किया कि पांच वर्ष

समय रहने के बाद भी दोनों विवाह की इच्छा प्रकट करें। इस प्रकार देवदास तथा लक्ष्मी ने पांच वर्ष तक धैर्यभरी प्रतीक्षा की और १६ जून १९३३ को पूना में दोनों के प्रसन्न-पिताओं की उपस्थिति में ठाठ-बाट के साथ विवाह हुआ।

गांधीजी में कट्टर रूढ़िवादी तथा पूर्ण सुधारवादी मूर्ति-भंजक का एक बड़ा अनोखा मिश्रण था। लगता तो यह था कि अस्पृश्यता-उन्मूलन का स्वाभाविक परिणाम जाति-भेद मिट जाना था क्योंकि जब लोग अछूतों से मिलने-जुलने लगें तो ऊंची जातियों के बीच की दीवार ढह जानी चाहिए। परंतु कई वर्षों तक गांधीजी जाति-बंधनों का समर्थन करते रहे।

बाद में इन्हीं गांधीजी ने कहा—"अंतर्जातीय सहभोजों तथा अंतर्जातीय विवाहों पर बंधन हिंदू धर्म का अंग नहीं है। आज ये दोनों प्रतिबंध हिंदू समाज को कमजोर बना रहे हैं।

परंतु यह भी गांधीजी का अंतिम मत नहीं था। कट्टर परंपराओं से नाता तोड़ने के बाद वह उनसे अधिकाधिक दूर हटते गये और ७ जनवरी १९४६ के 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' में उन्होंने घोषणा की—"विवाह के इच्छुक सब लड़के तथा लड़कियों से मेरा कहना है कि सेवाग्राम में उनका विवाह संपन्न नहीं हो सकता जबतक कि उनमें से एक हरिजन न हो।

वह विभिन्न धर्मावलंबियों में परस्पर विवाह-संबंध के विरोधी थे परंतु बाद में इसके भी पक्ष में हो गये।

बाद के वर्षों में ब्रह्मचर्य पर भी गांधीजी के विचार बदल गये। १९३२ में आचार्य कृपलानी एक बंगाली लड़की से प्रेम करने लगे और उससे विवाह करना चाहा। गांधीजी ने इस सुचेता को बुलाया और समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—"वह विवाह से नष्ट हो जायगा। सामाजिक समस्याओं पर से उसका ध्यान हट जायगा। गांधीजी ने सुचेता को सलाह दी कि किसी दूसरे से विवाह कर ले।

एक वर्ष बाद गांधीजी ने सुचेता को फिर बुलाया और विवाह की स्वीकृति दे दी। "मैं तुम दोनों के लिए प्रार्थना करूंगा" उन्होंने कहा।

दुराग्रहों के विरुद्ध लड़नेवाले के नाते गांधीजी को अपनी विचारों में दृढ़ता रखनी पड़ती थी। सत्य भक्त होने के नाते उन्हें अपने विचारों को बदलने की क्षमता रखना भी आवश्यक था। कभी-कभी वह अपने मत का इतनी दृढ़ता के साथ समर्थन करते थे कि वह अ[illegible] लगता था परंतु आवश्यकता पड़ने

पर वह अपनी स्थिति को इस कदर बदल देते थे कि उनके अनुयायी असमंजस में पड़ जाते थे। यद्यपि आमतौर पर वह अपनी स्थिरता सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे परंतु अपनी अस्थिरताओं को भी स्वीकार करते थे। वह चट्टान की तरह अटल भी हो सकते थे और नरमी के साथ झुकनेवाले भी। किसी समय वह कांग्रेस को अपने आदेशों पर चलाते थे तो कभी उसकी किस्मत पर और उसकी भूलताओं पर छोड़ देते थे। उनके हाथ में जबरदस्त शक्ति थी परंतु वह अवसर काम में नहीं आती थी। अत्यंत निर्णायक मुद्दों में वह अपने विरोधियों के आगे भी झुक जाते थे हालांकि वह उन्हें अपनी एक अंगुली के इशारे से खत्म कर सकते थे। उनमें अधिनायक की महान शक्ति थी और लोकतंत्री का मानस था। अधिकार से उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी संतुष्टि चाहनेवाला विरल मानस उनके पास नहीं था। परिणामस्वरूप वह विभाति अनुभव करनेवाले व्यक्ति थे। सर्वज्ञता अचूकपन सर्वशक्तिमत्ता तथा प्रतिष्ठा की छाप डालने की समस्या उन्हें कभी परेशान नहीं करती थी।

प्रत्येक नेता के सरंजाम में एक दीवार भी शामिल रहा करती है। यह दीवार ऊंची ईंटों की बनी हुई और पहरेदारों की पलटन हो सकती है या वह प्रश्न का उत्तर न देने तथा मूक मुसकराहट के रूप में हो सकती है। इसका उद्देश्य होता है दूरी तथा भय के द्वारा श्रद्धा उत्पन्न कराना और दुर्बलताओं तथा भेदों पर पर्दा डालना। गांधीजी के चारों ओर ऐसी कोई दीवार नहीं थी। एक बार उन्होंने कहा था—"मैं बिना किसी संकोच के कहता हूं कि मैंने अपने सारे जीवन में कुटिलता का सहारा कभी नहीं लिया। उनका मानस तथा उनके भावावेग उनके शरीर से भी अधिक अनावृत थे।

गांधीजी एक शाश्वत उपदेष्टा थे। इसलिए उन्होंने अपने-आपको ऐसा बना लिया था कि सब कोई उनके पास पहुंच सकते थे। उनका वह गुण केवल पूर्ण ही नहीं था क्रियात्मक भी था।

अगस्त १९४७ में गांधीजी कलकत्ता में भारतीय इतिहास के सबसे घिनौने संकट का सामना कर रहे थे। शहर की सड़कों पर हिंदू और मुसलमानों का खून बह रहा था। एक दिन तड़के अमिय चक्रवर्ती उनसे मिलने आये। अमिय रवींद्र ठाकुर के साहित्य-मंत्री थे। उनका एक प्यारा भाई बीमारी से हाल ही में मर गया था और सांत्वना पाने और अपने दुःख को गांधीजी के साथ बटाने के लिए वह उनसे मिलना चाहते थे। वह गांधीजी के कमरे में एक कोने में दीवार के

सहारे खड़े हो गये। गांधीजी लिख रहे थे। जब उन्होंने अपना सिर उठाया तो अमिय आगे बढ़े और अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनाया। गांधीजी ने संवेदना-भरी बात कही और शाम की प्रार्थना सभा में बुलाया। जब अमिय शाम को आये, तो गांधीजी ने कागज का एक पुर्जा उन्हें देते हुए कहा—"यह सीधा हृदय से निकला है, इसलिए इसका मूल्य है।" पुर्जे पर लिखा था

"प्रिय अमिय

"तुम्हारी जो हानि हुई है उसका मुझे खेद है पर वास्तव में वह हानि नहीं है। मृत्यु तो निद्रा और विस्मृति है। वह एक ऐसी मधुर निद्रा है कि उससे यह देह फिर कभी नहीं उठती और स्मृतियों का बोझ-भार दूर हो जाता है। जहां तक मैं जानता हूं जैसे हम आज मिलते हैं वैसी भेंट इस दुनिया से परे नहीं होती। जब अकेली-अकेली बूंदें मिलती हैं तो उन्हें सागर का गौरव प्राप्त होता है जिसका कि वे एक अंग होती हैं। अकेली तो वे इस आशा से नष्ट हो जाती हैं कि पुनः सागर से मिलेंगी। मुझे पता नहीं है कि मैं अपनी बात इतने स्पष्ट रूप से कह सका हूं कि तुम्हें सांत्वना मिले।

सप्रेम

बापू"

लोगों के लिए यही बात बड़ी सांत्वना की थी कि उन्होंने उनकी परवाह की। सारे राष्ट्र के लिए चिंताओं के बीच वह छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी ध्यान रखते थे। उनका विश्वास था कि अगर राजनीति मानव प्राणियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं है, तो उसका मूल्य शून्य के समान है। गांधीजी का सम्पूर्ण अस्तित्व मानव जाति की भलाई पर केंद्रित था। ग्रामीण सुधार में जुटी ग्राम-समितियां हों इस बात की चिंता शोक-संतप्त संबंधी के वेदना भरे हृदय के लिए परेशानी किसी लड़की के लिए अपने पति का चुनाव बीमार किसान के लिए मिट्टी की पट्टी एक दस्तकार के हिस्से ऐसी छोटी-छोटी बातों से कोई भी ऊपर उठ नहीं पाता। इन्हींसे जीवन का निर्माण होता है। वादों और धार्मिक सिद्धांतों की पतली हवा में कोई नहीं रह सकता।

भारत के तथा बाहर के हजारों व्यक्तियों के साथ गांधीजी का पत्र-व्यवहार था। अधिकतर तो एक पत्र फिर व्यक्तिगत संबंध का बीज बन जाता था। प्रारंभ में लोग उनसे व्यापक राजनैतिक अथवा धार्मिक मामलों में सलाह लेते थे परंतु बाद में निजी मामलों में भी उनकी सलाह मांगने लगते थे। वह सबके लिए मातृ-समान पिता थे।

बहुत वर्षों से गांधीजी की दैनिक औसत डाक सौ पत्रों की होती थी। इनमें से वह लगभग दस पत्रों के उत्तर तो खुद अपने हाथ से लिखते थे कुछ के उत्तर लिखाते थे और कुछ के उत्तरों के बारे में अपने सचिवों को हिदायतें दे देते थे। ऐसा कोई भी पत्र नहीं रहता था जिसका उत्तर न दिया जाता हो।

दिन के बचे हुए भाग में वह आगंतुकों से मिलते थे। उनसे मुलाकात तय करना मुश्किल नहीं था। दिसंबर १९३५ में श्रीमती मारगरेट सैंगर गर्भ-निरोध की समर्थक उनसे मिलने आई जनवरी १९३६ में जापानी लेखक योन नागूची आये जनवरी १९३८ में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ लार्ड लोथियन तीन दिन सेवाग्राम में ठहरे। महात्माजी के इतर-भारतीय मेहमानों की सूची एक अंतर्राष्ट्रीय परिचय ग्रंथ के समान थी। विदेशी लोग समझते थे कि गांधीजी से मिले बिना उनकी भारत-यात्रा अपूर्ण थी।

उनका खयाल ठीक था। गांधीजी मूर्तिमान भारत थे। वह अपने को हरिजन मुसलमान ईसाई, हिंदू, किसान बुनकर, कहते थे। वह भारत के साथ एकाकार हो गये थे। जनता और अलग-अलग व्यक्तियों से घुल-मिल जाने का उनमें बड़ा गुण था। वह भारत-निवासियों को मुक्त कराकर देश को स्वामी रूप से स्वतंत्र करना चाहते थे। यह इंग्लैंड से राजनैतिक मुक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल था। ऐसा कैसे हो? उन्होंने सन १९४५ में लिखा—"मैं सामाजिक क्रांति का कोई भी राजमार्ग नहीं बता सकता सिवा इसके कि हम अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में उसका समावेश करें। इसलिए गांधीजी की युद्धभूमि मानव-हृदय थी। वहीं उन्होंने अपना घर बनाया। औरों की अपेक्षा वह इस बात को कहीं अच्छी तरह से जानते थे कि इतनी कम लड़ाई लड़ी और जीती गई है। उनका कहना था कि जबतक आदमी के दैनिक व्यवहार में सामाजिक शांति नहीं होगी तबतक हम देश को उस समय की अपेक्षा अधिक सुखी नहीं बना सकते जबकि हम पैदा हुए थे। सामाजिक क्रांति नये मानव को जन्म नहीं दे सकती। नये प्रकार का मानव ही सामाजिक-क्रांति को जन्म देता है।

१८

महायुद्ध का प्रारंभ

जवाहरलाल नेहरू १९३६ और १९३७ के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष थे। यह एक असाधारण सम्मान तथा भारी उत्तरदायित्व भी था। परंतु उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि गांधीजी कांग्रेस के 'स्थायी महा-अध्यक्ष' थे। कांग्रेस गांधीजी की आज्ञा पर चलती थी। राजनीति के भीतर की बात हो या राजनीति से बाहर की जनता तथा अधिकांश कांग्रेसी नेता उनकी मुट्ठी में होने के कारण वह यदि चाहते तो कांग्रेस से अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते थे और उसके निर्णयों को रद्द कर सकते थे।

गांधीजी की रजामंदी मिलने पर ही कांग्रेस ने नये ब्रिटिश संविधान के अधीन १९३७ के पूर्व भाग में होनेवाले प्रांतीय तथा केंद्रीय विधानमंडलों के चुनावों में भाग लिया। १ मई १९३७ के 'हरिजन' में गांधीजी ने स्पष्ट किया कि विधानमंडलों का बहिष्कार सत्य और अहिंसा की तरह कोई शाश्वत सिद्धांत नहीं है।

क्या कांग्रेस उन प्रांतों में पद-ग्रहण करे, जिनमें उसे बहुमत प्राप्त हुआ है? गांधीजी की सलाह पर मार्च १९३७ में कांग्रेस ने इसके पक्ष में फैसला किया लेकिन इस शर्त के साथ कि प्रांतों के गवर्नर हस्तक्षेप नहीं करेंगे और इस आशा से कि पद-ग्रहण का उपयोग देश को स्वाधीनता के लिए तैयार करने में किया जायगा।

कांग्रेस की कुल सदस्य-संख्या जो १९३८ के प्रारंभ में ११ २ १११ थी १९३९ के प्रारंभ में बढ़कर ४४ ७८ ७२ हो गई। परंतु गांधीजी ने जो केवल संख्या से प्रभावित होनेवाले नहीं थे कांग्रेस को चेतावनी दी कि वह अधिकार तथा पद-लोलुपता से भ्रष्ट न हो जाय। उन्हें पतन के लक्षण दिखाई देने लगे थे और उन्होंने स्वीकार किया कि वह सविनय-अवज्ञा-आंदोलन की जिम्मेदारी नहीं ले सकते क्योंकि यद्यपि जनता में काफी अहिंसा है, तथापि जो लोग जनता को संगठित करनेवाले हैं, उनमें काफी अहिंसा नहीं है।

करोड़ों लोग गांधीजी की आज्ञा मानते थे ढेरों उनकी पूजा करते थे भीड़-की-भीड़ अपने को उनका अनुयायी गिनती थी परंतु उनके समान आचरण करनेवाले मुट्ठी-भर थे। गांधीजी इस बात को जानते थे। परंतु यह जानकारी न तो उनकी ज्वालामुखी जैसी शक्ति को नम करती थी न उनके ढीले-पड़े इरादे को

बरतती थी। इसके विपरीत १९१ के बाद के वर्षों में जब वह चीन अबी सीनिया स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और सबसे ऊपर जर्मनी पर अंधकार के बादल घिरते हुए देख रहे थे तो युद्ध-शांतिवाद के लिए उनका जोश बढ़ रहा था। ६ फरवरी १९११ को उन्होंने कहा था—"घुगम अंधकार में मेरा विश्वास अधिक-से अधिक उज्ज्वल होता है।" उन्हें द्वितीय महायुद्ध नजदीक आता दिखाई दे रहा था।

गांधीजी का शांतिवाद उनके आंतरिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

एक बार गांधीजी जब जेल में थे उनके एक साथी कैदी को बिच्छू ने काट लिया। गांधीजी ने उसके विष को चूस लिया। कुष्ठ-पीड़ित परचुरे शास्त्री ने सेवाग्राम-आश्रम में आना चाहा कुछ आश्रम-वासियों ने आपत्ति की उन्हें छूत लगने का डर था। गांधीजी ने न केवल उन्हें आश्रम में भरती किया बल्कि उनकी मालिश भी की।

दूसरों को अपना मतानुयायी बनाने की उन्हें तनिक भी आशा न थी। परंतु जहां पहले वह विरोधियों द्वारा कोंचे जाने पर भी टस-से-मस नहीं हुए थे और यह दलील देते थे कि भारत में हिंसा के होते हुए वह पश्चिम को अहिंसक नहीं बना सकते वहां १९११ में उन्होंने अबीसीनियावासियों को युद्ध न करने की सलाह दी।

गांधीजी ने कहा—"यदि अबीसीनियावासी बलवान की अहिंसा का बल अपना लेते अर्थात ऐसी अहिंसा का पालन करते जो टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, पर झुकती नहीं है तो मुसोलिनी को अबीसीनिया में कोई दिलचस्पी न रहती।"

चेकोस्लोवाकिया की तथा जर्मनी के यहूदियों की दुखद घटना ने उनके हृदय को और भी गहरा स्पर्श किया।

'हरिजन' के एक लेख में गांधीजी ने चेकों को सलाह दी—"हिटलर की मर्जी के मुताबिक चलने से इन्कार कर दो और इस प्रयत्न में बिना हथियार उठाये मर जाओ। ऐसा करने में यद्यपि शरीर जाता है परंतु अपनी आत्मा अर्थात अपनी इज्जत बच जाती है।

दिसंबर १९३८ में अंतर्राष्ट्रीय मिशनरी सम्मेलन के कुछ प्रमुख ईसाई पादरी सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने आये। ये लोग चेकों के लिए गांधीजी के बताये हुए नुस्खे पर बहस करने लगे। एक पादरी ने कहा— 'आप हिटलर और मुसोलिनी को नहीं पहचानते हैं। इनके दिलों में किसी तरह की नैतिक प्रतिक्रिया नहीं हो

सकती इनमें आत्मा नहीं है और जगत के मत का इन पर लेशमात्र भी असर नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि चेक लोग आपकी सलाह मानकर अहिंसा से इनका मुकाबला करें, तो क्या यह इन अधिनायकों के हाथ में खेलना नहीं होगा ?

गांधीजी ने आपत्ति की— आपकी दलील पहले ही से यह मानकर चलती है कि मुसोलिनी और हिटलर का उद्धार असंभव है।

११ नवंबर १९३८ के 'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा था—"मेरी सारी सहानुभूति यहूदियों के साथ है। वे लोग ईसाइयत के अछूत रहे हैं। जर्मनी द्वारा यहूदियों पर अत्याचार इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखता। यदि मानवता के नाम पर तथा मानवता के हित में कोई भी न्यायोचित युद्ध हो सकता तो एक संपूर्ण जाति पर निरंकुश अत्याचार रोकने के लिए जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई पूरी तरह न्यायोचित होती। परंतु मैं किसी तरह के युद्ध में विश्वास नहीं करता। मुझे यकीन है कि यदि यहूदियों में कोई हिम्मत और सूझ-बूझवाला पैदा हो जाय और अहिंसात्मक कार्रवाई में उनका नेतृत्व करे, तो निराशा का अंधेरा पल भर में आशा के प्रकाश में बदल सकता है। इससे जर्मन-यहूदी इतर-जर्मनों पर एक चिरस्थायी विजय प्राप्त करेंगे इस अर्थ में कि वे उनके हृदयों में मानव प्रतिष्ठा का मूल्य स्थापित कर सकेंगे।"

इन शब्दों के लिए नात्सी अखबारों ने गांधीजी पर भीषण वाग्बाण बरसाये। भारत के विरुद्ध उचित कार्रवाई की धमकियां भी दी गईं। परंतु गांधीजी ने उत्तर दिया—"यदि अपने देश को या अपने-आपको या भारत-जर्मन संबंधों को नुकसान पहुंचने के डर से मैं वह सलाह देने में संकोच करूं, जिसे मैं अपने हृदय के अंतस्तल से सौ फीसदी ठीक समझता हूं, तो मुझे अपने-आपको कायरों की पंक्ति में रखना चाहिए।

१९४६ में हिटलर की मृत्यु के बाद मैंने गांधीजी से इस विषय पर बात की। गांधीजी ने कहा—"हिटलर ने पचास लाख यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। हमारे समय का यह सबसे बड़ा अपराध है। परन्तु यहूदियों को चाहिए था कि कसाई के छुरे के आगे सिर झुका देते। उन्हें चट्टानों पर से समुद्र में कूद पड़ना चाहिए था। इससे संसार की तथा जर्मनी के लोगों की भावनाएं जागृत हो जातीं। हुआ यह कि इस तरह नहीं तो दूसरी तरह लाखों यहूदी मारे गये।

दिसंबर १९३८ में जापानी-संसद के एक सदस्य श्री ताकाओका सेवाग्राम

आये। उन्होंने पूछा कि भारत और जापान के बीच एकता कैसे फलीभूत हो सकती है।

गांधीजी ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया—"यह संभव हो सकता है यदि जापान भारत पर अपनी लालचभरी निगाहें डालना बंद कर दे।

२४ अगस्त को जिस दिन स्तालिन-हिटलर-करार पर हस्ताक्षर हुए, लंदन से एक महिला ने गांधीजी को तार दिया—"कृपया कदम उठाइये। संसार नेतृत्व की प्रतीक्षा में है।" युद्ध प्रारंभ होने में अभी एक सप्ताह की देर थी। दूसरी महिला ने इंग्लैंड से बेतार का संदेश भेजा— "अनुरोध है कि आप शासकों पर तथा सब देशों के निवासियों पर, बस में नहीं बल्कि मुक्ति में अपनी अटल श्रद्धा का तुरंत इजहार करें।" सेवाग्राम में इसी प्रकार के अनुरोधक संदेशों का ढेर लग गया।

अब समय निकल चुका था। १ सितंबर १९३९ को नात्सी सेना ने पोलैंड पर धावा बोल दिया।

रविवार, ३ सितंबर १९३९, सुबह ११ बजे। इंग्लैंड के गिरजों में भीड़ जमा थी। ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उस दिन का तीसरा पहर मैंने पेरिस के बाहर देहात में बिताया। शाम को ५ बजे एक अकेला वायुयान ऊपर से निकल गया। रेडियो ने घोषणा की कि फ्रांस युद्ध में शामिल हो गया है। हम लोग शहर को वापस चले। छोटे-छोटे कसबों की गलियों में स्त्रियां खड़ी-खड़ी विषाद-भरी निगाहों से शून्य की ओर—उत्साह-रहित भविष्य की ओर—ताक रही थीं। कुछ आंसू बहा रही थीं। सेना द्वारा सैनिक कार्यों के हेतु लिये गये भारी सुपोषित बलिष्ठ कृषकोपयोगी घोड़ों की लंबी कतार के कारण हमारी मोटरयात्रा को रुकना पड़ा। एक किसान ने अपने घोड़े को अपनी बाहु में लपेट लिया, अपना गाल उसके मुंह पर लगा दिया और उसके कान में कुछ कहने लगा। घोड़े ने अपनी गर्दन ऊपर-नीचे हिलाई। दोनों एक-दूसरे से विदा ले रहे थे। १९४५ में इस तरह की विदाइयां समाप्त होने से पहले संसार के सब भागों में तीस लाख से ऊपर व्यक्ति जीवन से विदाई ले चुके थे। तीस लाख से ऊपर नर नारियां और बच्चे मर गये, दस करोड़ से ऊपर घायल, चूर्टस और अपस्त हो गये, लाखों घर तहस-नहस हो गये, दो शहरों पर परमाणु-बम गिरे, आशाएं नष्ट हो गईं, भावनाएं कड़टे हो गयी नैतिक मान शिथिल हो गये।

हमारे पास वैज्ञानिक तो बहुत हैं, पर ईश्वर भक्त बहुत कम हैं,

संयुक्त राज्य सेना के प्रधान अधिकारी जनरल ओमर एन. ब्रैडले ने १० नवंबर १९४८ को बास्टन में कहा था— "हमने परमाणु के रहस्य को पकड़ लिया है और गिरि-प्रवचन[1] को त्याग दिया है। संसार ने बिना बुद्धि की चमक और बिना विवेक की सामर्थ्य प्राप्त की है। हमारा यह संसार पारमाणविक-दैत्यों तथा नैतिक-बौनों का संसार है। हम शांति के बारे में इतना नहीं जानते जितना युद्ध के बारे में; जीने के बारे में उतना नहीं जानते जितना मारने के बारे में।

गांधीजी ने परमाणु को त्याग दिया और गिरि-प्रवचन को ग्रहण किया। वह एक पारमाणविक-बौने तथा नैतिक-दैत्य थे। मारने के बारे में वह कुछ नहीं जानते थे और बीसवीं सदी में जीने के बारे में बहुत कुछ जानते थे।

गांधीजी की विचारधारा को केवल वे ही पूरी तरह छोड़ सकते हैं, जिनके हृदयों में कोई भावनाएं नहीं हैं।

१९

चर्चिल बनाम गांधी

जिस दिन द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ उसी दिन इंग्लैंड ने बिना भारतवासियों की कोई सलाह लिये घोषणा करके भारत को युद्ध में शामिल कर लिया। विदेशी नियंत्रण के इस अतिरिक्त प्रमाण ने भारत में रोष उत्पन्न कर दिया। परंतु इस पर भी दूसरे दिन शिमला से वाइसराय लार्ड लिनलिथगो का तार द्वारा बुलावा आने पर गांधीजी पहली गाड़ी से शिमला के लिए रवाना हो गये। ज्योंही महात्मा की गाड़ी की ओर चले, स्टेशन पर खड़ी भीड़ ने नारे लगाये—"हम कोई समझौता नहीं चाहते!" उस दिन गांधीजी का मौन-दिवस था, इसलिए वह केवल मुस्करा दिये और रवाना हो गये।

वाइसराय तथा महात्माजी ने आनेवाले युद्ध के स्वरूप के बारे में चर्चा की और गांधीजी के शब्दों में "जब मैं वाइसराय के सामने पार्लामेंट भवन तथा वेस्ट मिनिस्टर ऐबे की ओर इनके संभावित विनाश की तसवीर रख रहा था, मेरा मर्म छू गया। मैं अधीर हो गया। अपने हृदय के भीतर मैं चुपचाप ईश्वर से बराबर झगड़ रहा हूं कि वह ऐसी बात क्यों होने देता है।

१ ईसा का प्रसिद्ध उपदेश जो बाइबिल में दिया हुआ है।

गांधीजी का ईश्वर से रोज झगड़ा होता था। अहिंसा असफल हो गई। ईश्वर ने कुछ नहीं किया। परंतु हर झगड़े के बाद गांधीजी इस निश्चय पर पहुंचते थे कि "न तो ईश्वर शक्तिहीन है और न अहिंसा। शक्तिहीनता तो मनुष्यों में है। श्रद्धा न खोकर मुझे प्रयत्न करते रहना चाहिए।"

आलोचकों का कहना था कि शिमला की मुलाकात में गांधीजी ने वाइसराय से भावावेश की निरर्थक बातें कीं। गांधीजी ने उत्तर दिया— "इंग्लैंड और फ्रांस के लिए मेरी सहानुभूति क्षणिक भावावेश का या भोंडी माया में उन्माद का, परिणाम नहीं है।

किंतु वह कर क्या सकते थे? ईश्वर से दैनिक बहस के अलावा वह कांग्रेस के साथ निरंतर बहसों में फंस गये थे। गांधीजी के लिए, अहिंसा एक धार्मिक विश्वास था। कांग्रेस सदा से उसे एक नीति मानती थी।

महायुद्ध प्रारंभ होने के दूसरे दिन गांधीजी ने सार्वजनिक रूप से बयान दिया कि वह ब्रिटिश सरकार को उलझन में नहीं डालेंगे। इंग्लैंड तथा उसके मित्र-राष्ट्रों का वह नैतिक समर्थन भी करेंगे। इससे आगे वह नहीं जा सकते थे। वह युद्ध संबंधी कार्रवाइयों में भाग नहीं ले सकते थे।

इसके विपरीत कांग्रेस युद्ध में सहायता देने को तैयार थी यदि उसकी रखी हुई शर्तें मंजूर कर ली जायें।

कांग्रेस कार्य-समिति ने १४ सितंबर १९३९ को घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसमें पोलैंड पर फासिस्ट आक्रमण की निंदा की गई और कहा गया कि "स्वतंत्र लोकतंत्री भारत आक्रमण की कार्रवाई के विरुद्ध तथा आर्थिक सहयोग के लिए अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों का खुशी से साथ देगा।"

इस घोषणा-पत्र की रचना करनेवाली चार दिन की चर्चाओं में गांधीजी विशेष रूप से निमंत्रित थे। जब यह स्वीकृत हो गया तो गांधीजी ने बताया कि इसका मसविदा जवाहरलाल नेहरू ने बनाया था। उन्होंने अपनी राय बतलाते हुए कहा— मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि यह सोचनेवाला मैं अकेला ही था कि अंग्रेजों को जो कुछ भी सहायता दी जाय वह बिना किसी शर्त के दी जाय। गांधीजी को यह जैसे-का-तैसा प्रस्ताव पसंद नहीं आया कि भारत तभी लड़ेगा जब तुम उसे स्वतंत्र कर दोगे। फिर भी उन्होंने देश से कहा कि इसे मान लिया जाय।

आलोचकों ने हल्ला मचाया कि गांधीजी ऐसा कैसे कर सकते हैं? जिस विचार का वह विरोध करते हैं, उसके समर्थन के लिए कैसे कह सकते हैं? गांधीजी ने

जवाब दिया—"यदि मैं इस कारण अपने अच्छे-से-अच्छे साथियों को छोड़ दूं कि अहिंसा के व्यापक प्रयोग में वह मेरे पीछे नहीं चल सकते तो मैं अहिंसा का हित-साधन नहीं कर पाऊंगा।

किसीने ताना दिया—"क्या आपने १९१८ से अबतक अपना इरादा बदल नहीं दिया ?

प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"लिखते समय मैं यह कभी नहीं सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी प्रस्तुत प्रश्न के ऊपर अपने पिछले वक्तव्यों पर दृढ़ रहना मेरा लक्ष्य नहीं है। मेरा लक्ष्य है कि किसी प्रस्तुत क्षण में सत्य जिस रूप में मेरे सामने आता है, उस पर दृढ़ रहना। परिणामस्वरूप मैं एक-के-बाद-दूसरे सत्य पर बढ़ता गया हूं।

गांधीजी अपने विचारों से टकरानेवाले घोषणा-पत्र की हिमायत से भी आगे बढ़ गये। २९ सितंबर को वाइसराय के साथ मुलाकात में वह इसके प्रवक्ता बनकर गये। १७ अक्तूबर को लार्ड लिनलिथगो ने उत्तर दिया—"इंग्लैंड अभी नहीं कह सकता कि वह किस उद्देश्य के लिए लड़ रहा है। स्वराज्य की ओर अधिक तेजी से बढ़ना भारत के लिए ठीक नहीं है। युद्ध के बाद औपनिवेशिक दर्जे की दिशा में परिवर्तन हो जायगा।

पांच दिन बाद कार्य-समिति ने इंग्लैंड को सहायता देने के विरुद्ध निर्णय किया। उसने प्रांतों के कांग्रेसी-मंत्रिमंडलों को भी त्याग-पत्र देने का आदेश दिया। गांधीजी ने देखा कि कांग्रेस उनके निकट आती जा रही है।

समय भारत की स्वाधीनता के लिए कार्य कर रहा था। गांधीजी ने कहा था—"एक भी गोली चलाये बिना ही हम अपने लक्ष्य के निकट पहुंचते जा रहे हैं।

फ्रांस ने हिटलर के आगे हथियार डाल दिये। भारत में आशा के स्थान पर घबराहट फैल गई। बैंकों पर दौड़ लग गई। गांधीजी ने कहा कि लोग गड़बड़ न फैलायें। वीरता के साथ उन्होंने भविष्यवाणी की—"इंग्लैंड मुश्किल से मरेगा और मरना भी पड़ा तो बहादुरी के साथ मरेगा। हम चाहे पराजय के समाचार सुनें परंतु हिम्मत हारने के समाचार नहीं सुनेंगे।

युद्ध-संबंध पर पुनर्विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। २१ जून १९४ को उसने स्पष्ट बयान दिया कि अहिंसा के मामले में वह गांधीजी के साथ पूरी तरह नहीं जा सकती।

गांधीजी ने स्वीकार किया—"इस परिणाम पर मुझे खुशी भी है और विषाद

भी। खुशी इसलिए कि मैं इस विच्छेद का आघात सह सका हूं और मुझे अकेला खड़ा रहने की शक्ति मिली है। विषाद इसलिए कि इतने वर्षों तक जिन लोगों को साथ लेकर चलने का मुझे गौरव मिला था उनको साथ लेकर चलने की सामर्थ्य अब मेरे शब्दों में नहीं प्रतीत होती है।

वाइसराय ने २१ जून को फिर गांधीजी को मुलाकात के लिए बुलाया। लार्ड लिनलिथगो गांधीजी के अमिट प्रभाव को पहचानते थे। उन्होंने सूचना दी कि इंग्लैंड भारतवासियों को भारत के शासन में अधिक विस्तृत हिस्सा देने को तैयार है।

जुलाई के प्रारम्भ में कार्य-समिति की बैठक इस प्रस्ताव को तौलने के लिए हुई। गांधीजी इसे बेकार समझते थे। उन्हें राजगोपालाचारी के जिलाफ विरोध का सामना करना पड़ा। राजगोपालाचारी ने वल्लभभाई पटेल को अपनी राय का बना लिया था। केवल सीमांत-गांधी गफ्फार खां गांधीजी का साथ दे रहे थे। राजाजी का प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

युद्ध के बीच विशुद्ध शांतिवाद की दूरदर्शिता को गांधीजी कांग्रेस के गले नहीं उतार पाये। सब मानते थे कि वह राजाजी के प्रस्ताव का अंत कर सकते थे। वास्तव में गांधीजी यदि जोर देकर कहते तो राजाजी शायद अपना प्रस्ताव वापस ले लेते। परन्तु यह जबरदस्ती मनवाना कहलाता और गांधीजी का व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में इतना अधिक विश्वास था कि वह अपनी सामर्थ्य का उपयोग करके लोगों को अपनी मर्जी के खिलाफ मत देने को या काम करने को मजबूर नहीं करना चाहते थे।

राजाजी का प्रस्ताव गांधीजी के मतभेद के बावजूद, ७ जुलाई को स्वीकार कर लिया गया। इसमें घोषणा की गई कि यदि भारत को पूर्ण स्वाधीनता तथा केंद्रीय भारतीय शासन दे दिये जायें तो "कांग्रेस देश की प्रतिरक्षा के कारगर संगठन के प्रयत्नों में अपनी पूरी ताकत लगा देगी।"

विन्स्टन चर्चिल इंग्लैंड के प्रधान मंत्री थे और देश को बहादुरी के साथ मुकाबले के लिए उत्प्रेरित कर रहे थे। पिछले वर्षों में उन्होंने भारत की स्वाधीनता के विरुद्ध अनेक वक्तव्य दिए थे। अब उनके हाथ में इसे रोकने की सामर्थ्य थी। तद नुसार ८ अगस्त को लिनलिथगो ने बयान दिया कि वह कुछ भारतवासियों को अपनी कार्यकारिणी कौंसिल में शामिल होने का निमंत्रण देंगे और एक युद्ध सलाहकार कौंसिल स्थापित करेंगे जिसकी बैठकें नियमित रूप से हुआ करेंगी।

विज्ञप्तियों में यह भी कहा कि ब्रिटिश सरकार अपनी मौजूदा जिम्मेवारियां ऐसी किसी भी भारतीय सरकार को सौंपने का विचार नहीं कर सकती जिसके अधिकार को भारती के बड़े तथा शक्तिशाली तत्व मानने को तैयार नहीं हैं। इसका अर्थ यह था कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की मर्जी के बिना कांग्रेस को भारत का शासन नहीं करने देगी।

कांग्रेस कार्य-समिति बेहद क्षोभित हुई और उसने ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाया कि उसने सहयोग के मित्रतापूर्ण तथा देश-भक्तिपूर्ण प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अल्पसंख्यकों के प्रश्न को भारत की प्रगति के मार्ग में दुर्गम रुकावट बना दिया।

चर्चिल की कृपा से कांग्रेस फिर गांधीजी के पास लौट आई।

गांधीजी ने वाइसराय से मिलने की इच्छा प्रकट की।

वाइसराय ने जबानी इन्कार किया फिर पत्र द्वारा इसकी पुष्टि की।

इस तरह दुत्कारे जाने तथा युद्ध का और भारत की लाचारी का विरोध करने से व्यग्र होकर गांधीजी ने उपवास का इरादा किया। परंतु महादेव देसाई के अनुरोध पर इरादा बदल दिया और इसके बदले में सविनय-अवज्ञा का निश्चय किया। परंतु इस बार उन्होंने सामूहिक सत्याग्रह नहीं शुरू किया। उन्होंने सत्याग्रह का एक हल्का और सांकेतिक रूप अपनाया जिससे युद्ध के प्रयत्नों में बाधा न पड़े। उन्होंने चुने हुए व्यक्तियों को आदेश दिया कि युद्ध-विरोधी प्रचार पर लगाये गये सरकारी प्रतिबंध को तोड़ें। सबसे पहले उन्होंने विनोबा भावे को चुना। विनोबा ने युद्ध-विरोधी प्रचार किया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन महीने की सजा दे दी गई।

बाद में नेहरू और पटेल चुने गये और उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया।

यह व्यक्तिगत सत्याग्रह १९४१ के अंत तक करीब एक साल चला। जनता में इससे उत्साह पैदा नहीं हुआ। लोग जेल जाने से ऊब गये थे।

दिसंबर १९४१ में ब्रिटिश सरकार ने कार्य-समिति के गिरफ्तार सदस्यों को छोड़ दिया। द्वितीय महायुद्ध में खतरनाक स्थिति पैदा हो गई थी।

७ दिसंबर को जापान ने पर्ल बंदरगाह पर धावा बोला। दूसरे दिन जापानी सेना ने थाईलैंड और स्याम पर कब्जा कर लिया और ब्रिटिश-मलाया में जा उतरी। चौबीस घंटे बाद जापानी नौ-सेना ने इंग्लैंड के दो जंगी जहाज डुबा दिये और प्रशांत महासागर में इंग्लैंड की नौ-शक्ति को समाप्त कर दिया।

युद्ध भारत के समीप आ रहा था। इस स्थिति में कांग्रेस में गांधीवादी अहिंसक असहयोगियों तथा राष्ट्रीय सरकार के बदले में युद्ध-प्रयत्नों को सहायता देने के इच्छुकों के बीच पुराना मतभेद बाहर आ गया। अतः गांधीजी ने एक बार फिर कांग्रेस के नेतृत्व से हाथ खींच लिया।

युद्ध के प्रति भारतीय जनता की उत्साहहीनता से अमरीका के लोग कुछ घबराये। चूंकि संयुक्त राज्य खुद इंग्लैंड का उपनिवेश रह चुका था इसलिए प्रचार के कुहरे के बावजूद भी वह भारत की आकांक्षाओं को समझ रहा था। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने कर्नल लुई जॉन्सन को अपने व्यक्तिगत दूत के रूप से भारत भेजा। यह एक असाधारण बात थी और क्योंकि भारत प्रभुत्व-संपन्न देश नहीं था इसलिए यह चीज ब्रिटिश सरकार को अमरीका की चिंता और भी अधिक महसूस करानेवाली थी। लंदन में संयुक्त राज्य के राजदूत जॉन जी विनांट प्रधान मंत्री चर्चिल को सार्वजनिक रूप से यह बयान देने से नहीं रोक सके कि अटलांटिक-घोषणा का स्वराज्यवाला उपक्रम भारत के लिए लागू नहीं था। व्हाइट हाउस में आमने-सामने तथा अटलांटिक महासागर के दूसरे छोर से टेलीफोन पर, रूज़वेल्ट ने भारत के विषय में चर्चिल से चर्चाएं कीं और उनसे अनुरोध किया कि भारतवासियों के सामने कोई स्वीकार-योग्य प्रस्ताव रखें। चर्चिल ने इस अंकुसबाजी को बिल्कुल पसंद नहीं किया।

इंग्लैंड का मजदूर-दल युद्धकालीन संयुक्त मंत्रिमंडल में शामिल था। इसके अनेक सदस्य भारत की स्वतंत्रता के हामी थे। मंत्रिमंडल की मंत्रणाओं में मजदूर दली मंत्रीगण इस मत को व्यक्त करते थे।

सब ओर से दबाव पड़ने पर चर्चिल सर स्टैफर्ड क्रिप्स को एक प्रस्ताव का मसविदा लेकर दिल्ली भेजने के लिए राजी हो गये। परन्तु जब क्रिप्स भारत के लिए रवाना हुए, तब युद्ध की संभावनाओं के बारे में चर्चिल को न तो निराशा थी और न पराजय की आशंका।

द्वितीय महायुद्ध शुरू होने पर सर स्टैफर्ड ने अपनी कमाईवाली वकालत छोड़ दी थी और १९३९ में सारे संसार की यात्रा यह पता लगाने के लिए की थी कि लोगों के क्या विचार हैं। वह भारत में भी अठारह दिन तक रहे थे तथा जिन्ना लिनलिथगो ठाकुर, अंबेडकर जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी से मिले थे।

२२ मार्च १९४२ को क्रिप्स दिल्ली आ पहुंचे और उसी दिन ब्रिटिश अधिकारियों के साथ परामर्श में लग गये। २५ मार्च को मौलाना अबुलकलाम आजाद

क्रिप्स से मिलने गये। इसके साथ ही भारतीय प्रतिनिधियों से बातचीत शुरू हो गई।

गांधीजी सेवाग्राम में थे। उन्हें क्रिप्स का तार मिला जिसमें नम्रतापूर्ण भाषा में उनसे दिल्ली आने के लिए कहा गया था। जून १९४२ में जब मैं सेवाग्राम में गांधीजी से मिला था उन्होंने मुझे बताया— 'मैं आना नहीं चाहता था परंतु इस लिए चला गया कि शायद इससे कुछ लाभ हो।'

२७ मार्च को २.१५ बजे गांधीजी क्रिप्स के यहां पहुंचे और ४-२१ तक उनके साथ रहे। सर स्टैफर्ड ने गांधीजी को ब्रिटिश सरकार का अभी तक अप्रकाशित मसविदा बतलाया। गांधीजी ने सेवाग्राम में मुझसे कहा था 'मसविदे को पढ़ने के बाद मैंने क्रिप्स से कहा— 'यदि आपके पास देने को यही है तो आप आये ही क्यों? यदि भारत के लिए आपका समूचा प्रस्ताव यही है तो मैं आपको सलाह दूंगा कि आप अगले हवाई जहाज से घर लौट जायें।

'मैं इस पर विचार करूंगा'' क्रिप्स ने उत्तर दिया।

क्रिप्स गये नहीं। उन्होंने बातचीत चालू रखी। गांधीजी सेवाग्राम लौट गये। पहली बातचीत के बाद वह फिर क्रिप्स से नहीं मिले न बात की।

बातचीत ९ अप्रैल तक चलती रही जबकि कांग्रेस ने क्रिप्स के प्रस्ताव को अंतिम तौर पर ठुकरा दिया। क्रिप्स मिशन असफल रहा।

सरकारी ब्रिटिश सूत्रों ने क्रिप्स-मिशन की असफलता का भार गांधीजी के [illegible] को दिया। दूसरों ने क्रिप्स और चर्चिल का कसूर बतलाया। नेहरू ने कहा—"दिल्ली से चले जाने के बाद गांधीजी ने किसी तरह की सलाह नहीं दी और यह कल्पना बिल्कुल गलत है कि क्रिप्स के प्रस्ताव को उनके दबाव के कारण ठुकराया गया।

१९४६ में गांधीजी ने मुझसे कहा था— 'अंग्रेजों का कहना है कि दिल्ली से जाने के बाद मैंने बातचीत पर असर डाला। परंतु यह झूठ है।

मैंने उन्हें बताया—"अंग्रेजों ने मुझसे कहा है कि आपने सेवाग्राम से दिल्ली को फोन किया और कांग्रेस को हिदायत दी कि क्रिप्स के प्रस्ताव को ठुकरा दें। वे निश्चयपूर्वक कहते हैं कि उस बातचीत का उनके पास लिखित प्रमाण है।

गांधीजी ने घृणा से उत्तर दिया—"यह सब झूठ का जाल है। यदि उनके पास टेलीफोन की बातचीत का लिखित प्रमाण है तो पेश करें।

१ मार्च को चर्चिल द्वारा क्रिप्स के भारत भेजे जाने की घोषणा से एक दिन

पूर्व रूजवेल्ट ने चर्चिल को भारत के बारे में एक लंबा तार-संदेश भेजा। राष्ट्रपति ने एक काम चलाऊ सरकार का सुझाव दिया जो पांच या छः वर्ष तक कार्य करे। साथ ही रूजवेल्ट ने चर्चिल से यह भी कह दिया कि 'भारत के मामले में मेरा कोई सरोकार नहीं है और "ईश्वर के लिए मुझे इसमें मत डालो हालांकि मैं सहायता अवश्य करना चाहता हूं।"

रॉबर्ट ई० शेरवुड जिसने इस करीते का जिक्र अपनी पुस्तक 'रूजवेल्ट एंड हॉपकिंस' में किया है लिखता है—"तार-संदेश के जिस भाग से चर्चिल सहमत हुए, वह शायद केवल यह था जिसमें रूजवेल्ट ने माना था कि 'मेरा सरोकार नहीं है। हॉपकिंस ने बहुत दिन बाद बतलाया था कि उनके ख्याल से सारे युद्ध के दौरान में राष्ट्रपति ने जो भी सुझाव प्रधान मंत्री को भेजे उनमें से भारतीय समस्या के समाधान के बारे में प्राप्त सुझावों पर प्रधान मंत्री को जितना क्रोध आया उतना अन्य किसी पर नहीं।

१२ अप्रैल १६४२ को हुई हॉपकिंस को जो उस समय प्रधान-मंत्री के देहाती निवास-स्थान चेकर्स में थे रूजवेल्ट का तार मिला। उसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि क्रिप्स-वार्ता को भंग होने से रोकने का भरसक प्रयत्न करें। राष्ट्रपति ने चर्चिल को भी तार भेजा जिसमें कहा गया था

"मुझे खेद है कि आपके संदेश में व्यक्त किये गये आपके इस दृष्टि बिंदु से मैं सहमत नहीं हो सकता कि अमरीका की जनता की राय में वार्ताएं व्यापक मोटी-मोटी बातों पर भंग हो गई हैं। यहां फैला हुआ विश्वास इसके बिल्कुल विपरीत है। लगभग सभी लोग महसूस करते हैं कि गतिरोध का कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्र को स्वशासन का अधिकार नहीं देना चाहती हालांकि भारतवासी सैनिक तथा नौ-सैनिक प्रतिरक्षा का सामरिक नियंत्रण उपयुक्त ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में देने को तैयार हैं। अमरीका का जनमत यह समझने में असमर्थ है कि जब ब्रिटिश सरकार युद्ध के बाद भारत के अंगों को ब्रिटिश साम्राज्य से विलग होने की अनुमति देने को तैयार है, तो युद्ध के दौरान में वह वैसी स्व-शासन जैसी चीज का उपभोग करने की अनुमति क्यों नहीं देना चाहती ?"

क्रिप्स व्यग्रता के साथ समझौते का प्रयत्न कर रहे थे। जब ब्रिटिश सरकार की घोषणा का मसविदा ठुकरा दिया गया तो उन्होंने कांग्रेस के सामने नया प्रस्ताव रखा। इस नये प्रस्ताव से समझौता काफी निकट आ गया। परंतु हॉपकिंस के कथनानुसार "आकस्मात् इस सारे मामले से झल्ला उठे। उन्होंने

चर्चिल को तार दिया। चर्चिल ने क्रिप्स को आदेश दिया कि नया अनधिकृत प्रस्ताव वापस ले लें और इंग्लैंड वापस आ जायं।

हॉलिंग्स के शब्दों में "भारत ऐसा क्षेत्र था जहां रूजवेल्ट तथा चर्चिल के विचार कभी नहीं मिल सकते थे।

यह भी स्पष्ट था कि गांधीजी और चर्चिल के विचार भी कभी नहीं मिल सकते।

चर्चिल तथा गांधीजी एक बात में समान थे कि प्रत्येक ने अपना जीवन केवल एक-एक उद्देश्य के लिए अर्पण कर दिया था। महापुरुष सुंदर मूर्ति की तरह एक ही टुकड़े का बना हुआ होता है। चर्चिल को निमग्न करनेवाला हेतु था इंग्लैंड को पहले दर्जे की शक्ति बनाये रखना। वह अतीत से बंधे हुए थे। इंग्लैंड का अतीत वैभव चर्चिल का भगवान था। वह भारत को अपने देश की महानता के साथ संबद्ध मानते थे।

चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध ब्रिटेन की विरासत को कायम रखने के लिए लड़ा था। क्या वह एक अर्द्ध-नग्न फकीर को यह विरासत छीन लेने देते? अगर चर्चिल का बस चलता तो गांधीजी वार्ता या संधि के लिए वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर कदम तक न रखने पाते।

चर्चिल नेपोलियन जैसे हैं लेकिन कवि-हृदय। राजनीतिक सत्ता उनके लिए कविता है। गांधीजी ऐसे संत थे जिनके लिए राजनीतिक सत्ता त्याज्य वस्तु थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ चर्चिल अधिक अनुदार होते गये गांधीजी अधिक क्रांतिकारी होते गये। चर्चिल सामाजिक परंपराओं से प्रेम करते थे। गांधीजी ने सामाजिक-भेद नष्ट कर दिये थे। चर्चिल हर श्रेणी के लोगों से मिलते थे परंतु रहते थे अपनी ही श्रेणी में। गांधीजी हर एक के साथ रहते थे। गांधीजी के लिए नीचे-से-नीचा भारतवासी हरिजन था। चर्चिल के लिए सारे भारतवासी एक सिंहासन के पाये थे। इंग्लैंड की स्वतंत्रता के लिए वह अपनी जान तक निछावर कर देते परंतु भारत की स्वतंत्रता चाहनेवालों के वह विरोधी थे।

२०

गांधीजी के साथ एक सप्ताह

कितना भिन्न देश ! मई १९४२ में भारत के बारे में सबसे पहली छाप मेरे दिल पर यह पड़ी और दो महीने के निवास से यह छाप और भी गहरी हो गई। धनवान भारतवासी भिन्न थे गरीब भारतवासी भिन्न थे और अंग्रेज भिन्न थे।

यह अनुभव करने के लिए कि भारत के लोगों में कैसी नर्क जैसी निर्धनता है किसीको इस देश में अधिक दिन रहने की आवश्यकता नहीं होती। बंबई में डा० अंबेडकर के साथ जो अस्वास्थ्यकर झोंपड़ियां मैंने देखीं ऐसे स्थान पर अमरीका तथा यूरोप के किसान अपने जानवरों को रखना भी बुरा समझेंगे। गांवों में दिखाई पड़नेवाली किसानों की वस्त्रहीनता के मुकाबले में गांधीजी के पास भी पूरे कपड़े थे। भारतवासियों की बहुत बड़ी संख्या हमेशा वास्तव में हमेशा भूखी रहती है।

ब्रिटिश आंकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष ढाई करोड़ भारतवासी मलेरिया के शिकार होते हैं और गिने-चुने लोगों को जरा-सी कुनैन मिल पाती है। हर साल पांच लाख भारतवासी क्षय से मर जाते हैं।

बीमारियों तथा मृत्युओं के बावजूद भारत की जनसंख्या प्रति वर्ष पचास लाख बढ़ जाती है। राष्ट्र के सामने सबसे बड़ी समस्या यही है। १९२१ में भारत की आबादी ३१ करोड़ लाख थी १९३१ में ३३ करोड़ ८ लाख और १९४१ में ३८ करोड़ ८ लाख। इन्हीं बीस वर्षों में खेतिहर भूमि का क्षेत्रफल लगभग स्थिर रहा और उद्योगों में भी कोई उल्लेख योग्य बढ़ोतरी नहीं हुई। जितना निर्धन देश उतनी ही अधिक जन्म-संख्या। जितनी अधिक जनसंख्या उतना ही देश अधिक निर्धन।

भारत में रहनेवाले अंग्रेज अपनी कारगुजारियों पर जोर देते थे। किंतु वे विनाशकारी प्रभावों से भी इन्कार नहीं करते थे। वे इसके लिए हिंदू धर्म को तथा मुसलमानों के पिछड़ेपन को दोषी ठहराते थे। भारतवासी इंग्लैंड को दोष देते थे। यह ऐसा वातावरण था जिसमें अंग्रेजों के लिए कार्य तथा जीवन उत्तरोत्तर असंतोषप्रद होते जा रहे थे।

जिन अंग्रेजों के परिवारों ने भारत में सौ वर्ष से अधिक तक अपना जीवन सफल बनाया था वे जानते थे कि यहां उनका कुछ भविष्य नहीं है। भारत उन्हें

नहीं चाहता था और वे इसे अनुभव करते थे और उदास थे। वाइसराय के निजी सचिव सर गिल्बर्ट लेथवेट और प्रधान सेनापति वेवेल के सहकारी मेजर जनरल मोल्सवर्थ पैगेल की बचत करने के लिए भारत की कड़ी धूप में साइकिलों पर दफ्तर जाते थे हालांकि उनके पास मोटरें भी थीं और ड्राइवर भी।

अनेक अंग्रेज भले आदमी थे परंतु भारत पुरे भारतवासियों का शासन अच्छा समझता था। भारत पर उनकी मर्जी के खिलाफ शासन करना अब 'दिल्लगी' नहीं था। अंग्रेज अधिकारी अब भारत से उतने ही ऊब गये थे जितना भारत उनसे। गांधीजी की बीस वर्ष की अहिंसा ने साम्राज्य के भविष्य में उनका विश्वास नष्ट कर दिया था।

कम्युनिस्टों के अलावा भारत का कोई भी दल या जमात युद्ध का समर्थन नहीं कर रहा था। जून १९४१ में रूस पर हिटलर के धावे के बाद कम्युनिस्ट लोग ब्रिटेन के पक्ष में हो गये और भारत में साम्राज्यवादी अंग्रेज इनको सहायता देने लगे परन्तु यह अप्राकृतिक गठबंधन उन्हें पसंद नहीं था।

मैंने बंबई में नेहरू को एक लाख की भीड़ में भाषण देते सुना। बादामी चेहरों और सफेद कपड़ों के उस विशाल समुद्र में कम्युनिस्टों ने इक्का दुक्का लोगों का एक द्वीप बना रखा था। उन्होंने एक स्वर से पुकारा—"यह जनता का युद्ध है।"

नेहरू ने चिल्लाकर कहा—"अगर तुम इसे जनता का युद्ध समझते हो तो जाकर जनता से पूछो।" इस बात ने तथा जनता की विरोधी प्रतिक्रिया ने उनके हल्ले को शांत कर दिया। वे जानते थे कि नेहरू सच कह रहा है और अंग्रेज भी इसे जानते थे।

"मैं तलवार लेकर जापान से लड़ूंगा" नेहरू ने घोषणा की—"परंतु स्वतंत्र होकर ही मैं ऐसा कर सकता हूं।"

वाइसराय की कौंसिल के गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने मुझसे कहा था—"युद्ध समाप्त होने के दो वर्ष बाद हम यहां से चले जायंगे।" मैक्सवेल के अधीन पुलिस तथा आंतरिक व्यवस्था थी और भारतवासी उनसे बहुत चिढ़े हुए थे। परन्तु वह किसी भ्रांति में नहीं थे क्योंकि उनके लिए साम्राज्य दैनिक सिरदर्द था जबकि चर्चिल के लिए वह एक रोमानी चीज था।

वाइसराय ने मुझसे कहा—"हम भारत में ठहरनेवाले नहीं हैं। अलबत्ता कांग्रेस इस पर विश्वास नहीं करती परन्तु हम यहां नहीं ठहरेंगे। हम अपने प्रस्थान की तैयारी कर रहे हैं।"

जब मैंने ये विचार भारतवासियों को बतलाये तो उन्होंने इन पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने कटुता के साथ दलील दी कि वर्षित तथा नई दिल्ली में और प्रांतों में अनेक छोटे वर्षित या तो स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकायेंगे या देश का अंग-विच्छेद करके उसे भ्रष्ट कर देंगे।

स्वाधीनता निकट थी परन्तु वर्तमान इतना अंधकारमय था कि भविष्य किसी को भी नहीं दिखाई देता था। भारत में इतिहास इतने लंबे समय से स्थिर था कि कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि वह कितनी तेजी से आगे बढ़नेवाला है। यह गतिहीनता भारतवासियों को नष्ट कर रही थी उनमें मायूसी की भावना पैदा हो रही थी।

भारत में तैनात एक अमरीकी सेनापति ने कहा था— "अंग्रेज लोग बाल्टी भर पानी में तेल की एक बूंद के समान हैं।"

गांधीजी के बारे में बात करते हुए वाइसराय ने कहा—"इस बारे में किसी भ्रम में मत रहो यह बूढ़ा भारत में सबसे बड़ी चीज है। इसने मेरे साथ अच्छा सलूक किया है। भ्रम में मत रहो। इसका बड़ा भारी प्रभाव है।

लार्ड लिनलिथगो ने बतलाया कि गांधीजी किसी रूप में सविनय अवज्ञा आंदोलन का विचार कर रहे हैं। मुझे यहां छः वर्ष हो गये हैं और मैंने संयम सीख लिया है। मैं शाम को देर तक बैठा रिपोर्टों का अध्ययन करता हूं और उन्हें सावधानी से हृदयंगम करता हूं। मैं जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाऊंगा परंतु यदि मुझे लगा कि गांधीजी युद्ध प्रयत्न में बाधा डाल रहे हैं तो मुझे उन्हें काबू में लाना होगा।"

मैंने कहा कि गांधीजी यदि जेल में मर गये तो बुरा होगा।

वाइसराय ने सहमति जतलाते हुए कहा—"मैं जानता हूं कि वह बूढ़े आदमी हैं और इस बूढ़े आदमी को आप जबरदस्ती खाना नहीं खिला सकते। मुझे आशा है कि इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी परंतु मेरे ऊपर गंभीर जिम्मेदारी है।

नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के बारे में गांधीजी से परामर्श करने सेवाग्राम जा रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मेरी मुलाकात की व्यवस्था कर दें। बहुत जल्दी मुझे तार मिला जिसमें लिखा था— 'स्वागत! महादेव देसाई।

मैं वर्धा स्टेशन पर गाड़ी से उतरा जहां मुझे गांधीजी का संदेश-वाहक मिला। रात को मैं कांग्रेस-अतिथि-गृह की छत पर सोया। सुबह मैंने गांधीजी के

दांत-चिकित्सक के साथ सेवाग्राम के लिए तांगा किया।

तांगा गांव के पास रुक गया। वहां गांधीजी खड़े थे। उन्होंने अंग्रेजी लहजे में कहा—"मिस्टर फिशर!" और हम दोनों ने हाथ मिलाये। वह मुझे एक बेंच के पास ले गये। उन्होंने बेंच पर बैठकर अपनी हथेली उस पर टिका दी और मुझसे कहा—'बैठ जाओ!' जिस तरह वह पहले बेंच पर बैठे और जिस तरह उन्होंने मुझे बेंच पर बैठने का हाथ से इशारा किया उससे लगा मानो वह कह रहे हों—'यह मेरा घर है आ जाओ!' मैंने तुरंत भरोसा अनुभव किया।

गांधीजी के साथ मेरी रोज एक घंटा मुलाकात होती थी। भोजन के समय भी बातचीत का मौका मिलता था। इसके अलावा दिन में एक या दो बार मैं उनके साथ घूमने भी जाता था।

गांधीजी का शरीर सुगठित था, सीने के स्वस्थ पुट्ठे उभरे हुए, पतली कमर और लंबी पतली मजबूत टांगें जो घुटनों से धोती तक नंगी थीं। उनके घुटनों की गांठें निकली हुई थीं और उनकी हड्डियां चौड़ी तथा मजबूत थीं। उनके हाथ बड़े-बड़े तथा अंगुलियां लंबी और दृढ़ थीं। उनकी चमड़ी कोमल, चिकनी और स्वस्थ थी। वह छिहत्तर वर्ष के थे। उनकी अंगुलियों के नाखून, हाथ-पांव तथा शरीर निर्दोष थे। उनकी धोती, धूप में कभी-कभी पहना जानेवाला टोप और सिर पर रखा हुआ गीला अंगोछा सफेद झक थे।

उनका शरीर बूढ़ा नहीं मालूम देता था। उनको देखकर यह नहीं लगता था कि वह बूढ़े हैं। उनके बुढ़ापे का पता उनके सिर से लगता था।

उनकी शांत विश्वासभरी आंखों के सिवा उनके चेहरे की आकृति भद्दी थी। विश्राम की अवस्था में उनका चेहरा भद्दा प्रतीत होता, परंतु वह कभी विश्राम की अवस्था में होता ही नहीं था। चाहे वह बात करते हों या सुनते हों, उनका चेहरा सजीव बना रहता था और उस पर तुरंत प्रतिक्रिया होती थी। बात करते समय वह प्रभावशाली ढंग से हाथों द्वारा भाव-प्रदर्शन करते थे। उनके हाथ बड़े सुंदर थे।

लॉयड जार्ज एक महान पुरुष जैसे दिखाई देते थे। चर्चिल और फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट का बड़प्पन और विशेषता भी नजर पड़े बिना नहीं रहते। गांधीजी में (और लेनिन में) यह बात नहीं थी। बाहर से उनमें कोई निरालापन नहीं था। उनका व्यक्तित्व जो कुछ भी वह थे उसमें, जो कुछ उन्होंने किया उसमें तथा जो कुछ वह कहते थे उसमें था। गांधीजी के सामने मैंने कोई भय और झिझक नहीं

महसूस की। मैंने महसूस किया कि मैं एक अत्यंत मृदु, सौम्य नैतकल्लुफ, तनाव रहित प्रफुल्ल बुद्धिमान और अत्यंत सभ्य व्यक्ति के सामने हूं। मैंने उनके व्यक्तित्व का चमत्कार भी महसूस किया। अपने व्यक्तित्व के बल से ही उन्होंने बिना किसी संगठन या सरकार के सहारे अपना प्रभाव एक विच्छिन्न देश के कोने-कोने में और वास्तव में एक विभाजित संसार के कोने-कोने में विकीर्ण कर दिया था। सीधे संपर्क क्रियाशीलता उदाहरण तथा संसार भर में उपेक्षित कुछ सरल सिद्धांतों के प्रति वफादारी इनके द्वारा वह जनता के पास पहुंचते थे। उनके सिद्धांत थे अहिंसा सत्य तथा साध्य के ऊपर साधन की श्रेष्ठता।

आधुनिक इतिहास के नामी व्यक्ति चर्चिल रूजवेल्ट, लॉयड जार्ज स्तालिन हिटलर, मुसोलिनी विस्मार्क कैसर, लिंकन नैपोलियन मैटरनिख तालेरां आदि के हाथ में राज्यों की सत्ता थी। लोगों के मानस पर प्रभाव डालने में गांधीजी के मुकाबले का एकमात्र गैर-सरकारी व्यक्ति कार्ल मार्क्स समझा जा सकता है। व्यक्तियों की अंतरात्मा पर गांधीजी के समान जबरदस्त असर डालनेवाले आदमियों की तलाश में हमको सदियों पीछे जाना पड़ेगा। पिछले युग में ऐसे लोग धर्मात्मा हुए हैं। गांधीजी ने बतला दिया कि ईसा तथा कुछ ईसाई पादरियों और बुद्ध का और कुछ इबरानी पैगंबरों और यूनानी ज्ञानियों का आध्यात्म आधुनिक समय में तथा आधुनिक राजनीति पर प्रयुक्त हो सकता है। गांधीजी ईश्वर या धर्म के बारे में उपदेश नहीं देते थे वह तो स्वयं जीते-जागते धर्मोपदेश देते थे। जिस संसार में सत्ता धन तथा अहंकार के क्षयकारी प्रभाव के सामने टिकनेवाले नहीं के बराबर हैं उसमें गांधीजी एक उत्तम पुरुष थे। बिजली रेडियो नल या टेलीफोन से वंचित एक छोटे-से भारतीय गांव की कुटिया में वह जमीन पर आधे से अधिक नंगे बैठे हुए थे। यह स्थिति मदाश्रित मन पौपमौला या आत्मान को बढ़ाने में जरा भी सहायक नहीं हो सकती थी। हर दृष्टि से वह धरती के निकट थे। वह जानते थे कि जीवन का अर्थ है जीवन की छोटी-छोटी बातें।

"अपने जूते और टोप पहन लो।" गांधीजी ने कहा। "इन दोनों चीजों के बिना यहां काम नहीं चल सकता। देखना कहीं लू न लग जाय।" तापमान ११ हो रहा था और झोंपड़ियों के सिवा जो भट्टी की तरह जल रही थी कहीं छाया नहीं थी। "चले आओ।" गांधीजी ने नकली आज्ञा के मैत्रीपूर्ण स्वर में कहा। मैं उनके पीछे-पीछे भोजन के स्थान पर गया जो तीन तरफ चटाइयों से ढका हुआ था और एक तरफ खुला था जहां से उसमें प्रवेश करते थे।

गांधीजी दरवाजे के पास एक गद्दी पर बैठ गये। उनके बाईं ओर कस्तूरबा और दाहिनी ओर मैं बैठा था। भोजन करनेवालों की संख्या लगभग तीस थी। स्त्रियां अलग बैठी थीं। मेरे सामने तीन से आठ साल तक के कुछ बच्चे बैठे थे। हरएक के नीचे पतली चटाई थी और सामने पीतल की एक-एक थाली जमीन पर रखी हुई थी। आश्रमवासी स्त्रियां तथा पुरुष नंगे पांव बिना आवाज किये थालियों में भोजन परोस रहे थे। गांधीजी की टांगों के पास कुछ बरतन और कटोरे रखे हुए थे। उन्होंने मुझे उबली भाजी से भरा कांसे का कटोरा दिया जिसमें मेरे खयाल से मुझे कटा हुआ पालक और कुम्हड़े के कुछ टुकड़े नजर आये। एक स्त्री ने मेरी थाली में कुछ नमक डाला और दूसरी ने एक गर्म पानी का गिलास और एक दूध का गिलास दिया। इसके बाद वह दो छिलकेदार उबले हुए आलू और कुछ चपातियां लेकर आई। गांधीजी ने अपने सामने रखे हुए बरतन में से एक पतली करारी रोटी निकालकर मुझे दी।

घंटे की ध्वनि हुई। सफेद धोतियां पहने एक हृष्ट-पुष्ट आदमी ने परोसना बंद कर दिया और खड़े होकर आंखें आधी बंद करके ऊंचे स्वर से आलाप शुरू किया जिसका गांधीजी-सहित सब लोगों ने साथ दिया। प्रार्थना "शांति-शांति-शांति" के साथ समाप्त हुई। सबने रोटी को उबली भाजी में मिलाकर अंगुलियों से खाना शुरू किया। मुझे एक छोटा चम्मच और रोटी के लिए मक्खन दिया गया।

"तुम रूस में चौदह वर्ष रहे हो," गांधीजी ने सबसे पहली राजनैतिक बात मुझसे यह की—"स्टालिन के बारे में तुम्हारी क्या राय है ?"

मुझे बहुत गरमी महसूस हो रही थी। मेरे हाथ सने हुए थे और बैठने से मेरे टखने और टांगें सुन्न हो गये थे। इसलिए मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया—"बहुत काबिल और बहुत क्रूर।"

"क्या हिटलर जैसा क्रूर ?" उन्होंने पूछा।

"उससे कम नहीं।"

कुछ ठहरकर वह मेरी तरफ मुड़े और बोले—"क्या वायसराय से मिल चुके हो ?"

मैंने बतलाया कि मिल चुका हूं, परन्तु गांधीजी ने इस विषय को वहीं छोड़ दिया।

दोपहर का भोजन ग्यारह बजे और शाम का सूर्यास्त से पहले होता था।

सुबह खुरशेद नौरोजी मेरा नाश्ता लेकर आईं—चाय बिस्कुट या शहद और मक्खन के साथ डबल रोटी और आम।

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने मुझे एक बड़ा चम्मच भाजी खाने के लिए दिया। अपने बरतन में से उन्होंने एक उबला प्याज मुझे देने को निकाला। मैंने बदले में कच्चा प्याज मांगा। भोजन की बेस्वाद चीजों से इसने राहत दी।

तीसरे दिन दोपहर के भोजन के समय गांधीजी ने कहा—"फिशर, अपना कटोरा मुझे दो। मैं तुम्हें थोड़ी-सी भाजियां दूंगा।"

मैंने कहा कि पालक और कद्दू मैं दो दिन में चार बार खा चुका हूं। और अधिक खाने की इच्छा नहीं है।

"तुम्हें भाजियां पसंद नहीं है?" उन्होंने आलोचना के ढंग से कहा।

"लगातार तीन दिन तक इन भाजियों का स्वाद मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"अच्छा" वह बोले—"इसमें खूब नमक और खूब नीबू मिला लो।"

"आप चाहते हैं कि मैं स्वाद को मार दूं?" मैंने उनकी बात का अर्थ लगाया।

"नहीं" उन्होंने हंसकर जवाब दिया—"स्वाद को बढ़िया बना लो।"

"आप इतने अहिंसक हैं कि स्वाद को भी नहीं मारना चाहते हैं?" मैंने कहा।

"यदि लोग इसी चीज को मार दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।" वह बोले।

मैंने अपने चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछा। "अगली बार जब मैं भारत में आऊं" गांधीजी मुह चला रहे थे और ऐसा लगता था कि मेरी बात सुन नहीं रहे हैं। मैं चुप हो गया।

"हां" गांधीजी ने कहा—"अगली बार तुम भारत में आओ तब "

"आप या तो सेवाग्राम एयरकंडीशन करा लें या वाइसराय के भवन में रहें।"

"बहुत अच्छा" गांधीजी ने रजामंदी दिखाई।

गांधीजी मजाक पसंद करते थे। एक दिन तीसरे पहर जब मैं दैनिक मुलाकात के लिए उनकी कुटिया में गया तो वह वहां नहीं थे। आते ही वह बिस्तर पर लेट गये। प्रश्न पूछने का संकेत करते हुए वह बोले—"मैं लेटे-लेटे ही तुम्हारी चोटें सम्हालूंगा।" एक मुसलमान स्त्री ने उनके पेट पर मिट्टी की पट्टी चढ़ाई। "इसके

द्वारा अपने भविष्य से मेरा संपर्क हो जाता है।" वह कहने लगे। मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"मेरा खयाल है कि इसका व्यंग तुम नहीं समझे।" वह बोले।

मैंने कहा—"व्यंग तो मैं समझ गया, लेकिन मेरा खयाल है कि आप अभी इतने बूढ़े नहीं हुए हैं कि मिट्टी में मिल जाने का विचार करें।"

"क्यों नहीं?" उन्होंने कहा—"आखिर तुमको और मुझको और सबको और कुछ को तो बरसों में, लेकिन सबको देर-सबेर, मिट्टी में मिलना है।"

एक अन्य अवसर पर उन्होंने वह बात दोहराई, जो लंदन में उन्होंने बाई सैकी से कही थी। उन्होंने कहा था—"यदि मैंने अपनी परवाह न की होती तो क्या आप समझते हैं कि मैं इस वृद्धावस्था तक पहुंच पाता? यह मेरा एक दोष है।"

मैंने हिम्मत करके कहा—"मैं तो समझता था कि आप निर्दोष हैं।"

वह हंसने लगे और मुलाकात के समय अक्सर पास बैठनेवाले आठ-दस आश्रमवासी भी हंस पड़े। "नहीं," गांधीजी ने जोर देकर कहा—"मुझमें बहुत दोष हैं। यहां से जाने के पहले ही तुम्हें मेरे सैकड़ों दोषों का पता लग जायगा और अगर न लगे, तो उन्हें देखने में मैं तुम्हारी मदद करूंगा।"

एक घंटे की मुलाकात शुरू होने से पहले गांधीजी कुटिया में मेरे लिए अक्सर जरा ठंडी जगह तलाश करते थे। फिर मुस्करा कर कहते—"अच्छा! अब शुरू करो।" समय का उन्हें इतना अचूक अंदाज था कि एक घंटा बीतने को होते ही वह अपनी घड़ी पर नजर डालते और कहते—"तुम्हारा घंटा पूरा हो गया।"

एक दिन जब मैं बातचीत के बाद कुटिया से रवाना हो रहा था, वह कहने लगे—"जाओ और टब में बैठ जाओ।" धूप में मेहमान-घर तक जाने में गरमी से मेरा दिमाग घूम गया और मैंने निश्चय किया कि टब में बैठने का विचार बहुत अच्छा है।

उस दिन गांधीजी के साथ, आश्रम में दूसरों के साथ तथा दो दिन के लिए आये हुए नेहरू के साथ अपनी बातचीतों का पूरा ब्यौरा टाइप करने का काम सबसे कठिन परीक्षा थी। पांच मिनट में ही मैं थक गया और पसीने से नहा गया। गांधीजी ने टब में बैठने का जो सुझाव दिया था, उससे प्रेरित होकर मैंने पानी से भरे टब में लकड़ी का छोटा-सा बोर्ड रखा और उस पर तह किया हुआ तौलिया लगाया। फिर एक बड़ा बोर्ड टब के बाहर रखकर उस पर अपना छोटा टाइपराइटर जमाया। यह तरकीब करने के बाद मैं टबवाले कोने पर बैठ गया और

टाइप करता गया। जरा-जरा देर बाद जब मुझे पसीना आता तो मैं टब में से गिलास भर-भरकर अपनी गर्दन, पीठ और टाँगों पर पानी उंडेल लेता। इस तरकीब से मैं बिना थकावट महसूस किये घंटे भर तक टाइप कर सका। इस नई खोज से सारे आश्रम में मजेदार चहल-पहल हो गई। आश्रम के लोग रोनी शक्लोंवाले नहीं थे। गांधीजी इस बात पर खूब ध्यान देते थे। वह बच्चों की ओर आँखें मटकाते थे, बड़ों को हंसाते थे और तमाम आगंतुकों से मजाक करते थे।

मैंने गांधीजी से अपने साथ फोटो खिंचवाने को कहा। गांधीजी ने उत्तर दिया—"अगर संयोग से कोई फोटोग्राफर इधर आ निकले तो तस्वीर में तुम्हारे साथ दिखाई देने से मुझे कोई इन्कार नहीं है।"

मैंने कहा—"यह तो आपने मेरी बड़ी भारी प्रशंसा कर दी।"

"क्या तुम प्रशंसा चाहते हो?" उन्होंने पूछा।

"क्या हम सब प्रशंसा नहीं चाहते?"

"हां," गांधीजी ने सहमति प्रकट की—"परंतु कभी-कभी हमको इसकी बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।"

मैंने कहा—"मुझे बताया गया है कि कांग्रेस बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथों में है और आपको भी बंबई के मिल-मालिक सहायता देते हैं। इसमें कहां तक सचाई है?"

"दुर्भाग्य से यह सही है," गांधीजी ने स्वीकार किया—"कांग्रेस के पास अपना काम चलाने के लिए काफी रुपया नहीं है। शुरू में हमने सोचा था कि प्रत्येक सदस्य से चार आना वार्षिक वसूल करें, परंतु इससे काम नहीं चला।"

मैंने फिर पूछा—"कांग्रेस के कोष का कितना अंश धनवान भारतवासियों से मिलता है?"

"लगभग पूरा-का-पूरा," उन्होंने कहा—"उदाहरण के लिए इस आश्रम में ही हम इससे अधिक गरीबी में रह सकते हैं और खर्च कम कर सकते हैं। परंतु ऐसा नहीं होता और इसके लिए रुपया धनवान भारतवासियों के पास से आता है।"

(श्रीमती नायडू का एक ताना मशहूर है कि गांधीजी का गरीबी का जीवन-निर्वाह कराने में खूब पैसा खर्च होता है। यह ताना सुनकर गांधीजी को बड़ा मजा आया था।)

"यह तथ्य कि निहित-स्वार्थवाले धनवान लोग कांग्रेस को रुपया देते हैं, क्या

इसका कांग्रेस की राजनीति पर असर नहीं पड़ता ?" मैंने पूछा—"क्या इससे नैतिक दायित्व नहीं उत्पन्न होगा ?

"इससे कुछ भ्रम तो पैदा होता है," उन्होंने कहा—"परंतु व्यवहार में धनवानों के विचारों से हम बहुत कम प्रभावित होते हैं। पूर्ण स्वाधीनता की हमारी मांग से वे लोग कभी-कभी डर जाते हैं। धनवान सदस्यों पर कांग्रेस की निर्भरता दुर्भाग्यपूर्ण है। मैंने 'दुर्भाग्यपूर्ण' शब्द का उपयोग किया है। इससे हमारी नीति विकृत नहीं होती।"

"क्या इसका एक परिणाम यह नहीं है कि सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को लगभग छोड़ दिया गया है और राष्ट्रीयता पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है ?

"नहीं," गांधीजी ने उत्तर दिया—"कांग्रेस ने समय-समय पर, खासकर पंडित नेहरू के असर से आर्थिक नियोजन के लिए प्रगतिशील सामाजिक कार्यक्रमों तथा योजनाओं को अपनाया है।

गांधीजी के आश्रम तथा गांधीजी की हरिजन और ग्रामोद्योग की संस्थाओं तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए अधिकांश धन घनश्यामदास बिड़ला से मिलता था। बिड़ला ने पहले-पहल १९१२ में कलकत्ता में गांधीजी को देखा था। तब से वह उनके भक्त बन गये। वह गांधीजी की कई नीतियों से सहमत नहीं थे, परंतु यह कोई बात नहीं थी। वह गांधीजी को अपना 'बापू' मानते थे। गांधीजी को वह जो कुछ देते थे उसका हिसाब कभी नहीं रखते थे। परंतु गांधीजी खुद अपने हाथ से खर्च की छोटी-से-छोटी मदों का हिसाब लिखते थे और बिड़ला को देते थे और वह उसे बिना देखे गांधीजी के सामने ही फाड़ डालते थे। गांधीजी की मैत्री से बिड़ला को सम्मान और संतोष मिलते थे। परंतु यदि अवसर आता तो गांधीजी बिड़ला की मिल मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व करते, जैसाकि उन्होंने अपने मित्र तथा आर्थिक सहायक अंबालाल साराभाई के मामले में किया था। गांधीजी पूंजीवादी शोषण के विरोधी होते हुए भी पूंजीपतियों के प्रति सहिष्णु थे। उन्हें अपनी हृदय की शुद्धता का तथा अपने उद्देश्य का इतना भरोसा था कि उन्हें यह खयाल भी नहीं होता था कि वह कलुषित हो सकते हैं। गांधीजी के लिए कोई अछूत नहीं था, न बिड़ला, न कोई कम्युनिस्ट, न हरिजन और न कोई साम्राज्यवादी। जहां-कहीं उन्हें मैत्री की चिनगारी का पता लगता, वह उसे सुलगाते थे।

उनके हृदय में मानव-प्रकृति की विभिन्नता के लिए तथा मनुष्य के हेतुओं की अनेकता के लिए गुंजाइश थी।

जून १९४२ का जो सप्ताह मैंने सेवाग्राम में बिताया उसके प्रारंभ में ही प्रकट हो गया था कि गांधीजी ने इंग्लैंड के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा कर लिया है। इस आंदोलन का यही नारा होनेवाला था।

एक दिन तीसरे पहर, जब गांधीजी उन कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाल मुझे जो उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा-आंदोलन शुरू करने के लिए उकसा रहे थे तो मैंने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजों के लिए पूरी तरह भारत छोड़कर चले जाना संभव नहीं है। इसका मर्म होगा भारत को जापान के भेंटकर देना। इसके लिए इंग्लैंड कभी राजी नहीं होगा और संयुक्त राज्य इसे कभी पसंद नहीं करेगा। यदि आपकी मांग यह है कि अंग्रेज अपना बिस्तर बोरिया समेटकर चले जाएं तो आप एक असंभव चीज मांग रहे हैं। आपका यह अभिप्राय तो नहीं है कि वे अपनी सेनाएं भी हटा लें?

कम-से-कम दो मिनट तक गांधीजी मौन रहे। कमरे की निस्तब्धता मानो सुनाई दे रही थी।

अंत में गांधीजी बोले—"तुम ठीक कहते हो। हां ब्रिटेन और अमरीका और अन्य देश भी यहां अपनी सेनाएं रख सकते हैं तथा भारत की भूमि का फौजी कार्रवाइयों के अड्डे की तरह उपयोग कर सकते हैं। मैं युद्ध में जापान की जीत नहीं चाहता। किंतु मुझे विश्वास है कि जब तक भारतीय जनता आजाद न हो जाय तब तक इंग्लैंड नहीं जीत सकता। जब तक ब्रिटेन भारत पर शासन करता रहेगा तब तक वह कमजोर रहेगा और अपना नैतिक बचाव नहीं कर सकेगा।

"परंतु यदि लोकतंत्री देश भारत को अड्डा बना दें, तो बहुत-सी उलझनें पैदा हो जायंगी। सेनाएं हवा में नहीं रहा करतीं। मसलन मित्रराष्ट्रों को रेलों के अच्छे संगठन की अपेक्षा होगी।

"हां-हां" गांधीजी ने मन्द-स्वर से कहा—"वे रेलों का संचालन कर सकते हैं। जिन बंदरगाहों पर उनकी रसद उतरे, वहां भी वे व्यवस्था कायम रखना चाहेंगे। वे नहीं चाहेंगे कि बंबई और कलकत्ता में दंगे फिसाद हों। इन मामलों में परस्पर सहयोग की और सम्मिलित प्रयत्न की आवश्यकता होगी।

"क्या इस पारस्परिक सहयोग की शर्तें मित्रता के संधिपत्र में प्रस्तुत की जा सकती हैं?

"हां" गांधीजी ने सहमति प्रकट की— "लिखित इकरारनामा हो सकता है।"

"आपने यह बात अभी तक कही क्यों नहीं ?" मैंने पूछा—"मैं कबूल करता हूं कि जब मैंने सविनय अवज्ञा-आंदोलन के आपके इरादे की बाबत सुना तो मेरा ख्याल उसके विरुद्ध हो गया। मैं समझता हूं कि इससे युद्ध-प्रयत्न में बाधा पड़ेगी। यदि धुरी-राष्ट्र जीत गये तो मुझे संसार में पूर्ण अंधकार होता दिखाई देता है। मेरा ख्याल है कि यदि हम जीत जायं तो हमको एक बेहतर दुनिया बनाने का मौका मिलेगा।

"यहां मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूं," गांधीजी ने तर्क किया—"ब्रिटेन अपने को अक्सर पाखंड के चोगे में छिपाये रखता है। वह ऐसे वादे करता है, जिन्हें बाद में निभाता नहीं। परंतु यह बात मैं मानता हूं कि लोकतंत्री राष्ट्र जीत जायं तो बेहतर मौका मिलेगा।"

"यह इस पर निर्भर है कि हम किस तरह की शांति रखते हैं," मैंने कहा।

"यह इस पर निर्भर है कि आप युद्ध में क्या करते हैं," गांधीजी ने मेरी पलटी सुधारी—"युद्ध के बाद स्वाधीनता में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं अभी स्वाधीनता चाहता हूं। इससे इंग्लैंड को युद्ध जीतने में मदद मिलेगी।"

मैंने फिर पूछा—"आपने अपनी यह योजना वाइसराय तक क्यों नहीं पहुंचाई ? वाइसराय को मालूम होना चाहिए कि मित्र राष्ट्रों की फौजी कार्रवाइयों के लिए भारत को अड्डा बनाये जाने में अब आपको कोई आपत्ति नहीं है।"

"किसीने मुझसे पूछा ही नहीं।" गांधीजी ने ढीलेपन से उत्तर दिया।

आश्रम से मेरे रवाना होने से पूर्व महादेव देसाई ने मुझसे चाहा कि मैं वाइसराय से कहूं कि गांधीजी उनसे मिलना चाहते हैं। महात्माजी समझौते के लिए और बाबत सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का विचार छोड़ने के लिए तैयार थे। बाद में दिल्ली में मुझे गांधीजी का एक पत्र राष्ट्रपति रूज़वेल्ट को देने के लिए मिला। पत्र के पुर्जे में गांधीजी की लिखावट लिए हुए शब्द थे—"यदि यह आपको पसंद न आये तो इसे फाड़ देना।"

गांधीजी महसूस करते थे कि भारत के बारे में लोकतंत्री राष्ट्रों की स्थिति नैतिक दृष्टि से असमर्थनीय थी। रूज़वेल्ट या चिलचिलजी इस स्थिति को बदल कर उसे रोक सकते थे परंतु उनके हृदय में कोई शंकाएं नहीं थीं। नेहरू तथा आज़ाद शंका करते थे। महात्माजी से मतभेद के कारण राजाजी कांग्रेस का नेतृत्व छोड़ चुके थे। परंतु गांधीजी विचलित नहीं हुए। नेहरू और आज़ाद को उन्होंने

अपनी बात जंचा दी। नेहरू विदेशी तथा बाह्य स्थिति को अनुकूल नहीं मानते थे। गांधीजी ने बतलाया— 'मैंने लगातार सात दिन तक उनसे बहस की। जिस भावावेश के साथ वह मेरी स्थिति के विरोध में लड़े उसे मैं बयान नहीं कर सकता।"

"परंतु आश्रम से रवाना होने से पहले गांधीजी के शब्दों में "तथ्यों के तर्क ने उन्हें परास्त कर दिया। सच तो यह है कि नेहरू प्रस्तावित सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के इतने कट्टर समर्थक बन गये थे कि जब कुछ दिन बाद बंबई में मैंने उनसे पूछा कि गांधीजी को वाइसराय से मिलना चाहिए या नहीं तो उन्होंने उत्तर दिया— "नहीं। किसलिए ?" गांधीजी अब भी वाइसराय से मुलाकात की आशा लगाये हुए थे।

गांधीजी में महान आकर्षण था। वह एक निराली प्राकृतिक विचित्रता थे शांत तथा इस प्रकार अभिभूत करनेवाले कि पता भी न लगे। उनके साथ मानसिक संपर्क आनंददायक होता था क्योंकि वह अपना हृदय खोलकर रख देते थे और दूसरा व्यक्ति देख सकता था कि मशीन किस तरह चल रही है। वह अपने विचारों को कभी पूर्ण रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न नहीं करते थे। वह मानो बोली में सोचते थे अपने विचार को हर कदम प्रकट कर देते थे। आप केवल उनके शब्दों को ही नहीं बल्कि उनके विचारों को भी सुनते थे। इसलिए आप उनकी परिणाम पर पहुंचने की गति को सिलसिलेवार देख सकते थे। यह चीज उन्हें प्रचारक की भांति बात करने से रोकती थी। वह मित्र की भांति बात करते थे। वह विचारों के परस्पर आदान-प्रदान में दिलचस्पी रखते थे और इससे भी अधिक व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने में।

गांधीजी का कहना था कि स्वाधीन भारत में संघीय प्रशासन अनावश्यक होगा। मैंने उन्हें संघीय प्रशासन के अभाव से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयां बतलाईं। यह बात उनके गले नहीं उतरी। मैं अकड़ गया। अंत में उन्होंने कहा— "मैं जानता हूं कि मेरे मत के बावजूद केंद्रीय सरकार बनेगी। यह विशिष्ट गांधी ढंग था। वह किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे उसकी वकालत करते थे और फिर हटते हुए मान लेते थे कि वह अव्यवहारिक है। समझौते की बातचीत में यह प्रवृत्ति अत्यंत झुंझलानेवाली और उलझन स्पष्ट करनेवाली हो सकती थी। कभी कभी तो वह अपनी कही हुई बातों पर खुद भी आश्चर्य करते थे। उनकी विचार प्रणाली तरल थी। अधिकतर लोग चाहते हैं कि उनकी बात सही प्रमाणित हो। गांधीजी भी चाहते थे परंतु अक्सर वह गलती को मंजूर करके जीत जाते थे।

बूढ़े लोगों को पुरानी बातें याद आया करती हैं। लॉयड जार्ज सामयिक कार्यों के बारे में प्रश्न का उत्तर देना शुरू करते थे परंतु शीघ्र ही यह बताने लगते थे कि उन्होंने प्रथम महायुद्ध या सदी के प्रारंभ में सामाजिक सुधार का आंदोलन किस प्रकार चलाया। परंतु उनहत्तर वर्ष की आयु में भी गांधीजी पुरानी बातें याद नहीं करते थे। उनका दिमाग तो आनेवाली चीजों पर था। वर्ष उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखते थे क्योंकि वह तो अनंत भविष्य की बातें सोचते थे। उनके लिए केवल घंटों का महत्त्व था क्योंकि जो कुछ वह उस भविष्य को दे सकते थे उसका यह भाग था।

गांधीजी के पास प्रभाव से कुछ अधिक था। उनके पास सत्ता थी, जो सामर्थ्य से कम किंतु बेहतर होती है। सामर्थ्य मशीन का गुण होता है, सत्ता व्यक्ति का गुण होता है। राजनीतिज्ञों में दोनों का तारतम्य होता है। अधिनायक के पास सामर्थ्य लगातार जमा होती रहती है, जिसका दुरुपयोग अनिवार्य होता है और यह सामर्थ्य उसकी सत्ता को छीन लेती है। गांधीजी के सामर्थ्य-त्याग ने उनकी सत्ता को बढ़ा दिया। सामर्थ्य अपने शिकारों के खून और आंसुओं पर पनपती है। सत्ता को सेवा, सहानुभूति तथा स्नेह पनपाते हैं।

एक दिन मैं महादेव देसाई को चरखा कातते देखता रहा। मैंने कहा कि मैं गांधीजी की बातों को ध्यान से सुनता आया हूं परंतु मुझे बराबर यह आश्चर्य हो रहा है कि जनता पर गांधीजी के अमित प्रभाव का मूल स्रोत क्या है। फिलहाल मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि यह उनकी आसक्ति है।

"यह ठीक है," देसाई ने उत्तर दिया।

"उनकी आसक्ति का मूल क्या है?" मैंने पूछा।

देसाई ने समझाया—"यह आसक्ति उन तमाम विषयों का परमोत्कर्ष है जो इस शरीर के साथ लगे हुए हैं।"

"कामासक्ति?"

"काम, क्रोध, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा—गांधीजी को अपने ऊपर पूर्ण निग्रह है। इससे अमित शक्ति तथा आसक्ति उत्पन्न होती रहती है।

यह आसक्ति अमित और अस्फुट थी। उसमें मृदुल तीव्रता, कोमल दृढ़ता और धीरता की तहों में लपेटी हुई अधीरता थी। गांधीजी के साथियों को तथा अंग्रेजों को कभी-कभी उनकी तीव्रता, दृढ़ता और अधीरता पर रोष होता था।

परंतु अपनी मृदुलता कोमलता तथा धीरता के द्वारा वह अपने प्रति उनका आदर और अक्सर उनका प्रेम बनाये रखते थे।

गांधीजी एक दृढ़ व्यक्ति थे और उनकी दृढ़ता का कारण उनके व्यक्तित्व का ऐश्वर्य था न कि उनकी संपत्ति की बहुलता। उनका लक्ष्य था अस्ति परिग्रह नहीं। आनंद उन्हें आत्मत्याग के द्वारा प्राप्त होता था। वह अभय थे इसलिए उनका जीवन सत्यमय था। वह अकिंचन थे पर अपने सिद्धांतों की कीमत चुका सकते थे।

गांधीजी व्यक्तिगत नैतिकता तथा सार्वजनिक व्यवहार के बीच एकता के प्रतीक हैं। जब विवेक घर में तो रहता है परंतु कारखाने में दफ्तर में पाठशाला में और बाजार में नहीं रहता तो भ्रष्टाचार, क्रूरता और अधिनायकशाही के लिए रास्ता खुल जाता है।

गांधीजी ने राजनीति को तथा आचार-नीति को संपन्न बनाया। वह प्रत्येक दिन के विचारार्थ विषयों को शाश्वत तथा सार्वभौम मूल्यों के प्रकाश में सुलझाते थे। क्षणभंगुर वस्तुओं का सार खींचकर वह स्थायी तत्व निकाल लेते थे। इस प्रकार वह मनुष्य के कार्य को कुंठित करनेवाली प्रचलित धारणाओं के ढांचे को तोड़कर निकल जाते थे। उन्होंने कार्य का एक नया परिमाण खोज निकाला था। व्यक्तिगत सफलता या सुख के सिद्धांतों से न बंधकर उन्होंने सामाजिक परमाणु का विघटन कर दिया और शक्ति का नया स्रोत पा लिया। इससे उन्हें आक्रमण के वे हथियार मिले जिनका कोई बचाव नहीं था। उनकी महानता इसमें थी कि वह ऐसे काम करते थे जिन्हें हर एक कर सकता है परंतु करता नहीं है।

गांधीजी के जीवन-काल में ठक्कर ने लिखा था—"कदाचित वह सफल नहीं हो पायेंगे। कदाचित वह उसी प्रकार असफल होंगे जिस प्रकार मनुष्य को बदवता से हटाने में बुद्ध तथा ईसा असफल रहे। परंतु लोग इन्हें सदा ऐसे व्यक्ति की तरह याद करेंगे जिसने अपने जीवन को आनेवाले अनंत युगों के लिए एक नसीहत बना दिया।

२१

अदम्य इच्छा-शक्ति

१९४२ की मई, जून और जुलाई में भारत में दम घोटनेवाली मूकता का अनुभव होता था। भारतवासी हताश प्रतीत होते थे। ब्रिटिश सेनानायक संयुक्त राज्य के जनरल जोसेफ स्टिलवेल बची-खुची सेना और हजारों भारतीय शरणार्थी खींचते हुए जापानियों से बचने के लिए बर्मा से भाग रहे थे। जापान भारत के दरवाजे तक आ पहुंचा था। भारत को जापान से बचाने के लिए इंग्लैंड के पास शक्ति नजर नहीं आती थी। हल्ला मचानेवाले भारतवासी अपनी नितांत असहायता से झुंझला रहे थे और तंग आ गये थे। राष्ट्रीय संकट उपस्थित था तनाव बढ़ता जा रहा था खतरा सामने था भीषण फुफकार रहा था परंतु भारतवासियों के पास न तो आवाज थी और न कुछ करने की सामर्थ्य।

गांधीजी के लिए यह स्थिति असह्य थी। हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। उनका विश्वास था और उन्होंने अपने पीछे चलने-वाले विशाल समुदाय को सिखाया था कि भारतवासियों को अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

गांधीजी को अंधकारपूर्ण भविष्य का पूर्वाभास तो नहीं हो सकता था परंतु तत्काल परिवर्तन की अत्यावश्यक अपेक्षा का उन्हें जरूर भान हो गया था। स्वाधीन राष्ट्रीय सरकार की शीघ्र स्थापना के लिए वह इंग्लैंड पर अधिक-से अधिक दबाव डालने को कटिबद्ध थे।

परम शांतिवादी गांधीजी की इच्छा थी कि भारत आक्रमण करनेवाली सेना की सफल अहिंसक पराजय का एक अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करे। साथ ही वह इस वास्तविकता को भी पहचानते थे कि देशों के बीच मरने-मारने का भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है। १४ जून १९४२ के 'हरिजन' में गांधीजी ने घोषणा की थी—"यदि यह मान लिया जाय कि राष्ट्रीय सरकार बन जायगी और वह मेरी आशाओं के अनुरूप होगी तो उसका पहला काम होगा आक्रांता राष्ट्रों की कार्रवाइयों से बचाव के हित संयुक्त राष्ट्रों के साथ सुलहनामा करना।

तो क्या गांधीजी युद्ध प्रयत्न में सहायता करेंगे? नहीं। संयुक्त राष्ट्रीय-सेनाएं भारत भूमि पर रहने दी जायेंगी और भारतवासी ब्रिटिश सेना में भर्ती हो सकेंगे या अन्य सहायता दे सकेंगे। परंतु यदि उनकी बात चले तो भारतीय सेना तोड़ दी

कार्यकी और भारत की नई राष्ट्रीय सरकार विश्व-शांति स्थापित करने में अपनी सारी सामर्थ्य प्रभाव तथा साधन लगा देगी।

क्या ऐसा होने की उन्हें आशा थी ? नहीं। उन्होंने कहा था—"राष्ट्रीय सरकार बनने के बाद मेरी आवाज शायद अरण्यरोदन के समान हो जाय और राष्ट्रवादी भारत शायद युद्ध का दीवाना बन जाय।"

१९४२ की गर्मियां बीतते-बीतते यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार ठुकराये हुए क्रिप्स-प्रस्ताव से आगे नहीं बढ़ेगी। नेहरू वाशिंगटन से कुछ संकेत का इंतजार कर रहे थे। उन्हें आशा थी कि रूजवेल्ट चर्चिल को भारत में नया कदम बढ़ाने के लिए राजी कर लेंगे। कुछ कांग्रेसजनों को शंका थी कि सविनय-अवज्ञा की पुकार पर देश में प्रतिक्रिया होगी या नहीं और कुछ को आशंका थी कि यह प्रतिक्रिया हिंसा में प्रकट होगी। गांधीजी की कोई शंकाएं नहीं थीं। अपना दावा कायम करने के लिए राष्ट्र में जो आगा-पीछा न सोचनेवाली उमंग थी उसे वह व्यक्त कर रहे थे।

कांग्रेस कार्य-समिति ने १४ जुलाई को वर्धा में प्रस्ताव पास किया कि 'भारत में ब्रिटिश शासन तुरंत समाप्त होना चाहिए' और यदि उसकी बात नहीं मानी गई तो प्रस्ताव में कहा गया कि 'कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर सविनय-अवज्ञा-आंदोलन छेड़ेगी' जो अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी के नेतृत्व में होगा।

यह प्रस्ताव अगस्त के प्रारंभ में बंबई में बुलाई गई कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में रखा जानेवाला था। इस बीच गांधीजी ने सेवाग्राम से जापानियों के नाम एक अपील प्रकाशित की जिसमें जापान को चेतावनी दी गई कि वह भारत की स्थिति का लाभ उठाकर धावा बोलने की चेष्टा न करे।

इसके बाद गांधीजी बंबई गये। 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' के प्रतिनिधि ए० टी० स्टील से उन्होंने कहा—"यदि कोई मुझे समझा सके कि युद्ध के दौरान में भारत को आजादी देने से युद्ध-प्रयत्न खतरे में पड़ जायगा तो मैं उसकी दलील सुनने को तैयार हूं।"

स्टील ने पूछा—"अगर आपको विश्वास हो जाय तो क्या आप आंदोलन बंद कर देंगे ?"

"अवश्य" गांधीजी ने उत्तर दिया—"मेरी शिकायत तो यह है कि वे मसले

आदमी दूर-दूर से मुझे बातें सुनाते हैं, दूर-दूर से मुझे धमकियां देते हैं, परंतु नीचे उतरकर कभी मुझसे सीधी बातचीत नहीं करते।

७ अगस्त को महासमिति के अधिवेशन में कई सौ कांग्रेसी नेताओं ने भाग लिया और ७ व ८ को दिन-दिन भर वाद-विवाद करके उन्होंने कर्म-प्रस्ताव को कुछ संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया।

८ अगस्त को आधी रात के कुछ ही देर बाद गांधीजी ने महासमिति के सदस्यों के सामने भाषण दिया। उन्होंने जोर देकर कहा—"वास्तविक संघर्ष तुरंत ही प्रारंभ नहीं हो जाता। आप लोगों ने कुछ अधिकार मुझे सौंपे हैं। मेरा पहला काम होगा वाइसराय से मुलाकात करना और उनसे प्रार्थना करना कि कांग्रेस की मांग स्वीकार की जाय। इसमें दो-तीन सप्ताह लग सकते हैं। इस बीच आप लोगों को क्या करना है? चरखा तो है ही। लेकिन आपको इससे भी अधिक कुछ करना है। इसी क्षण से आपमें से हर एक यह समझ ले कि वह आजाद है और इस तरह बर्ताव करे मानो वह आजाद है और इस साम्राज्यवादी की एड़ी के नीचे नहीं है। गांधीजी इस भौतिकवादी धारणा को उलट रहे थे कि परिस्थितियां मनःस्थिति को बनाती हैं। नहीं, मनःस्थिति परिस्थितियों को बना सकती है।

प्रतिनिधि लोग घर जाकर सो गये। कुछ ही घंटे बाद पुलिस ने गांधीजी, नेहरू तथा अन्य बीसियों लोगों को पकड़ा और सूर्योदय से पहले ही उन्हें जेल में पहुंचा दिया। गांधीजी को पूना के पास यरवदा में आगाखां के महल में रखा गया। श्रीमती नायडू, मीरा बहन, महादेव देसाई और प्यारेलाल नैयर को भी उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन कस्तूरबा और डा. सुशीला नैयर भी पकड़ी गईं।

गांधीजी के साथ एक सप्ताह रहने के बाद मैंने वाइसराय से मुलाकात की थी और उन्हें वह संदेश दिया था जो सेवाग्राम में मुझे सौंपा गया था—गांधीजी वाइसराय से बातचीत करना चाहते हैं। वाइसराय ने उत्तर दिया था—"यह उच्च स्तर की नीति का मामला है और इस पर अच्छाई-बुराई के लिहाज से गौर किया जायगा।

गांधीजी के जेल के फाटकों में बंद होते ही हिंसा की धाराओं के फाटक खुल गये।

गांधीजी का मिजाज भी भड़क हो रहा था। रंगमंच पर का बाकी भी अत्यन्त नम्रता से युक्त बाह्यरूप महात्माजी का व्यक्तित्व भावनाओं के तूफान महक

की दीवारों को तोड़कर बाहर निकल गया और उसने पहले तो ब्रिटिश सरकार के दिमाग को और फिर भारतीय जनता के दिमाग को घेर लिया।

१४ अगस्त को गांधीजी ने वाइसराय को जेल से अपना पहला पत्र भेजा जिसमें उन्होंने सरकार पर तोड़-मरोड़ और गलत बयानी का आरोप लगाया। लिनलिथगो ने उत्तर दिया कि "आपकी आलोचना से सहमत होना मेरे लिए संभव नहीं है और न नीति में परिवर्तन करना ही संभव है।

गांधीजी ने कई महीनों प्रतीक्षा की। १९४२ की अंतिम तारीख को उन्होंने लिखा

"प्रिय लार्ड लिनलिथगो

"यह बिल्कुल व्यक्तिगत पत्र है। मेरा ख्याल था कि हम आपस में मित्र हैं। मगर ९ अगस्त के बाद की घटनाओं से मुझे शंका हो गई है कि अब भी आप मुझे मित्र समझते हैं या नहीं। कड़ी कार्रवाई करने से पहले आपने मुझे बुलाया क्यों नहीं? अपने संदेह मुझे बतलाये क्यों नहीं और यह क्यों नहीं निश्चय किया कि आपको मिले हुए तथ्य सही भी हैं या नहीं?"

इसलिए गांधीजी ने पत्र के अंत में लिखा—"मैंने उपवास के द्वारा शरीर को सूली पर चढ़ाने का निश्चय किया है। मुझे मेरी गलती या गलतियों का यकीन दिला दो तो मैं सुधार करने को तैयार हूं। मगर आप चाहें तो बहुत से रास्ते निकाल सकते हैं। नया साल हम सब के लिए शांति लेकर आये।

मैं हूं,
आपका सच्चा दोस्त
मो० क० गांधी"

वाइसराय को यह पत्र चौदह दिन बाद मिला। अग्निकांडों और हत्याकांडों का जिक्र करते हुए लिनलिथगो ने अपने उत्तर में लिखा—"मुझे गहरा दुख है कि आपने इस हिंसा और अपराध की निंदा के लिए एक शब्द भी नहीं लिखा।"

इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा—"९ अगस्त के बाद की घटनाओं के लिए मुझे खेद अवश्य है, किन्तु क्या इसके लिए मैंने भारत सरकार को दोषी नहीं ठहराया है? इसके अलावा जिन घटनाओं पर मेरा न तो प्रभाव है और न काबू तथा जिनके बारे में मुझे केवल एकतरफा बयान मिला है उन पर मैं कोई मत प्रकट नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि यदि आप हाथ नहीं उठाते और मुझे मुलाकात का मौका देते तो अच्छा ही परिणाम निकलता।

लिनलिथगो ने इस पत्र का तत्काल उत्तर दिया और लिखा—"मेरे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है कि हिंसा तथा लूटमार के खेदजनक आंदोलन के लिए कांग्रेस को तथा उसके अधिकृत प्रवक्ता—आपको—जिम्मेदार मानूं। आपको उचित है कि ८ अगस्त के प्रस्ताव तथा उसमें व्यक्त की गई नीति का परित्याग करें और भविष्य के लिए मुझे समुचित आश्वासन दें।

इसके प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"सरकार ने ही जनता को उभाड़कर पागलपन की सीमा तक पहुंचा दिया है। मैंने जीवन भर अहिंसा के लिए प्रयत्न किया है, फिर भी आप मुझ पर हिंसा का अपराध लगाते हैं। इसलिए जब मेरे दर्द की मरहम नहीं मिल सकती तो मैं सत्याग्रही के नियम का पालन करूंगा, अर्थात् शक्ति के अनुसार उपवास करूंगा। यह ९ फरवरी को शुरू होगा और इक्कीस दिन बाद समाप्त होगा। मेरी इच्छा आमरण उपवास की नहीं है, परंतु यदि ईश्वर की इच्छा हो तो मैं कठिन परीक्षा को सही-सलामत पार करना चाहता हूं। यदि सरकार अपेक्षित कदम उठाये तो उपवास जल्दी समाप्त हो सकता है।"

वाइसराय ने ५ फरवरी को तुरंत एक लंबा पत्र भेजा जिसमें दंगे-फिसादों के लिए फिर कांग्रेस को ही जिम्मेदार बताया। पत्र के अंत में कहा गया था—"आपकी तंदुरुस्ती और आयु के खयाल से उपवास के आपके निश्चय पर मुझे खेद है। आशा है आप उपवास का विचार छोड़ देंगे। मैं तो राजनैतिक उद्देश्यों के लिए उपवास के प्रयोग को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस समझता हूं, जिसका कोई भी नैतिक औचित्य नहीं है।

गांधीजी ने लौटती डाक से इसका उत्तर भेज दिया। उन्होंने लिखा—"यद्यपि आपने मेरे उपवास को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस बतलाया है, तथापि मेरे लिए तो यह उस न्याय के वास्ते सर्वोच्च अदालत को अपील है, जिसे मैं आपसे प्राप्त नहीं कर सका हूं।"

उपवास शुरू होने के दो दिन पूर्व सरकार उपवास के समय के लिए गांधीजी को छोड़ने को तैयार हो गई। गांधीजी ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि जेल से छूटने पर वह उपवास नहीं करेंगे। इस पर सरकार ने घोषणा की कि जो कुछ परिणाम होगा उसकी जिम्मेदारी गांधीजी पर होगी। परंतु वह जेल में जिन डाक्टरों को तथा बाहर के मित्रों को बुलाना चाहें, बुला सकते हैं।

उपवास १० फरवरी को घोषणा की हुई तारीख के एक दिन बाद शुरू

हुआ। पहले दिन गांधीजी काफ़ी प्रसन्न थे और दो दिन तक वह सुबह और शाम आधा घंटा घूमने भी जाते रहे। परन्तु शीघ्र ही उनके स्वास्थ्य की बुलेटिनें चिंता उत्पन्न करने लगीं। छठे दिन छ डाक्टरों ने बयान दिया कि गांधीजी की हालत ज्यादा गिर गई है। दूसरे दिन वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल के तीन सदस्यों—सर होमी मोदी श्री नलिनीरंजन सरकार और श्री अणे—ने सरकार के इस दोषारोपण के विरोध में कौंसिल से त्यागपत्र दे दिये जिसके कारण गांधी जी को उपवास करना पड़ा था। महात्माजी को छोड़ने के लिए देश भर में मांग होने लगी। ग्यारह दिन बाद लिनलिथगो ने गांधीजी की रिहाई के तमाम प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

गांधीजी की परिचर्या के लिए कलकत्ता से डा विधानचंद्र राय आ गये। अंग्रेज डाक्टरों ने सलाह दी कि महात्माजी को बचाने के लिए इंजेक्शनों के द्वारा उनके शरीर में खुराक पहुंचाई जाय। भारतीय डाक्टरों ने कहा कि इससे उनकी मृत्यु हो जायगी। गांधीजी इंजेक्शनों के विरुद्ध थे। वह इन्हें हिंसा मानते थे।

यरवडा पर भीड़ जमा होने लगी। सरकार ने जनता को महल के मैदान में जाने की और गांधीजी के कमरे में कतार बांधकर निकलने की अनुमति दे दी। देवदास और रामदास भी आ पहुंचे।

इंग्लैंड की भारत मित्र समिति के होरेस अलेक्जेंडर ने बीच में पड़कर सरकार से बातचीत करने का प्रयत्न किया। इन्हें झिड़की दे दी गई। वे भी मरणासन्न महात्माजी से मिलने आये।

गांधीजी नमक या फलों का रस मिलाये बिना पानी ले रहे थे। उनके गुर्दे जवाब देने लगे और खून गाढ़ा होने लगा। तेरहवें दिन नब्ज कमजोर पड़ गई और चमड़ी ठंडी और नीली हो गई।

आखिरकार महात्माजी को इस बात पर राजी कर लिया गया कि उनके पीने के पानी में मुसंबी के ताजे रस की कुछ बूंदें मिला दी जायं। इससे उलटियां बंद हो गईं। गांधीजी प्रसन्न दिखाई देने लगे।

२ मार्च को उपवास की समाप्ति पर कस्तूरबा ने गांधीजी को एक गिलास में छीन छटांक नारंगी का रस पानी मिलाकर दिया। वह बीस मिनट तक घूंट घूंट करके इसे पीते रहे। उन्होंने डाक्टरों को धन्यवाद दिया और धन्यवाद देते समय रो पड़े। आगामी चार दिन तक गांधीजी ने केवल नारंगी का रस लिया

फिर बकरी के दूध, फलों के रस और फलों के गूदे पर आ गये। उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा।

भारत के प्रमुख गैर-कांग्रेसी नेताओं ने अब गांधीजी की रिहाई के लिए तथा सरकार द्वारा समझौते की नई नीति अपनाई जाने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया। सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य लोगों ने गांधीजी से मिलने की अनुमति मांगी। लिनलिथगो ने इन्कार कर दिया।

२५ अप्रैल को भारत में रूजवेल्ट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि विलियम फिलिप्स ने अमरीका लौटने से पूर्व विदेशी संवाददाताओं को बताया— मैं चाहता था कि गांधीजी से मिलूं और बातचीत करूं। इसके लिए मैंने संबंधित अधिकारियों से अनुमति देने की प्रार्थना की परंतु मुझे सूचना दी गई कि आवश्यक अनुमति नहीं दी जा सकती।

लिनलिथगो के व्यवहार ने गांधीजी के हृदय में कटुता उत्पन्न कर दी जो उनके स्वभाव में नहीं थी। जब वाइसराय अपना बढ़ा हुआ कार्यकाल पूरा करके जाने की तैयारी में थे तो २७ सितंबर १९४३ को गांधीजी ने उन्हें लिखा

"प्रिय भाई लिनलिथगो

"भारत से आपकी विदाई के समय मैं आपसे कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

"जिन अन्य अधिकारियों से परिचय का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ है, उन सबमें आपके कारण मुझे जितना गहरा दुख हुआ है, उतना और किसीके कारण नहीं हुआ। इस ख्याल ने मुझे बहुत चोट पहुंचाई है कि आपने झूठ को प्रश्रय दिया और वह भी ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसे किसी समय आप अपना मित्र समझते थे। मैं आशा और प्रार्थना करता हूं कि किसी दिन ईश्वर आपको यह महसूस करने की बुद्धि दे कि एक महान राष्ट्र के प्रतिनिधि होकर आप गंभीर गलती में पड़ गये।

"सद्भावनाओं के साथ

मैं अभी तक हूं
आपका मित्र
मो० क० गांधी"

लिनलिथगो ने ७ अक्तूबर को उत्तर दिया

"प्रिय श्री गांधी

"मुझे आपका २७ सितंबर का पत्र मिला। मुझे वास्तव में खेद है कि मेरे किन्हीं कार्यों अथवा शब्दों के बारे में आपकी ये भावनाएं हैं, जो आपने बयान की

है। परंतु मैं जितनी नम्रता से हो सकता है, आपको स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि प्रस्तुत घटनाओं के संबंध में मैं आपकी व्याख्या स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

'जहां तक संयम तथा विचारता के द्योतक गुणों का संबंध है, ये तो अपने प्रभाव में स्पष्टतया सार्वभौमिक हैं और कोई भी बुद्धिमान इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

मैं हूं
आपका
लिनलिथगो"

गांधीजी के लिए जेल में यों रहना एक बेचैनी भरी दुःखदी थी जिसमें कोई राहत नहीं थी। व्यापक हिंसा ने तथा उसे रोकने की असमर्थता ने उन्हें व्याकुल कर दिया था।

व्यक्तिगत क्षति ने इस दुख को और भी गहरा कर दिया। आगाखां महल में आने के कुछ दिन बाद ही महादेव देसाई को अकस्मात दिल का दौरा हुआ और वह बेहोश हो गये।

गांधीजी ने पुकारा—"महादेव महादेव !

'महादेव देखो बापू तुम्हें पुकार रहे हैं, कस्तूरबा ने चिल्लाकर कहा।

परंतु महादेव का प्राणांत हो चुका था।

इस मृत्यु से महात्माजी को भारी आघात पहुंचा। महल के मैदान में जिस स्थान पर महादेव देसाई की अस्थियां गाड़ी गई थीं वहां वह रोज जाते थे।

शीघ्र ही इससे भी गहरे व्यक्तिगत शोक ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया।

कस्तूरबा बहुत दिनों से बीमार थीं और दिसंबर १९४३ में श्वास नली का प्रदाह पुराना पड़ जाने से उनकी हालत गंभीर हो गई। डा. गिल्डर तथा डा. सुशीला नैयर उनकी चिकित्सा कर रहे थे परंतु कस्तूरबा ने प्राकृतिक चिकित्सक डा. दीनशा मेहता को बुलाना चाहा। उन्होंने कई दिन तक सारे उपचार किये। अंत में जब वह हार मान गये तो डा. गिल्डर, डा. नैयर तथा डा. जीवराज मेहता ने अपने प्रयत्न फिर चालू किये। परंतु वे भी असफल रहे। सरकार ने उनके पुत्रों तथा पौत्रों को उनसे मिलने की अनुमति दे दी। बा ने अपने सबसे बड़े पुत्र हरिलाल गांधी से खासतौर पर मिलने की इच्छा प्रकट की।

गांधीजी घंटों तक बा के बिस्तर के पास बैठे रहे। उन्होंने सब दवाइयां रोका दीं और शहद तथा पानी के सिवा सब खुराक बंद करा दी। उन्होंने कहा—"यदि

ईश्वर की इच्छा होगी तो वह अच्छी हो जायगी, नहीं तो मैं इसे जाने दूंगा परंतु अब और दवाइयां नहीं दूंगा ।

पेनिसिलिन जो उस समय भारत में दुष्प्राप्य थी हवाई जहाज द्वारा कलकत्ते से मंगवाई गई। देवदास ने इसके लिए बहुत जोर दिया था।

गांधीजी को मालूम नहीं था कि पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगाया जाता है। मालूम होने पर उन्होंने इसे रोक दिया। २१ फरवरी को हरिलाल गांधी आ गये। वह नशे में थे और कस्तूरबा के सामने से उन्हें जबरदस्ती हटाया गया। बा रोने लगीं और अपना माथा पीटने लगीं। (हरिलाल अपने पिता की अंत्येष्टि में बेपहचाने शामिल हुए थे और उस रात देवदास के पास ठहरे थे। १८ जून १९४८ को बंबई के क्षय-चिकित्सालय में इस परित्यक्त की मृत्यु हो गई।)

दूसरे दिन गांधीजी की गोद में सिर रखे हुए कस्तूरबा ने प्राण त्याग दिये। देवदास ने चिता में आग दी। अस्थियां महादेव देसाई की अस्थियों के पास गाड़ दी गईं।

अंत्येष्टि के बाद गांधीजी अपने बिस्तर पर चुपचाप बैठ गये और समय समय पर जैसे विचार आते गये वह कहने लगे—"बा के बिना मैं जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। उसकी मृत्यु से जो जगह खाली हुई है, वह कभी नहीं भरेगी। हम दोनों बासठ वर्ष तक साथ रहे। और वह मेरी गोद में मरी। इससे अच्छा क्या होता? मैं हद से ज्यादा खुश हूं।

कस्तूरबा की मृत्यु के छः सप्ताह बाद गांधीजी को सख्त मलेरिया ने घेर लिया और उन्हें सन्निपात हो गया। बुखार १०५ डिग्री तक चढ़ गया। शुरू में उन्होंने सोचा था कि फलों के रस से और उपवास से इसका इलाज हो जायगा इसलिए उन्होंने कुनैन लेने से इन्कार कर दिया। परंतु दो दिन बाद वह ढीले पड़ गये। दो दिन में उन्हें कुल तैंतीस ग्रेन कुनैन दी गई और बुखार जाता रहा।

३ मई को गांधीजी के चिकित्सकों ने बुलेटिन निकाला कि उनकी रक्तहीनता बढ़ गई है और उनका रक्त-चाप गिर गया है। "उनकी साधारण अवस्था फिर गंभीर चिंता उत्पन्न कर रही है।" भारत भर में उनकी रिहाई के लिए आंदोलन तेज हुआ। ६ मई को सुबह ८ बजे गांधीजी और उनके साथी रिहा कर दिये गये। बाद की परीक्षा से पता लगा कि उनकी आंतों में हुकवर्म तथा पेचिश के कीटाणु थे।

जेल में गांधीजी का यह अंतिम निवास था। कुल मिलाकर वह २३३८ दिन

भारत की जेलों मे और २४९ दिन दक्षिण अफ्रीका की जेलों में रहे।

जेल से छूटने के बाद गांधीजी बंबई के पास जुहू में समुद्र-तट पर शांति-कुमार मुरारजी के घर में ठहरे।

श्रीमती मुरारजी ने एक चलचित्र देखने का सुझाव रखा। गांधीजी ने जीवन में कोई चलचित्र नहीं देखा था। बहुत-कुछ कहने पर वह राजी हो गये। वहीं घर पर उन्हें 'मिशन टु मास्को' नामक फिल्म दिखाई गई।

आपको कैसी लगी ? मुरारजी ने पूछा।

'मुझे पसंद नहीं आई,' गांधीजी ने उत्तर दिया। उन्हें बालरूम का नाच और स्त्रियों के संक्षिप्त वस्त्र पसंद नहीं आये। फिर उन्हें एक भारतीय चलचित्र 'रामराज्य' दिखाया गया।

डाक्टर सोम गांधीजी का इलाज कर रहे थे और गांधीजी मौन के द्वारा खुद अपना इलाज कर रहे थे। शुरू मे उन्होंने पूर्ण मौन रखा कुछ सप्ताह बाद वह शाम को ४ बजे से ८ बजे तक बोलने लगे। यह प्रार्थना का समय था।

कुछ सप्ताह बाद वह फिर कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े।

२२
जिन्ना और गांधी

मोहम्मदअली जिन्ना जो अपने को गांधीजी के मुकाबले का समझते थे बंबई में संगमरमर की एक विशाल अर्द्ध चंद्राकार कोठी में रहते थे। यह कोठी उन्होंने द्वितीय महायुद्ध के समय में बनवाई थी और १९४२ में जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने सफाई देते हुए कहा कि अभी तक यह पूरी तरह सजी नहीं है।

जिन्ना की ऊंचाई छः फुट से ऊपर थी और वजन नौ स्टोन था[१]। वह बहुत ही दुबले-पतले थे। उनका सुगठित सिर सफेद बालों से ढका हुआ था जो पीछे की ओर काढ़े हुए थे। उनका सूखा हुआ चेहरा पतला था नाक लंबी और नोकदार थी। कनपटियां धंसी हुई और गालों में गहरे गड्ढे थे जिनके कारण गालों की हड्डियां उभरी हुई नजर आती थीं। दांत खराब थे। जब वह बोलते नहीं थे तो ठोड़ी को नीचे दबा लेते थे होंठ भींच लेते बड़ी-बड़ी भौंहों में बल डाल लेते। परिणाम-

१ एक स्टोन १४ पौंड अर्थात करीब ७ सेर का होता है।

स्वरूप उनके चेहरे पर निषेध करनेवाली गंभीरता आ जाती थी। हंसते तो वह शायद ही कभी हों।

मैंने जिन्ना को सुझाया कि धार्मिक विद्वेष राष्ट्रीयता और सीमाओं ने मानवता को संतप्त कर दिया है और युद्ध कराया है संसार को समरसता की आवश्यकता है नये-नये पाकिस्तानों की नहीं।

"आप तो आदर्शवादी हैं," जिन्ना ने उत्तर दिया—"मैं व्यवहारवादी हूं। मैं तो जो है उसीको लेता हूं। मिसाल के लिए, फ्रांस और इटली को ही ले लीजिये। उनके रीति-रिवाज और मजहब एक है। उनकी जुबानें भी एक-सी हैं। फिर भी वे अलग-अलग हैं।

"तो क्या आप यहां भी वही गड़बड़-घोटाला पैदा करना चाहते हैं, जो यूरोप में है?" मैंने पूछा।

"मुझे तो उन विभेदक विशेषताओं का सामना करना होगा जो मौजूद हैं," उन्होंने कहा।

जिन्ना धर्मनिष्ठ मुसलमान नहीं थे। वह शराब पीते थे और सूअर का मांस खाते थे जो इस्लामी शरियत के खिलाफ है। वह शायद ही कभी मस्जिद में जाते हों और न अरबी जानते थे न उर्दू। चालीस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने धर्म से बाहर एक अठारह-वर्षीय पारसी युवती से विवाह किया। दूसरी ओर, जब उनकी इकलौती सुन्दर पुत्री ने एक ईसाई बने हुए पारसी से विवाह किया तो उन्होंने उसे त्याग दिया। उनकी पत्नी भी उन्हें छोड़ गई और कुछ ही दिन बाद १९२९ में मर गईं। पिछले वर्षों में उनकी बहन फातिमा जो दांतों की डाक्टर थी और जिन्होंने शक्ल-सूरत की थी उनकी सदा की साथिन और सलाहकार बन गईं।

अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में जिन्ना ने हिंदुओं और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया। १९१७ में मुस्लिम लीग के जलसे में हिंदुओं के कथित प्रभुत्व पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"डरो मत। यह एक हौवा है, जो आपको इसलिए दिखाया गया है कि आप उस सहयोग और एके से डरकर भाग जायें जो निजी हुकूमत के लिए जरूरी है।

जिन्ना कभी कांग्रेस के नेता थे। उनके घर पर हुई दो में से पहली मुलाकात में उन्होंने मुझसे कहा—"होमरूल लीग में नेहरू ने मेरे मातहत काम किया। गांधी ने भी मेरे मातहत काम किया। जब मुस्लिम लीग बनी तो मैंने कांग्रेस को राजी किया कि वह हिंदुस्तान की आजादी के रास्ते में एक कदम के तौर पर लीग को

मुबारकबाद दे। १९१५ में मैंने बम्बई में लीग और कांग्रेस के जलसे एक ही वक्त रखवाये ताकि एके का जज्बा पैदा हो। अंग्रेजों ने इस एके में खतरा देखकर सुली सभा भंग करवा दी। मेरा मकसद हिंदू-मुस्लिम एका था। इसलिए बैठक अंद जगह में हुई। १९१६ में मैंने लखनऊ में दोनों के जलसे एक साथ करवाये और लखनऊ-समझौता कराने में मेरा ही हाथ था। १९२० तक जब गांधी रोशनी में आये यही हालत थी। अब हिंदू-मुस्लिम संबंध बिगड़ने लगे। १९३१ में गोलमेज परिषद में मुझे यह साफ दीखने लगा कि एके की उम्मीद फिजूल है गांधी यह नहीं चाहते। मैं मायूस हो गया। मैंने इंग्लैंड में ही रहने का इरादा कर लिया। १९३५ तक मैं वहीं रहा। हिंदुस्तान लौटने का मेरा इरादा नहीं था। लेकिन हर साल हिंदुस्तान से आनेवाले दोस्त मुझे हालात बतलाते थे और कहते थे कि मैं बहुत कुछ कर सकता हूं। आखिर मैंने हिंदुस्तान वापस आने का इरादा किया।"

जिन्ना एक सांस में ताव के साथ ये सब बातें कह गये। कुछ ठहरकर और सिगरेट का कश लगाकर उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"ये सब बातें मैं आपको यह बताने के लिए कह रहा हूं कि गांधी आजादी नहीं चाहते। वह नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जायें। वह तो सबसे पहले हिंदू हैं। नेहरू नहीं चाहते कि अंग्रेज चले जायें। वे दोनों 'हिंदू राज' चाहते हैं।

'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता जार्ज ई० जोन्स जो जिन्ना से कई बार मिले थे अपनी पुस्तक 'टम्यूमल्ट इन इंडिया' में लिखते हैं—"जिन्ना एक जबरदस्त राजनीतिक कारीगर हैं यह मैकियावेली[1] की नीतिशून्य परिभाषा में आते हैं। उनकी व्यक्तिगत कमियां हैं—कुछ मर्मभेदी एकाकीपन अहंकार तथा संग दृष्टिकोण। वह बहुत ही संयमी व्यक्ति हैं जो यह समझते हैं कि जीवन में अनेक बार उनके साथ अन्याय हुआ है। उनकी ललित तीक्ष्णता मानसिक रोष की सीमा पर पहुंच गई है। अपने ही में रमे हुए और दूसरों से विलग जिन्ना इतने घमंडी हैं कि अशिष्ट बन गये हैं।"

जिन्ना के सिवा मुस्लिम लीग के सारे अगुआ लोग बड़े-बड़े जागीरदार, जमींदार और नवाब थे। मुस्लिम लीग को चंदा देनेवाले इन जमींदारों ने मुसलमान किसानों को हिंदू किसानों से जुदा करने के लिए मजहब का सहारा लिया।

मुसलमानों का उच्च-वर्ग (जमींदार लोग) और मध्यम-वर्ग जिन्ना के लिए

---

१ मध्य-युगीन इटली का एक कूटनीतिज्ञ।

तैयार था लेकिन अपनी संख्या बढ़ाने के लिए उन्हें किसानों की जरूरत थी। उन्हें जल्दी पता लग गया कि मजहबी जोश उभाड़कर वह मुसलमान किसानों को मिला सकते हैं। इसका गुर था पाकिस्तान मुसलमानों का अलग राज्य।

जिन्ना की सूझ कि पाकिस्तान में छः करोड़ मुसलमान शामिल थे जो मुस्लिम बहुमतवाले प्रांतों में बसे हुए थे और हिंदू प्रभुत्व से बचे हुए थे। लेकिन ऐसा पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए जिन्ना का मुसलमानों की मजहबी और राष्ट्रवादी भावनाएं उभाड़ना जरूरी था और बदले में यह खतरा उठाना भी जरूरी था कि हिंदू बहुमतवाले प्रांतों में हिंदुओं की भावनाएं भी इसी तरह उभड़ जायं और उनमें रहनेवाले मुसलमानों को हानि उठानी पड़े।

जिन्ना यह दांव खेलने को तैयार हो गये।

धर्मविहीन जिन्ना एक धार्मिक राज्य बनाना चाहते थे। पूर्णतया धार्मिक गांधी एक धर्म-निरपेक्ष राज्य चाहते थे।

इसमें संदेह नहीं कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक संबंधों को आपसी मनोबल और आपसी रियायतें दरकार थीं। गांधीजी को मनुष्य के स्वभाव में इतना विश्वास था कि वह समझते थे कि धैर्य के साथ यह संभव है।

इसके विपरीत जिन्ना तुरंत दो टुकड़े चाहते थे। गांधीजी राष्ट्रीयता की डोरी से भारत को एक करना चाहते थे जिन्ना धर्म की बारूद का उपयोग करके उसके दो टुकड़े करना चाहते थे।

१९४४ में जेल से रिहाई के समय से लेकर १९४८ में मृत्यु के समय तक विभाजन की दुधारी तलवार गांधीजी के सिर पर लटकी रही।

जून १९४४ में जब गांधीजी बीमारी के बाद कुछ स्वस्थ हुए, तो वह राजनैतिक अखाड़े में फिर उतर आये। उन्होंने मुलाकात के लिए वाइसराय वेवल को लिखा। वेवल ने उत्तर दिया—"हमारे दोनों के दृष्टिकोणों के बीच मूलभूत मत भेद का विचार करते हुए फिलहाल हमारा मिलना किसी अर्थ का नहीं हो सकता।

तब गांधीजी ने अपना ध्यान जिन्ना पर केंद्रित किया। गांधीजी सदा से महसूस करते थे कि यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो जाय तो इंग्लैंड को भारत को स्वाधीनता देनी पड़ेगी।

राजगोपालाचारी की प्रेरणा से गांधीजी ने १७ जुलाई को जिन्ना को पत्र लिखा जिसमें आपसी बातचीत का सुझाव था।

लंबा चौड़ा पत्र-व्यवहार हुआ। गांधीजी और जिन्ना की बातचीत ६ सितंबर को शुरू हुई और २६ सितंबर को टूट गई। इसके बाद सारा पत्र-व्यवहार समाचार पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया।

गांधीजी और जिन्ना के बीच दीवार थी दो राष्ट्रों का सिद्धांत।

"क्या हम 'दो राष्ट्रों' के प्रश्न पर मतभेद के बारे में एकमत नहीं हो सकते और फिर इस समस्या को आत्म-निर्णय के आधार पर हल नहीं कर सकते ?" गांधीजी ने दलील दी।

गांधीजी का सुझाव था कि मुस्लिम बहुमतवाले बलूचिस्तान सिंध तथा सीमांत प्रांत में और बंगाल आसाम तथा पंजाब के हिस्सों में भारत से विलग होने के बारे में मत लिये जाय। अगर विलग होने के पक्ष में मत आयें तो यह करार कर लिया जाय कि भारत आजाद हो जाने के बाद जल्दी-से-जल्दी इनका एक अलग राज्य बना दिया जाय।

जिन्ना ने तीन बार 'नहीं' कहा। वह अंग्रेजों के भारत में रहते हुए विभाजन चाहते थे। मत लेने की उनकी गिराली योजना थी। वह चाहते थे कि विलग होने के प्रश्न का निपटारा केवल मुसलमानों के बहुमत से किया जाय। स्पष्ट है कि *गांधीजी जिन्ना के इस सुझाव को नहीं मान सकते थे।*

वाशिंगटन के ब्रिटिश दूतावास द्वारा संकलित गांधी जिन्ना बातचीत संबंधी कागजों में लिखा है— 'मि जिन्ना मजबूत स्थिति में हैं। उनके पास देने को वह चीज है जिसकी मि गांधी को बेहद और फौरन जरूरत है, अर्थात् अधिकार का एक महत्त्वपूर्ण भाग तुरत लेने के वास्ते ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के लिए मुसलमानों का सहयोग। इसके विपरीत मि गांधी के पास देने को कोई चीज नहीं है जिसके लिए मि जिन्ना ठहर न सकते हों। मि जिन्ना की निगाह में एक या दो साल पहले स्वाधीनता की संभावना मुसलमानों की सुरक्षा के मुकाबले में कुछ नहीं है।

एक चतुर डौनिंगस्ट्रीट के पैतरों का यह चतुर विश्लेषण है। जिन्ना स्वाधीनता के लिए ठहर सकते थे। गांधीजी समझते थे कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उससे अधिक उपयुक्त समय नहीं है।

इस समय इतिहास ने बीच में आकर जिन्ना के मनसूबे बिगाड़ दिये। और फिर कायदे जिन्ना ने इतिहास बिगाड़ दिया।

तीसरा भाग

दो राष्ट्रों का उदय

१

स्वाधीनता के द्वार पर

१ अगस्त १९४४ को मैं वेंडल विल्की से उनके दफ्तर में जो न्यूयार्क बंदरगाह के किनारे था मिला। वह नेक आदमी थे। सितंबर १९४४ में उनकी मृत्यु से अमरीका की एक अमूल्य निधि चली गई। उन्होंने कहा था— 'युद्ध तो दस में से सात हिस्से जीता जा चुका है परंतु शांति दस में से नौ हिस्से हारी जा चुकी है।' उन्होंने सारे पूर्व का दौरा किया था और यूरोप तथा एशिया के बीच गोरे तथा काले आदमियों के बीच स्वतंत्र लोगों तथा औपनिवेशिक पराधीनों के बीच पुराने संघर्षों को स्थायी होते हुए देखा था। वह महसूस करते थे कि या तो नया विश्व बनेगा या नया विश्व-युद्ध होगा।

दूसरे लोग भी अनुभव करने लगे थे कि अधिनायकशाही के विरुद्ध युद्ध से आजादी के क्षेत्र को विस्तृत करने का नैतिक कर्तव्य उत्पन्न हो जाता है।

ज्यों-ज्यों इंग्लैंड विजय के निकट पहुंचता जा रहा था त्यों-त्यों स्पष्ट होता जाता था कि भारत में राजनैतिक परिवर्तनों को टाला नहीं जा सकता।

१९४५ तक भारत इतना मुंहजोर हो चुका था कि उसे काबू में नहीं रखा जा सकता था और इंग्लैंड ने युद्ध में इतना भारी नुकसान उठाया था कि गांधीजी के साथ दूसरी अहिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए, या गांधीजी चाहे जो कहें, तो हिंसात्मक लड़ाई को दबाने के लिए जन तथा धन का जो जबरदस्त खर्च जरूरी होता उसका वह इरादा भी नहीं कर सकता था।

लार्ड वेवल को तो यह चीज खासतौर पर नजर आने लगी थी। भारत सचिव लिओपोल्ड एस. एमरी ने १४ जून १९४५ को ब्रिटिश लोक सभा में कहा था— "भारतीय शासन जिस पर जापान के विरुद्ध युद्ध ने तथा युद्धोत्तर नियोजन ने महान कार्यों का भारी बोझ डाल दिया है अब वर्तमान राजनैतिक तनाव से और भी अधिक दब गया है। इस भारतीय शासन के निर्देशक वेवल थे।

वेवल एक सेनानायक कवि और असाधारण व्यक्ति थे।

१९४३ में चर्चिल ने वेवल को वाइसराय नियुक्त किया।

मार्च १९४५ में वेवल लंदन गये।

लंदन के 'टाइम्स' ने २ मार्च १९४५ को अपने संपादकीय लेख में भारत के बारे में अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए लिखा था—"लोगों में व्यापक विश्वास फैला हुआ है कि इस देश को राजनैतिक पहल फिर से शुरू करनी चाहिए। पहला सुझाव तो यह है कि भारतवासियों को पूर्ण सत्ता हस्तांतरित किये जाने की तैयारी के लिए सरकारी मशीन का ढांचा कर्मचारियों की नियुक्ति तथा सरकारी पद्धति बदलनी चाहिए। दूसरे, भारत के दलों तथा हितों को पंगु करनेवाले आपसी विरोधों का लगातार कायम रहना अंग्रेजी तथा भारतीय राजनीतिज्ञता के लिए लज्जा की बात है।

इंग्लैंड का जनमत यहां तक कि कट्टर जनमत भी भारत के बारे में चर्चिल की हठधर्मी-युक्त अचल स्थिति का साथ छोड़ता जा रहा था।

वेवल लंदन में लगभग दो महीने ठहरे। भविष्यवक्ता लोग इंग्लैंड के आसन्न आम चुनावों में मजदूर दल की विजय की भविष्यवाणी कर रहे थे। विदेश नीति आमतौर पर गृह नीति का प्रतिबिंब हुआ करती है और वेवल के कार्यकाल के अभी चार वर्ष बाकी थे।

अप्रैल १९४५ में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र का मसविदा बनाने के लिए होनेवाली सान फ्रांसिस्को-कान्फ्रेंस से पहले भारतीय तथा विदेशी संवाददाताओं ने महात्माजी से वक्तव्य मांगा। गांधीजी ने दृढ़ता से कहा— "भारत की राष्ट्रीयता का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीयता। जबतक मित्रराष्ट्र युद्ध की प्रभावकारी शक्ति में तथा उसके साथ चलनेवाली धोखा धड़ी और चालबाजी में विश्वास नहीं त्याग देते और जबतक वे सब जातियों तथा राष्ट्रों की आजादी तथा समानता पर आधारित सच्ची शांति गढ़ने के लिए दृढ़-संकल्प नहीं होते तबतक न तो मित्रराष्ट्रों के लिए शांति है न संसार के लिए। भारत की आजादी संसार की सब शोषित जातियों को प्रदर्शित कर देगी कि उनकी आजादी निकट है और आगे से किसी भी हालत में उनका शोषण नहीं किया जायेगा।

"शांति औचित्यपूर्ण होनी चाहिए। गांधीजी ने आगे कहा—"इसमें न तो दंड और न ही बदले की भावना के लिए स्थान होना चाहिए। जर्मनी और जापान अपमानित नहीं होने चाहिएं। सशक्त कभी बदले की भावना नहीं रखता। इसलिए शांति के फल का समान वितरण होना चाहिए। तब प्रयत्न उनको मित्र बनाने का होगा। मित्रराष्ट्र अपने लोकतंत्र को अन्य किसी उपाय से सिद्ध नहीं कर सकते। लेकिन उन्हें डर था कि सान फ्रांसिस्को-कान्फ्रेंस के पीछे अविश्वास

और भय की भड़काएं थीं जो लड़ाई को जन्म देती हैं।

गांधीजी जानते थे कि साम्राज्यवादी शक्ति की भूख बहुत है और निर्धनता दोनों की जननी है। इसमें किसे शक था कि १९६ से पहले भारत आज़ाद हो जायगा और साथ ही अधिकांश दक्षिण-पूर्व-एशिया भी? इसमें किसे शक था कि यदि वे आज़ाद नहीं हुए, तो पश्चिम का जीवन भयानक स्वप्न बन जायगा और यूरोप का पुनरुत्थान असंभव हो जायगा?

ये विचार भारत के प्रति इंग्लैंड के रुख का निर्माण करने लगे थे।

वेवल भारत के लिए एक नई योजना पर ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेकर नई दिल्ली वापस आये और १४ जून को उन्होंने इसे आकाशवाणी से प्रसारित किया। उसी दिन उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आज़ाद को तथा जवाहरलाल नेहरू और अन्य नेताओं को छोड़ दिया। २५ जून को उन्होंने भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों को शिमला बुलाया।

कांग्रेस के नेता आने के लिए राज़ी हो गये। जिन्ना मुस्लिम लीग के अध्यक्ष की हैसियत से और लियाकतअली खां उसके मंत्री की हैसियत से शामिल हुए। खिज़्रहयात खां और ख्वाजा नाज़िमुद्दीन को अपने-अपने प्रांतों के भूतपूर्व प्रधान मन्त्रियों की हैसियत से निमंत्रण दिया गया। इसके अतिरिक्त मास्टर तारासिंह सिखों के प्रतिनिधि थे और श्री शिवराज हरिजनों के। गांधीजी प्रतिनिधि तो नहीं थे परंतु वह शिमला गये और जब तक चर्चाएं चलती रहीं तब तक वहां रहे।

वेवल-योजना के अनुसार वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल में केवल दो अंग्रेज रखे गये थे—वाइसराय तथा प्रधान सेनापति। बाकी सब भारतीय होंगे। इस प्रकार विदेशी मामले वित्त पुलिस आदि विभाग भारतीयों के हाथ में रहते।

परंतु फिर भी शिमला-सम्मेलन असफल हो गया। वेवल ने इसके लिए जिन्ना को दोषी ठहराया।

वेवल-योजना में यह विधान था कि वाइसराय की कौंसिल में मुसलमानों तथा सवर्ण हिंदुओं का समान अनुपात हो। कांग्रेस को इस पर आपत्ति थी परंतु कांग्रेस समझौते के लिए इतनी उत्सुक थी कि उसने इस मुद्दे को मान लिया।

वेवल ने सब दलों के नेताओं से उनकी सूचियां मांगीं। जिन्ना के सिवा सबने सूचियां भेज दीं।

जिन्ना ने शिमला-सम्मेलन को ध्वंस किया इसका एक कारण नज़र आया।

उन्होंने इसरार किया कि वाइसराय की कौंसिल के तमाम मुसलमान-सदस्यों को मुसलमानों के नेता होने के नाते वह नामज़द करें।

मुस्लिम भारत का प्रतिनिधि होने के जिन्ना के दावे को न तो वेवल कबूल कर सकते थे न गांधीजी जो पर्दे के पीछे से कांग्रेस की नीति का संचालन कर रहे थे।

शिमला-सम्मेलन की नौका इस चट्टान से टकराकर डूब गई। भारत के तथा इंग्लैंड के अंग्रेज अधिकारी जिन्ना के सहयोग के बिना कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं हुए।

शिमला-सम्मेलन के दौरान में यूरोप में युद्ध का अंत हो गया था। २६ जुलाई को मजदूर दल ने अनुदार दल को निश्चित रूप से हरा दिया विन्स्टन चर्चिल के स्थान पर क्लिमेंट आर एटली प्रधान मंत्री बने।

१४ अगस्त को महान शक्तियों ने जापान का आत्म-समर्पण स्वीकार कर लिया।

इंग्लैंड की मजदूर सरकार ने तुरंत घोषणा की कि वह 'भारत में स्व-शासन की शीघ्र प्राप्ति' कराना चाहती है और वेवल को लंदन बुलाया। मजदूर सरकार के निश्चयों की १६ सितंबर १६४५ को एटली ने लंदन से और वेवल ने नई दिल्ली से घोषणा की।

कांग्रेस कार्य-समिति ने इन प्रस्तावों को अस्पष्ट, अपर्याप्त और असंतोष जनक समझा परंतु सरकार का रुख मेल करने का था।

सारे दल चुनाव लड़ने के लिए तैयार हो गये।

विधानमंडलों में गैर-मुस्लिम स्थानों पर कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और मुस्लिम स्थानों पर मुस्लिम लीग को।

गतिरोध भंग नहीं हुआ।

दिसंबर १६४५ में कलकत्ता में बोलते हुए वेवल ने भारत के लोगों से अपील की कि जब वह 'राजनैतिक तथा आर्थिक अवसर के द्वार पर' खड़े हैं तो उन्हें झगड़े तथा हिंसा से बचना चाहिए।

गांधीजी भी कलकत्ता में ही थे। उन्होंने बंगाल के अंग्रेज गवर्नर रिचर्ड केसी के साथ कई घंटे बिताये। उन्होंने वाइसराय से भी एक घंटा बातचीत की। जब वह वाइसराय भवन से निकले तो विशाल भीड़ ने उनका रास्ता रोक लिया कि जबतक वह भाषण नहीं देंगे तबतक कार को आगे नहीं बढ़ने दिया जायगा। वह

कार में खड़े हो गये और बोले— 'शांति के अपने संदेश के कारण ही भारत ने पूर्व में महान प्रतिष्ठा प्राप्त की है।' इसके बाद भीड़ ने उनके लिए रास्ता बना दिया।

उसी दिन जिन्ना ने बंबई में वक्तव्य दिया—"हम भारत की समस्या को दस मिनट में हल कर सकते थे—यदि मि॰ गांधी कह देते 'मैं मानता हूं कि पाकिस्तान होना चाहिए। मैं मानता हूं कि भारत का एक-चौथाई भाग जिसमें छः प्रांत—सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब और सीमा प्रांत—शामिल हैं इन प्रांतों की मौजूदा सीमाओं के साथ पाकिस्तान बनता है।'

परन्तु गांधीजी यह नहीं कह सकते थे, न उन्होंने यह कहा ही। वह तो भारत के अंग भंग को घोर पाप मानते थे।

२

भारत दुविधा में

गांधीजी कहा करते थे कि वह सवा सौ वर्ष जीना चाहते हैं, लेकिन न तो 'चलती-फिरती लाश होकर और न अपने कुटुंबियों तथा समाज पर भार होकर'। पहले उन्होंने बतलाया कि यह शरीर से स्वस्थ कैसे बने रहें। १९ १ में उन्होंने दवा की शीशी फेंक दी और उसके बजाय प्राकृतिक चिकित्सा तथा नियमित आहार विहार की शरण ली। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने 'अनासक्ति' की भावना को जो दीर्घायु की कुंजी है। गांधीजी कहते थे— हरएक को फल की इच्छा किये बिना कर्म करते हुए सवा सौ वर्ष जीने का अधिकार है और जीने की इच्छा करनी चाहिए। कर्म में प्रवृत्ति परंतु उसके फल से निवृत्ति 'कर्मनातीत आनंद' है, 'अमृत' है, जो जीवनदाता है। इससे 'कठिनता अथवा अधीरता' के लिए कोई स्थान नहीं रहता। अहंकार मृत्यु है, स्वार्थ त्याग जीवन है।

गांधीजी ने एक नया प्रेम हाथ में लिया—निसर्गोपचार। इसे वह अपना 'हाल का पैदा हुआ बच्चा' कहते थे। दूसरे बड़े बच्चे थे—खादी, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय भाषा का विकास, अन्न-उत्पादन, भारत के लिए स्वतंत्रता, भारतीयों के लिए स्वाधीनता और विश्व-शांति—उनका शक्तिशाली पोषण पाते रहे। नये बच्चे के लिए एक घर बनाया गया जिसके गांधीजी तीन ट्रस्टियों में से एक थे।

गांधीजी के चिकित्सक डा० दीनशा मेहता का पूना शहर में एक निसर्गोपचार केंद्र था। इसलिए यह तय हुआ कि ट्रस्ट के पहले कदम के रूप में उसी केंद्र को बढ़ाकर निसर्गोपचार-विश्वविद्यालय बना दिया जाय।

लेकिन एक सोमवार को गांधीजी ने इस योजना को छोड़ने का निश्चय कर लिया। उन्होंने स्वीकार किया— मुझे सूझा कि मैं मूर्ख था जो यह उम्मीद करता था कि गरीबों के लिए शहर में संस्था खड़ी करूं। वह निसर्गोपचार को गरीबों के पास ले जाना चाहते थे और यह आशा नहीं रखते थे कि गरीब उनके पास आयें। इस मूल में एक शिक्षा निहित थी—"किसी भी बात को वेद-वाक्य मत मानो भले ही वह किसी महात्मा ने क्यों न कही हो जबतक कि वह तुम्हारे मस्तिष्क और हृदय को न जंचे। गांधीजी यंत्रवत प्राणायाम को नापसंद करते थे।

वह गांव में निसर्गोपचार का कार्य प्रारंभ करेंगे। उन्होंने लिखा—"यही सच्चा भारत है, मेरा भारत जिसके लिए मैं जीवित रहता हूं। उन्होंने तत्काल अपने इरादे पर अमल किया। थोड़े ही दिनों में वह पूना-शोलापुर रेलवे लाइन पर तीन हजार की आबादीवाले उरली नामक गांव में जम गये जहां पानी प्रचुर मात्रा में था अच्छी जलवायु थी फलों के बागीचे थे तार-डाकघर था पर टेली फोन नहीं था।

पहले दिन ३० किसान निसर्गोपचार-केंद्र में आये। गांधीजी ने स्वयं ६ की परीक्षा की। हर रोगी को उन्होंने एक ही चीज बताई भगवान का बराबर नाम लो धूप-स्नान लो मालिश और कटि-स्नान गाय का दूध छाछ फलों का रस और खूब पानी। भगवान का नाम ओठ हिलाने से कुछ अधिक होना चाहिए। सारे जीवन भर और जबतक आप जीयें उसमें पूरी आस्था बनी रहनी चाहिए। गांधीजी ने बताया—"सारे मानसिक और शारीरिक कष्ट एक ही कारण से होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनका इलाज भी एक ही हो। उन्होंने कहा कि हममें से हरएक आदमी शरीर या मस्तिष्क से रोगी है। राम-नाम के जाप के साथ-साथ मुचित सफाई, सेवा और आत्म-त्याग पर ध्यान केंद्रित करने से मिट्टी की पट्टी स्नान और मालिश द्वारा लाभ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

पदार्थ के ऊपर मन तथा मन स्थिति की शक्ति का गांधीजी स्वयं हा एक प्रमाण थे। युवावस्था के बाद तथा युवावस्था में भी वह स्वास्थ्य की ओर पूरा

ध्यान देते थे। वह अपने आस-पास हरएक प्राणी की शुश्रूषा करते थे। वह दुखी के दुख से दुखी होते थे। उनमें असीम करुणा की क्षमता थी।

स्नेहमयी माता हृदय से इच्छा करती है कि अपने बच्चे का रोग अपने ऊपर ले ले, परंतु उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। गांधीजी के उपवास अछूतों, दलितों, हिंदुओं तथा मुसलमानों की पीड़ाएं दूर करने की आशा में आत्म-पीड़न होते थे। वह पीड़ा देनेवालों के लिए प्रायश्चित करते थे। दुख मिटाने तथा पीड़ा कम करने का आंतरिक दबाव मानो गांधीजी के हृदय की गहराई में से निकलनेवाली प्रेरणा थी। गांधीजी का विश्वास था कि उनका मिशन पीड़ा का निवारण है। वह भारत के चिकित्सक थे। जीवन के अंतिम दो वर्षों में भारत ने उन्हें खूब व्यस्त रखा।

देश में अन्न और वस्त्र का अकाल था। "अन्न-वस्त्र के व्यापारियों को संचय या सट्टा नहीं करना चाहिए," उन्होंने १७ फरवरी १९४६ को लिखा—"जहां-जहां पानी उपलब्ध हो या किया जा सकता हो, वहां समूची कृषि-योग्य भूमि पर खेती होनी चाहिए। सारे समारोह बंद हो जाने चाहिएं।

वह बंगाल, आसाम और मद्रास में घूम रहे थे। "अधिक अन्न उपजाओ" उनका नारा था। "शाकों" उनका अनुरोध था। "पानी की प्रत्येक बूंद, चाहे वह स्नान से आती हो या हाथ-मुंह धोने से या रसोई-घर से, शाक भाजी की क्यारियों में जानी चाहिए।" उन्होंने शहर के निवासियों से कहा—"शाक-भाजी गमलों और टूटे-फूटे पुराने बरतनों तक में उगानी चाहिए।

भूख के कारण देश की बढ़ी हुई संतानोत्पत्ति का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। गांधीजी ने कहा—"खरगोश की भांति अबाधित बच्चा जनना निश्चय ही बंद हो जाना चाहिए, लेकिन उससे और बहुत-सी बुराइयों को जन्म नहीं मिलना चाहिए। वह ऐसी पद्धति से रुकना चाहिए, जिससे मानव-जाति गौरवान्वित होती है, अर्थात आत्म-संयम के स्वर्ण उपाय द्वारा।

आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण लूट-मार तथा अन्य हिंसात्मक विस्फोट होने लगे थे। बंबई में भारी दंगा हो गया, कलकत्ता, दिल्ली तथा अन्य शहरों में लोगों ने आग लगा दी, रास्ता चलनेवालों को नारे लगाने पर मजबूर किया और अंग्रेजों के टोप उतरवा दिये। गांधीजी ने इनकी कड़ी लानत-मलामत की।

१ फरवरी १९४६ को गांधीजी ने लिखा—"अब जबकि यह लगने लगा है कि हम स्वतंत्र हो रहे हैं, अनुशासनहीनता और हुल्लड़बाजी

भेद होनी चाहिए और मैत्री कठोर अनुशासन सहयोग तथा सद्भावना को इनका स्थान ग्रहण करना चाहिए। मैं इस आशा को गले से लगाये हुए हूं कि जब जनता पर वास्तविक जिम्मेवारी आयगी और जनता कमानेवाली विदेशी सेना का मसला भार हट जायगा तब हम स्वाभाविक गौरवशील तथा सिपाही बन जायगे।

प्रधान मंत्री एटली ने घोषणा की कि लार्ड पैथिक लारेंस सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा एल्बर्ट वी. अलेक्जेंडर का एक ब्रिटिश केबिनेट मिशन स्वतंत्रता की शर्तें तय करने के लिए भारत भेजा जा रहा है। गांधीजी ने स्वीकार किया—"मैं जोर देकर कहता हूं कि ब्रिटिश सरकार के बयानों पर अविश्वास करना और पहले ही से झगड़ा खड़ा करना दुर्बलता के अभाव का द्योतक है। क्या सरकारी प्रतिनिधि-मंडल एक महान राष्ट्र को धोखा देने के लिए आ रहा है? ऐसा सोचना न तो पुरुषोचित है न स्त्रियोचित।

केबिनेट मिशन इंग्लैंड से रवाना होकर २४ मार्च को नई दिल्ली आ पहुंचा और उसने आते ही भारतीय नेताओं से मुलाकातें शुरू कर दीं। अंग्रेज मंत्रियों से मिलने के लिए गांधीजी भी दिल्ली आ गये। पैथिक लारेंस लिखते हैं—"मेरी प्रार्थना पर, आनेवाले महीनों में दिल्ली की कड़ी गर्मी की परवाह न करके वह वार्ताओं की प्रगति के पूरे दौरान में हमारे तथा कांग्रेस कार्य-समिति के संपर्क में रहे।

कई सप्ताह की भाग-दौड़ के बाद जब कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला तो केबिनट मिशन ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को शिमला के सम्मेलन के लिए चार-चार प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण दिया। गांधीजी प्रतिनिधि नहीं थे परंतु परामर्श के लिए हर समय उपलब्ध रहे। बाद के दर्जे पर नेहरू और जिन्ना व्यक्तिगत तौर पर मुहों से जूझते रहे परंतु कोई समझौता नहीं हो पाया।

अंत में गांधीजी ने केबिनट मिशन से कहा कि वह कोई योजना निकाले।

केबिनट मिशन की योजना जो १६ मई १९४६ को प्रकाशित हुई, भारत में ब्रिटिश हुकूमत की समाप्ति का प्रस्ताव था जो इंग्लैंड की ओर से रखा गया था। उस दिन की प्रार्थना-सभा में गांधीजी ने कहा— "केबिनेट मिशन की घोषणा को आप पसंद करें या न करें, परंतु भारत के इतिहास में यह घोषणा गुरुतम महत्त्व रखती है और इसलिए विचारपूर्ण अध्ययन की अपेक्षा करती है।

गांधीजी ने इस घोषणा का चार दिन तक मनन किया और फिर बयान दिया—"(घोषणा की) सूक्ष्म परीक्षा के बाद मेरा विश्वास हो गया है कि इस

परिस्थिति में ब्रिटिश सरकार इससे बढ़िया दस्तावेज तैयार नहीं कर सकती थी।

महात्माजी ने कहा—"ब्रिटिश सरकार का एकमात्र अभिप्राय जल्दी-से-जल्दी अंग्रेजी शासन का अंत करना है।

केबिनट मिशन ने अपने वक्तव्य में घोषणा की—"बयानों के ढेर से पता चलता है कि मुस्लिम लीग के समर्थकों को छोड़कर लगभग सभी लोग भारत की एकता चाहते हैं।

फिर भी मिशन ने "भारत के विभाजन की संभावना पर बहुत बारीकी से और निष्पक्षता से" गौर किया।

परिणाम क्या निकला ?

वक्तव्य में दिये गये आंकड़ों के आधार पर मिशन ने सिद्ध किया कि पाकिस्तान के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में मुसलमानों के अतिरिक्त अल्पसंख्यक ३७.९३ प्रतिशत होंगे और उत्तरी-पूर्वी भाग में ४८.३१ प्रतिशत, जबकि शेष भारत में पाकिस्तान के बाहर, २ करोड़ मुसलमान अल्पसंख्यक रहेंगे। वक्तव्य में बताया गया—"इन आंकड़ों से पता चलता है कि मुस्लिम लीग ने जिन आधारों पर पाकिस्तान के स्वतन्त्र राज्य की मांग की है, उससे सांप्रदायिक अल्पसंख्यक समस्या हल नहीं होगी।

तब मिशन ने विचार किया कि क्या छोटा पाकिस्तान जिसमें अ-मुस्लिम भाग शामिल नहीं था बना सकना संभव है ? "ऐसे पाकिस्तान को" वक्तव्य में कहा गया—"मुस्लिम लीग ने अव्यावहारिक माना। उससे पंजाब, बंगाल और *आसाम के दो नये राज्यों में विभाजित होने की आवश्यकता पड़ती* जबकि जिन्ना इन प्रांतों को पूरा-का-पूरा चाहते थे।

मिशन ने कहा—"भारत-विभाजन से देश की प्रतिरक्षा-शक्ति कमजोर पड़ जायगी और उसके यातायात के साधन दो हिस्सों में बंट जायंगे।

"अंतिम बात भौगोलिक है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दोनों भाग ७ सौ मील के फासले पर हैं और इन दोनों के बीच यातायात लड़ाई और शांति हिंदुस्तान की सदिच्छा पर निर्भर करेंगे।

"इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह परामर्श देने में असमर्थ हैं कि जो सत्ता आज अंग्रेजों के हाथों में है उसे दो बिल्कुल अलग संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न राज्यों को सौंप दिया जाय।"

मिशन ने सिफारिश की कि नव निर्वाचित प्रांतीय विधानमंडल राष्ट्रीय संवि

धान सभा के सदस्यों का चुनाव करें। यह सभा भारत का संविधान बनाये।

इस बीच में लार्ड वेवल एक अंतरिम अथवा अस्थायी सरकार बनाने की कार्रवाई करें।

२१ मई को जिन्ना ने कैबिनेट मिशन की आलोचना की। उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि पाकिस्तान ही एकमात्र हल है।

परंतु ४ जून को मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन की योजना स्वीकार कर ली। अब सारा मामला इस पर निर्भर था कि कांग्रेस क्या करेगी।

दिल्ली की गर्मी और लू से बचने के लिए कांग्रेस कार्य-समिति मसूरी चली गई और अपने साथ गांधीजी को भी ले गई।

भारत की आंखें मसूरी पर लगी हुई थीं। कार्य-समिति ने गांधीजी के साथ विचार-विमर्श किया। ये बैठकें कितनी भाग्य-निर्णायक थीं इसे उस समय कोई नहीं जानता था।

विदेशी संवाददाता गांधीजी के पीछे-पीछे मसूरी जा पहुंचे। एक ने गांधीजी से पूछा—"यदि एक दिन के लिए आपको भारत का अधिनायक बना दिया जाय तो आप क्या करेंगे?"

यदि इस पत्रकार ने यह आशा की हो कि गांधीजी के उत्तर में कांग्रेस के चिर प्रतीक्षित निर्णय का कुछ संकेत मिलेगा तो उसे निराश होना पड़ा। "मैं उसे स्वीकार नहीं करूंगा" गांधीजी ने उत्तर दिया—"परंतु यदि स्वीकार कर लूं तो वह दिन मैं नई दिल्ली में हरिजनों की झोंपड़ियां साफ करने में तथा वाइसराय के महल को अस्पताल बनाने में बिता दूंगा। वाइसराय को इतने बड़े भवन की आवश्यकता ही क्या है?

अच्छा पत्रकार ने हठ की—"मान लीजिये कि वे आपकी अधिनायकशाही दूसरे दिन भी चालू रखें?

गांधीजी ने हंसते हुए कहा—"दूसरे दिन भी पहले दिन का ही सिलसिला होगा।"

कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर कांग्रेस की अब भी कोई प्रतिक्रिया मालूम नहीं हुई।

८ जून को गांधीजी नई दिल्ली लौट आये जहां कांग्रेस के विचार-विमर्शों का सिलसिला चलनेवाला था। ब्रिटिश-सरकार की योजना को स्वीकार करने का अनुरोध करने के लिए मद्रास से राजगोपालाचारी भी आ गये थे।

एक सप्ताह और गुजर गया मगर फिर भी कांग्रेस ने इस बारे में कोई बात नहीं बताई कि वह केबिनेट मिशन की योजना को स्वीकार करेगी या ठुकरा देगी।

१६ जून को लार्ड वेवल ने घोषणा की कि अस्थायी सरकार की रचना के प्रश्न पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच समझौता नहीं हो सका इसलिए वह उस सरकार के पदों पर चौदह भारतीयों को नियुक्त कर रहे हैं।

कांग्रेस को अब दो प्रश्नों के जवाब देने थे। अस्थायी सरकार में शामिल होना या नहीं? स्वतंत्र संयुक्त भारत के संविधान का मसविदा बनाने के लिए संविधान सभा में जाना या नहीं?

२

गांधीजी से दुबारा भेंट

मैं २५ जून १९४६ को नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर उतरा। थका हुआ था परंतु गांधीजी से तुरंत मिलने की ऐसी प्रेरणा हुई कि उसे मैं दबा न सका। मैंने सोचा कि भारत में मेरा पहला काम यही होना चाहिए कि गांधीजी से दो बातें करूं। इसलिए अपना सामान होटल के स्वागत-कक्ष में ही छोड़कर मैं टैक्सी लेकर हरिजन कालोनी में गांधीजी की कुटिया के लिए रवाना हो गया।

गांधीजी कुटिया के बाहर प्रार्थना सभा में बैठे हुए थे। करीब एक हजार आदमी वहां मौजूद थे। गांधीजी की आंखें बंद थीं। कभी-कभी वह आंखें खोलकर संगीत के साथ हाथों से ताल देने लगते थे। वहां कई भारतीय तथा विदेशी संवाददाता भी थे और मृदुला साराभाई नेहरू तथा बेबी क्रिप्स भी मौजूद थे।

मैं प्रार्थना-मंच की लकड़ी की सीढ़ियों के नीचे बैठ गया। जब गांधीजी नीचे उतरे, तो मुझे देखकर बोले—"ओ हो तुम यहां हो! अच्छा इस बार वर्षों में मेरी तंदुरुस्ती पहले से बेहतर तो नहीं हुई है?"

"मैं आपकी बात कैसे काट सकता हूं!" मैंने उत्तर दिया। वह सिर उठाकर हंसने लगे। मेरी बांह पकड़कर वह कुटिया की ओर चले। उन्होंने मेरी माता का मेरी तबीयत का और मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछा। फिर शायद यह अनुमान करके कि मैं बातचीत के लिए ठहरना चाहता हूं, उन्होंने कहा— बेबी क्रिप्स यहां आई हुई हैं। क्या कल सुबह मेरे साथ घूमने चलोगे?

शाम को मैं मौलाना अबुलकलाम आजाद के घर गया। उन्होंने नेहरू, आसफ-

मंत्री तथा कांग्रेस कार्य-समिति के अन्य सदस्यों के साथ मुझे भी रात्रि के भोजन पर बुलाया था। वे लोग उत्तेजित प्रतीत होते थे और आकाशवाणी की सरकारी खबरों को खास ध्यान से सुन रहे थे। उस दिन कांग्रेस ने अपना अंतिम निर्णय केबिनेट मिशन को और वेवल को लिखकर भेज दिया था परंतु अभी उसकी घोषणा नहीं की गई थी।

दूसरे दिन सुबह मैं बहुत जल्दी उठ गया और टैक्सी करके ५ १ बजे गांधी-जी की कुटिया पर जा पहुंचा। हम करीब आधा घंटा घूमे। गांधीजी सारे समय केबिनेट मिशन से हुई वार्ता का ही जिक्र करते रहे। अगले दिन २७ जून को मैं सुबह ५ २ बजे फिर गांधीजी के यहां गया और उनके साथ आधा घंटा घूमा। १ १ बजे मुझे जिन्ना से मिलने जाना था। इसी बीच ६ १ बजे मुझे सर क्रिप्स ने भी निमंत्रित किया था। उनके साथ बातचीत करके मैं तत्काल रवाना हुआ।

लेकिन कुछ दूर जाकर टैक्सी ने झटके दिये और खड़ी हो गई। सिख ड्राइवर ने इंजन में कुछ खटर-पटर की मगर चूंकि जिन्ना के पास पहुंचने का समय हो रहा था इसलिए मैंने तांगा किराये किया। तांगे का घोड़ा भी मरियल निकला और मैं जिन्ना के यहां पैंतीस मिनट देर से पहुंचा। मैंने बहुत क्षमा मांगी और सफाई दी कि किस तरह टैक्सी ने धोखा दिया और तांगा धीरे-धीरे चला।

उन्होंने रुखाई से कहा—"मुझे उम्मीद है, आपको चोट नहीं आई।

टैक्सी और तांगे की चर्चा से छुटकारा पाकर मैंने कहा—"ऐसा लगता है कि हिंदुस्तान आजाद होनेवाला है।"

जिन्ना ने जवाब नहीं दिया। न कुछ कहा। उन्होंने अपनी ठोड़ी झुकाई, मेरी ओर कड़ी निगाह से देखा खड़े होकर हाथ बढ़ाया और कहा—"अब मुझे जाना है।

मैंने पूछा कि क्या मैं अगले दिन फिर आ सकता हूं? नहीं वह व्यस्त होंगे। वह बंबई जा रहे हैं। क्या मैं बंबई में मिल सकता हूं? नहीं वहां भी वह व्यस्त रहेंगे। अबतक वह मुझे दरवाजे पर ले आये थे। मैं कभी नहीं जान सकूंगा कि वह मेरे देरी से आने के कारण नाराज हुए थे या भारत की आसन्न आजादी के बारे में मेरे कथन से।

सोमवार १ जुलाई को मैं हवाई जहाज से बंबई पहुंचा और मंगलवार की शाम को पूना में डा॰ दीनशा मेहता के प्राकृतिक चिकित्सा सदन गया जहां

गांधीजी ठहरे हुए थे। वहां मैं तीन दिन रहा। नेहरू भी कुछ समय के लिए वहीं थे।

५ जुलाई को मैं गांधीजी के साथ बंबई आ गया और ६ तथा ७ को कांग्रेस महा-समिति के अधिवेशन में रहा।

१६ जुलाई को मैं पंचगनी गया और वहां मैंने अड़तालीस घंटे गांधीजी के साथ बिताये।

ऐसा नहीं लगता था कि गांधीजी १९४२ के बाद से अब ज्यादा बूढ़े हो गये हों। उनके कदम अब इतने लंबे और तेज नहीं पड़ते थे परंतु न तो वह घूमने से थकते थे और न दिन दिन भर की मुलाकातों से। वह हमेशा खुश-मिजाज रहते थे।

शुरू-शुरू में नई दिल्ली में सुबह घूमते समय उन्होंने रूस के साथ युद्ध की अफवाहों के बारे में पूछा था। मैंने बताया था कि युद्ध के बारे में चर्चा तो कुछ-कुछ है, लेकिन वह सिर्फ चर्चा ही है। "आपको पश्चिम की ओर ध्यान देना चाहिए," मैंने सुझाव दिया।

"मैं ? " उन्होंने उत्तर दिया—"मैं भारत को भी नहीं समझा सका हूं। हमारे चारों ओर हिंसा-ही-हिंसा है। मैं तो खाली कारतूस हूं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद मैंने सुझाया बहुत से यूरोपियन और अमरीकन आध्यात्मिक दिवालियेपन का अनुभव कर रहे हैं। वह उसका एक कोना भर सकते हैं। भारत को भौतिक-सामग्री चाहिए। उसे इस बात का भय है कि उससे सुख जायेगा। हमारे पास भौतिक-सामग्री थी लेकिन उससे सुख नहीं आया। पश्चिम हल निकालने के लिए हाथ-पैर पीट रहा है।

"लेकिन मैं तो एशियाई हूं," गांधीजी ने कहा—"केवल एशियाई ! वह हंसने लगे फिर कुछ रुककर बोले—"ईसा भी तो एशियाई थे।

इस तथा आगे की बात में मुझे निराशा भरा स्वर दिखाई दिया लेकिन उस के पीछे आशा-भरा स्वर भी था। यदि वह १२५ वर्ष जीवित रहते तो अपने काम को पूरा करने का उन्हें काफी समय मिल जाता।

पूना के प्राकृतिक चिकित्सा भवन में मैं शाम को ८-१ बजे पहुंचा। मुझे गांधीजी का कमरा बताया गया और मैं भीतर गया। वह एक गद्दे पर बैठे हुए थे और उनका सारा शरीर सफेद दुशाले से ढका था। उन्होंने ऊपर नहीं देखा। पोस्टकार्ड लिखना समाप्त करके उन्होंने गरदन उठाई और कहा—"ओ हो ! मैं उनके सामने घुटनों के बल बैठ गया और हमने हाथ मिलाये।

"तुम 'डैक्कन क्वीन' से आये हो?" उन्होंने कहा—"उस गाड़ी पर तो खाना भी नहीं मिलता।"

मैंने कहा—"मुझे उसकी परवाह नहीं है। मुझे तो पहले ही से भोजन का निमंत्रण मिल चुका था।"

"यहां का मौसम तो आश्चर्यजनक है," मैंने कहा—"आप तो सेवाग्राम की गर्मी की यंत्रणा झेलते थे।"

"नहीं," उन्होंने आपत्ति की—"वह यंत्रणा नहीं थी। किन्तु नई दिल्ली में मैं टब में कपड़े डालकर उसी तरह बैठता था जैसाकि तुम सेवाग्राम में किया करते थे। मुझे तो टब में बैठे-बैठे लोगों से मिलने में और पत्र लिखने में भी शर्म नहीं लगती थी। यहां पूना का मौसम मजे का है।"

तुरंत ही मेरे सवाल किये बिना वह विस्तार के साथ हिंसा के बारे में बोलने लगे। उन्होंने दक्षिण अफरीका के दंगों में एक निर्दोष आदमी के मारे जाने का, भारतीयों को पेड़ से बांधकर कोड़े लगाये जाने का, अहमदाबाद के हिंदू-मुस्लिम दंगे का और फिलस्तीन के यहूदियों का जिक्र किया। वह कहने लगे कि ईसा यहूदी थे, मगर यहूदियत के सुंदरतम पुष्प थे। ईसा के बाद शिष्यों ने उनके बारे में सच्ची बात कही। परंतु पाल यहूदी नहीं थे। वह यूनानी थे और उनका दिमाग वक्तृत्व तथा तर्क से भरा था। उन्होंने ईसा के उपदेश का रूप विकृत कर दिया। ईसा में बड़ी शक्ति थी—प्रेम की शक्ति, लेकिन ईसाइयत जब पश्चिम के हाथ में पहुंची तो बिगड़ गई। वह बादशाहों का धर्म बन गई।

मैं जाने के लिए उठा। "अच्छी नींद सोइये," मैंने कहा।

"मैं तो हमेशा ही अच्छी नींद सोता हूं। आज मेरा मौन-दिवस था और मैं चार बार सोया। मैं तख्ते पर ही सो गया।"

"मालिश कराते-कराते।" एक महिला ने बतलाया।

"तुम भी यहां मालिश कराओ," गांधीजी ने अनुरोध किया।

शाम के भोजन के बाद मैं खुली छत पर लगे हुए गांधीजी के बिस्तर के पास से गुजरा। दो स्त्रियां उनके पांवों तथा पिंडलियों की मालिश कर रही थीं। उनका बिस्तर एक लकड़ी का तख्ता था, जिस पर गद्दा बिछा था तथा जिसके सिरहाने के नीचे दो ईंटें लगाई हुई थीं। मच्छरदानी लगी थी। उन्होंने मुझे पुकारा—"मुझे आशा है कि तुम सुबह जल्दी उठ जाओगे ताकि मेरे साथ नाश्ता ले सको।" उन्होंने बतलाया कि पहला नाश्ता सुबह चार बजे होता है।

"इससे तो मैं बचना चाहता हूं।"

"तो दूसरा नाश्ता ५ बजे।

मैंने मुंह बनाया और सब हंसने लगे।

"अच्छा तो तुम ६ बजे मेरे साथ तीसरे नाश्ते में शामिल होना। ९ बजे चले आना" उन्होंने कहा।

मैं सुबह ५-३ बजे उठा। जब मैंने आंगन में कदम रखा तो गांधीजी एक भारतीय से बातें कर रहे थे। उन्होंने मेरा अभिवादन किया और हम घूमने के लिए बाहर चल पड़े।

मैंने याद दिलाई—"कल रात आपने कहा था कि पास में ईसा के उपदेशों को विकृत कर दिया। क्या आपके साथ के लोग भी ऐसा ही करेंगे ?

"इस संभावना का जिक्र करनेवाले तुम पहले व्यक्ति नहीं हो" उन्होंने उत्तर दिया—"उनके भीतर क्या है, वह मुझे दिखाई देता है। हां मैं जानता हूं कि शायद वे भी ठीक वैसा ही करने का प्रयत्न करें। मैं जानता हूं कि भारत मेरे साथ है। अभी भारतवासी ऐसे हैं, जिनको मैं अहिंसा की शक्ति का कायल नहीं कर सका हूं।

उन्होंने फिर दक्षिण अफरीका में काले लोगों की यातनाओं की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने पूछा कि अमरीका में हब्शियों के साथ कैसा बर्ताव होता है। उन्होंने कहा—"सभ्यता का निर्णय अल्पसंख्यकों के साथ के व्यवहार से होता है।

एक वरिष्ठ लंकावासी से भाषित करने के बाद मेरी नजरमर ऊपर गई और मैंने गांधीजी के कमरे में झांका। उसमें दरवाजा नहीं था केवल एक पर्दा पड़ा था जिसे मैंने सरका दिया। उन्होंने मुझे देख लिया और कहा—"भीतर आ जाओ। तुम तो हर समय आ सकते हो।" वह 'हरिजन' के लिए लेख लिख रहे थे। ११ बजे तक मैं कई बार भीतर गया और बाहर आया।

डा. मेहता की पत्नी भुनवाई चनों के टुकड़ों से भरा कटोरा लाईं और उसे चटाई पर रख गईं। गांधीजी का तीसरा नाश्ता पहले ही हो चुका था। इसलिए मैं खाते-खाते उनकी बातें सुनता रहा। उन्होंने बतलाया कि वह भारत में एक वर्ग-हीन तथा जाति-हीन समाज के निर्माण का प्रयत्न कर रहे हैं। वह उस दिन के लिए तरसते थे जब सब जातियां एक हो जायं तथा ब्राह्मण लोग हरिजनों के साथ विवाह-संबंध करने लगें। "मैं सामाजिक क्रांतिवादी हूं" उन्होंने दृढ़ता से कहा—"असमानता से हिंसा की तथा समानता से अहिंसा की उत्पत्ति होती है।"

मैं जानता था कि दक्षिण अफरीका में काले लोगों के विरुद्ध बढ़ती हुई घृणा उन्हें व्याकुल [कर रही थी। मैंने कहा—"मुझे आशा है कि इस मामले में आप हिंसा की कोई चीज नहीं करेंगे। आप हिंसाशील हैं। वह हंसने लगे। मैं कहता गया—"आपके कुछ उपवास हिंसात्मक होते हैं।"

"तुम चाहते हो कि मैं केवल हिंसात्मक शब्दों तक ही सीमित रहूं। उन्होंने मत प्रकट किया।

'जी हां !"

"मैं नहीं जानता कि कब उपवास कर बैठूं उन्होंने व्याख्या करते हुए कहा—"इसको निर्धारित करनेवाला तो ईश्वर है। मुझे तो अकस्मात प्रेरणा होती है। परंतु मैं जल्दबाजी नहीं करूंगा। मरने की मेरी इच्छा नहीं है।"

शाम को प्रार्थना के समय मेंह बरसने लगा। सत्संगियों ने छाते खोल लिये। पीछे की तरफ से विरोध की ध्वनि उठी और छाते बंद हो गये।

भोजन से पहले गांधीजी ने मुझसे साथ घूमने चलने को कहा। मैंने थोड़ा विरोध करते हुए कहा—"बारिश में आप कहां घूमने जायंगे।

उन्होंने बांह फैलाकर कहा—"बुद्धेराम आओ।

जो निजी कमरा मुझे दिया गया था उसका द्वार उस छत की ओर था जहां गांधीजी सोते थे। रात को सोने के लिए जाते समय मैं उनके बिस्तर के पास से गुजरा। मैंने चुपचाप हाथ उठाकर उन्हें नमस्कार किया परंतु उन्होंने मुझे आवाज दी—"आज रात अच्छी तरह सोना। परंतु हम ४ बजे अपनी प्रार्थना से तुम्हें जगा देंगे।

"मुझे आशा नहीं है, मैंने कहा और उनके नजदीक चला गया।

उन्होंने श्रीमती मेहता से हिंदुस्तानी में या गुजराती में बात की और मुझे लगा कि वह उन्हें डांट रहे हैं। फिर मुझसे बोले—"हम तुम्हारी ही बात कर रहे हैं। तुम जानने के लिए उत्सुक हो ?

"मुझे कछ-कुछ पता लग गया" मैंने उत्तर दिया—"अब आपने मुझसे कह तो दिया मगर यह नहीं बताया कि आप क्या बात कर रहे थे। यह आपने और भी बुरा किया। जबतक आप नहीं बतलायंगे तबतक मैं सत्याग्रह करूंगा।"

"बहुत अच्छा ! उन्होंने हंसकर कहा।

"मैं सारी रात आपके बिस्तर के पास बैठा रहूंगा।

"बैठे रहो !" उन्होंने दम के साथ कहा।

"मैं यहां बैठा-बैठा अमरीकी गीत गाऊंगा।"

"बहुत अच्छा! तुम्हारे गाने से मुझे नींद आ जायगी।"

इस बात में सबको मजा आ रहा था।

अब काफी देर हो चुकी थी इसलिए मैंने विदा ली। मैंने श्रीमती मेहता से बात की। गांधीजी ने उन्हें इसलिए डांटा था कि उन्होंने ६ बजे के बजाय ११ बजे उनके कमरे में मुझे नाश्ता दिया और इसके अलावा मुझे विशेष भोजन दिया। किसीके साथ विशेष सुविधा का व्यवहार नहीं होना चाहिए।

सुबह उठकर मैं गांधीजी के कमरे में गया। उन्होंने अपने साथ घूमने चलने को कहा। मैंने भारत की राजनैतिक स्थिति में अगले कदम के बारे में उनकी सम्मति मांगी। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि कांग्रेस से मिली-जुली सरकार बनाने को कहे। तमाम अल्पसंख्यक समुदाय सहयोग देंगे।"

"क्या आप मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी शामिल करेंगे?

"अवश्य उन्होंने उत्तर दिया—"मि जिन्ना अत्यंत महत्वपूर्ण पद ले सकते हैं।"

कुछ देर बाद उन्होंने यूरोप तथा रूस की चर्चा शुरू की। मैंने कहा कि मास्को के पास संसार को देने के लिए कुछ नहीं है। वह तो राष्ट्रीयतावादी साम्राज्यवादी तथा वृहत्तर स्लाव राष्ट्र का समर्थक बन गया है। इससे पश्चिम की संतुष्टि नहीं होगी।

तुम क्यों चाहते हो कि मैं पश्चिम के पास जाऊं?

"पश्चिम के पास मत जाइये। परंतु पश्चिम से अपनी बात कहिये।"

"पश्चिमवाले मुझसे यह अपेक्षा क्यों रखते हैं कि मैं उनसे कहूं कि दो-और दो चार होते हैं? यदि वे समझते हैं कि हिंसा तथा युद्ध का मार्ग बुरा है, तो इस प्रकट सचाई को बतलाने के लिए मेरी क्या जरूरत है? इसके अलावा मेरा काम यहां अधूरा पड़ा है।"

मैंने कहा— फिर भी पश्चिम को आपकी आवश्यकता है। आप भौतिकवाद के प्रतिवाद हैं इसलिए स्तालिनवाद तथा राज्यवाद-रूपी विष की काट हैं।

नेहरू भी लुई मेनन के साथ लदन में आ पहुंचे। गांधीजी ने मुझसे कहा—"नेहरू का मस्तिष्क वस्तुस्मय है।" नेहरू ने मेनन ने मैंने तथा कुछ अन्य लोगों ने साथ बैठकर भोजन किया।

नेहरू में असीम आकर्षण विनम्रता और सहृदयता है तथा अपने भावों को

शब्दों में व्यक्त करने की प्रतिभा है। गांधीजी उन्हें कलाकार कहते थे।

गांधीजी नेहरू को पुत्र की भांति प्यार करते थे और नेहरू गांधीजी को पिता की भांति प्यार करते थे। अपने तथा गांधीजी के दृष्टिकोण की गहरी भिन्नता को नेहरू ने कभी नहीं छिपाया। गांधीजी इस स्पष्टवादिता का स्वागत करते थे। दोनों का पारस्परिक स्नेह मतैक्य पर निर्भर नहीं था।

नेहरू के मानस की गहराई में कोई चीज है जो आत्म-समर्पण के विरुद्ध विद्रोह करती है। अधिकतर भारतीय नेता जिस प्रकार बिना हिचकिचाहट के गांधीजी के आज्ञाकारी बने हुए थे उससे नेहरू का हृदय दूर भागता था। वह शंका करते थे बहस करते थे और प्रतिरोध करते थे और अंत में आत्म-समर्पण कर देते थे। वह अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता के लिए लड़ते हैं। पराजय से वह भड़कते हैं। परंतु यदि वह हार मानते हैं तो विनय और नम्रता के साथ। गांधीजी उनकी कमजोरियों को जानते थे और नेहरू स्वयं अपनी मर्यादाओं को महसूस करने लगे हैं। राजनीति में नेहरू जीवन-भर इसमत राजनीति के पेचों में उतने माहिर नहीं हो पाये जितने कि महात्माजी और पटेल। वह संयोजक नहीं हैं, जननायक हैं भीतर जोड़-तोड़ करनेवाले नहीं हैं बाहर के लिए प्रवक्ता हैं। उनकी बात का असर सबसे अधिक बुद्धिजीवियों पर पड़ता है, लेकिन वह असर दिमाग पर नहीं दिल पर पड़ता है। वह संसार के एक अग्रणी राजनीतिज्ञ हैं, परंतु राजनीतिज्ञ नहीं। वह तो राजनीतिज्ञों के बीच खोये हुए एक भले आदमी हैं।

नेहरू की पुस्तकें आत्मा का सौंदर्य आदर्श की उच्चता तथा मर्म का कोई करण प्रकट करती हैं। गांधीजी पूर्णतया बहिर्मुख प्रतीत होते थे। वह अपने लिए भार नहीं थे। नेहरू सदा अपनी समस्या से जूझते रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा सदन में दूसरे दिन के तीसरे पहर नेहरू मेरे बिस्तर पर चटी-भर पालथी लगाकर बैठे रहे और मैं वहां रखी अकेली कुर्सी पर। वह अपने प्यारे काश्मीर की यात्रा को गये थे। महाराजा ने उनका प्रवेश रोक दिया। सीमांत की चौकी पर उनका रास्ता रोकनेवाले संगीनधारी सिपाही से वह हाथापाई कर बैठे। अब उन्होंने कहा—"मुझे यकीन है कि जिस समय मैं केबिनेट मिशन के साथ वार्ताओं में लगा हुआ था उस समय ब्रिटिश एजेंट वाइसराय से पूछे बिना मुझे काश्मीर में घुसने से नहीं रोक सकता था और चूंकि ऐसा हुआ इसलिए यह नहीं लगता कि अंग्रेज भारत छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

नेहरू ने तीसरे पहर के कई घंटे गांधीजी के साथ अकेले में बिताये। शाम को

"मैं यहां बैठा-बैठा अमरीकी पीठ खाऊंगा।"

बहुत अच्छा ! तुम्हारे खाने से मुझे नींद आ जायगी।

इस बात में सबको मजा आ रहा था।

अब काफी देर हो चुकी थी इसलिए मैंने विदा ली। मैंने श्रीमती मेहता से बात की। गांधीजी ने उन्हें इसलिए डांटा था कि उन्होंने ८ बजे के बजाय ११ बजे उनके कमरे में मुझे नाश्ता दिया और इसके अलावा मुझे विशेष भोजन दिया। किसीके साथ विशेष सुविधा का व्यवहार नहीं होना चाहिए।

सुबह उठकर मैं गांधीजी के कमरे में गया। उन्होंने अपने साथ घूमने चलने को कहा। मैंने भारत की राजनैतिक स्थिति में अगले कदम के बारे में उनकी सम्मति मांगी। उन्होंने तत्काल उत्तर *दिया*—"ब्रिटिश सरकार को चाहिए कि कांग्रेस से मिली-जुली सरकार बनाने को कहे। तमाम अल्पसंख्यक समुदाय सहयोग देंगे।

"क्या आप मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी शामिल करेंगे ?

"अवश्य उन्होंने उत्तर दिया—"मि जिन्ना अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद ले सकते हैं।"

कुछ देर बाद उन्होंने यूरोप तथा रूस की चर्चा शुरू की। मैंने कहा कि मास्को के पास संसार को देने के लिए कुछ नहीं है। वह तो राष्ट्रीयतावादी साम्राज्यवादी तथा बृहत्तर स्लाव राष्ट्र का समर्थक बन गया है। इससे पश्चिम की संतुष्टि नहीं होगी।

"तुम क्यों चाहते हो कि मैं पश्चिम के पास जाऊं ?

"पश्चिम के पास मत जाइये। परंतु पश्चिम से अपनी बात कहिये।"

"पश्चिमवाले मुझसे यह अपेक्षा क्यों रखते हैं कि मैं उनसे कहूं कि वो-और दो चार होते हैं ? यदि वे समझते हैं कि हिंसा तथा युद्ध का मार्ग बुरा है तो इस प्रकट सचाई को बतलाने के लिए मेरी क्या जरूरत है ? इसके अलावा मेरा काम यहां अधूरा पड़ा है।

मैंने कहा— फिर भी पश्चिम को *आपकी आवश्यकता है*। आप नैतिकवाद के प्रतिपादक हैं इसलिए स्वार्थिनवाद तथा राज्यवाद-रूपी विष की काट हैं।

नेहरू भी कृष्ण मेनन के साथ सदन में आ पहुंचे। गांधीजी ने मुझसे कहा— "नेहरू का मस्तिष्क वस्तुतत्त्वमय है।" नेहरू ने मेनन ने मैंने तथा कुछ अन्य लोगों ने साथ बैठकर भोजन किया।

[illegible] है तथा अपने भावों को

शब्दों में व्यक्त करने की प्रतिभा है। गांधीजी उन्हें कलाकार कहते थे।

गांधीजी नेहरू को पुत्र की भांति प्यार करते थे और नेहरू गांधीजी को पिता की भांति प्यार करते थे। अपने तथा गांधीजी के दृष्टिकोण की गहरी भिन्नता को नेहरू ने कभी नहीं छिपाया। गांधीजी इस स्पष्टवादिता का स्वागत करते थे। दोनों का पारस्परिक स्नेह मतैक्य पर निर्भर नहीं था।

नेहरू के मानस की गहराई में कोई चीज है, जो आत्म-समर्पण के विरुद्ध विद्रोह करती है। अधिकतर भारतीय नेता जिस प्रकार बिना हिचकिचाहट के गांधीजी के आज्ञाकारी बने हुए थे उससे नेहरू का हृदय दूर भागता था। वह शंका करते थे बहस करते थे और प्रतिरोध करते थे और अन्त में आत्म-समर्पण कर देते थे। वह अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता के लिए लड़ते हैं। पराभव से वह भड़कते हैं। परंतु यदि वह हार मानते हैं तो विनय और नम्रता के साथ। गांधीजी उनकी कमजोरियों को जानते थे और नेहरू स्वयं अपनी मर्यादाओं को महसूस करते बने हैं। राजनीति में नेहरू जीवन-भर दलगत राजनीति के पेचों में उतने माहिर नहीं हो पाये जितने कि महात्माजी और पटेल। वह संयोजक नहीं हैं, जननायक हैं भीतर जोड़-तोड़ करनेवाले नहीं हैं बाहर के लिए प्रवक्ता हैं। उनकी बात का असर सबसे अधिक बुद्धिजीवियों पर पड़ता है लेकिन यह असर दिमाग पर नहीं दिल पर पड़ता है। वह संसार के एक अग्रणी राजनीतिज्ञ हैं परंतु राजनीतिज्ञ नहीं। वह तो राजनीतिज्ञों के बीच खोये हुए एक भले आदमी हैं।

नेहरू की पुस्तकें आत्मा का सौंदर्य आदर्श की उज्ज्वलता तथा अहं का कोरा करण प्रकट करती हैं। गांधीजी पूर्णतया बहिर्मुख प्रतीत होते थे। वह अपने लिए थार नहीं थे। नेहरू सदा अपनी समस्या से जूझते रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा भवन में दूसरे दिन के तीसरे पहर नेहरू मेरे बिस्तर पर पैर मार पालथी लगाकर बैठे रहे और मैं वहां रखी अकेली कुर्सी पर। वह अपने प्यारे काश्मीर की यात्रा को गये थे। महाराजा ने उनका प्रवेश रोक दिया। सीमांत की चौकी पर उनका रास्ता रोकनेवाले संगीनधारी सिपाही से वह हाथापाई कर बैठे। अब उन्होंने कहा—"मुझे यकीन है कि जिस समय मैं केबिनेट मिशन के साथ वार्ताओं में लगा हुआ था उस समय ब्रिटिश एजेंट वाइसराय से पूछे बिना मुझे काश्मीर में घुसने से नहीं रोक सकता था और चूंकि ऐसा हुआ इसलिए मह नहीं समझता कि अंग्रेज भारत छोड़ने की तैयारी कर रहे हैं।"

नेहरू ने तीसरे पहर के कई घंटे गांधीजी के साथ अकेले में बिताये। शाम को

मैं गांधीजी के कमरे में गया और मैंने उन्हें कातते हुए पाया। मैंने कहा कि मैं तो समझता था कि आपने कातना छोड़ दिया। "नहीं ! मैं कातना कैसे छोड़ सकता हूं ?" उन्होंने कहा—"भारतवासियों की संख्या चालीस करोड़ है। इनमें से दस करोड़ बच्चे-बेकार आदि निकाल दो। यदि बाकी के तीस करोड़ रोजाना एक घंटा काता करें, तो हमको स्वराज्य मिल जाय।

"आर्थिक प्रभाव के कारण या आध्यात्मिक प्रभाव के कारण ?" मैंने पूछा।

"दोनों ही" वह बोले—"यदि तीस करोड़ जनता दिन में एक बार एक समान काम करे, इसलिए नहीं कि किसी हिटलर की आज्ञा है, बल्कि एक आदर्श से प्रेरित होकर, तो स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए हमारे अंदर हेतु की पर्याप्त एकता हो जायगी।

"जब आप मुझसे बात करने के लिए कातना बंद करते हैं, तो स्वराज्य को पीछे हटाते हैं ?

"ठीक है," उन्होंने स्वीकार किया—"तुमने स्वराज्य को छः पग पीछे हटा दिया है।

दूसरे दिन सुबह गांधीजी और उनके करीब दस साथी और मैं पूना स्टेशन पर बंबई की गाड़ी में सवार हुए। रास्ते भर मूसलाधार पानी बरसता रहा और डिब्बे की छत से और खिड़कियों की दरारों से पानी भीतर आने लगा। रास्ते में कई स्टेशनों पर स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्त्ता गांधीजी से परामर्श करने के लिए गाड़ी में चढ़े। बीच-बीच में उन्होंने 'हरिजन' के लिए एक लेख लिखा और दूसरा लेख लिखाया। एक बार उन्होंने मेरी ओर देखकर मुस्कराया और दो-चार बातें कीं। संपादकीय-कार्य समाप्त होने पर वह लेट गये और तत्काल गहरी नींद लेने लगे। वह करीब पंद्रह मिनट सोये।

गांधीजी खिड़की के पास बैठे हुए थे। मूसलाधार वर्षा के बावजूद हरएक स्टेशन पर विशाल भीड़ जमा थी। एक स्टेशन पर दो लड़के जिनकी आयु करीब चौदह वर्ष की होगी और जो सिर से पैर तक पानी में तर हो रहे थे गांधीजी की खिड़की के बाहर हाथ उठा-उठाकर कूदने लगे और चिल्लाने लगे—"गांधीजी गांधीजी गांधीजी !" गांधीजी मुस्कराये।

मैंने पूछा—"आप इनके लिए क्या हैं ?

उन्होंने अंगूठे बाहर निकालकर दोनों हाथों की मुट्ठियां कनपटी के पास रख दबाया।

बंबई के अंतिम स्टेशन पर भीड़ से बचने के लिए गांधीजी एक छोटे स्टेशन पर गाड़ी से उतर गये। वह तथा अन्य कांग्रेसी नेता कांग्रेस महा-समिति की बैठक के लिए बंबई में एकत्र हो रहे थे। इस बैठक में कार्य-समिति के उस निर्णय पर बहस होनेवाली थी जिसमें भारत के संविधान की दूरवर्ती योजना स्वीकार की गई थी परंतु अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना अस्वीकार किया गया था।

महा-समिति का यह दो-दिवसीय अधिवेशन एक पंडाल में हुआ। मंच पर सफेद खादी बिछी हुई थी। सफेद बारीक खादी के कपड़े पहने हुए नेता लोग फर्श पर बैठे थे। मंच के बीच में बाईं ओर पीछे की तरफ एक बड़ा तख्त लगा हुआ था जिस पर सफेद खादी बिछी हुई थी। यह खाली पड़ा था। सफेद चूड़ीदार पाजामा सफेद कुर्ता और बादामी जाकट पहने हुए नेहरू अध्यक्ष के स्थान पर बैठे थे। मत देने के अधिकारी चार सौ प्रतिनिधि पंडाल में बैठे हुए थे। इनके अलावा पंडाल में सैकड़ों दर्शक तथा बीसियों भारतीय और विदेशी संवाददाता भी थे।

चर्चाओं के दौरान में एक स्त्री पीछे की ओर से मंच पर आई और तख्त पर एक चपटी पेटी रखकर चली गई। कुछ ही देर बाद गांधीजी आये तख्त पर बैठ गये और पेटी खोलकर कातने लगे।

दूसरे दिन रविवार ७ जुलाई को गांधीजी ने तख्त पर बैठे-बैठे समिति के समक्ष भाषण दिया।

यह भाषण जो बिना पूर्व तैयारी के दिया गया था 'हरिजन' में तथा भारत के अन्य समाचार-पत्रों में ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हुआ था। इसके करीब १७ बम्ब गांधीजी ने बहुत धीरे-धीरे लगभग पंद्रह मिनट में बोले मानो वह अपनी कुटिया में किसी एक आदमी से बात कर रहे हों।

उन्होंने कहा

"मुझे बताया गया है कि केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के बारे में मेरे कुछ पिछले शब्दों से जनता के दिमाग में काफी भ्रम पैदा हो गया है। एक सत्याग्रही होने के नाते मेरी सदा यह कोशिश रहती है कि पूर्ण सत्य बोलूं और सत्य के सिवा कुछ न बोलूं। मैं आपसे कभी भी कोई बात छिपाना नहीं चाहता। मानसिक दुराव से मुझे घृणा है। परंतु भावों को व्यक्त करने के लिए अच्छी-से-अच्छी भाषा भी अपूर्ण माध्यम होती है। कोई भी आदमी जो कुछ महसूस करता है या विचार करता है उसे शब्दों के द्वारा पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। पुराने जमाने के ऋषि मुनि भी इस अक्षमता का निवारण नहीं कर पाये।

"केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के संबंध में दिल्ली के अपने एक भाषण में मैंने यह जाहर कहा था कि जहां पहले मुझे प्रकाश दिखाई देता था वहां अब अंधकार दिखाई देता है। यह अंधकार अभी हटा नहीं है। शायद यह और भी गहरा हो गया है। यदि मैं अपना मार्ग स्पष्ट देख पाता तो कार्य-समिति से कह सकता था कि संविधान-सभा संबंधी प्रस्ताव को ठुकरा दे। कार्य-समिति के सदस्यों से मेरे कैसे संबंध हैं यह आप जानते हैं। बाबू राजेंद्रप्रसाद चंपारन में मेरे दुभाषिये और मुंशी का काम किया। सरदार (पटेल) के लिए मेरा शब्द कानून है। मैं दोनों मुझसे कहते हैं कि जहां पिछले अवसरों पर मैं अपनी अंतःप्रेरणा की पुष्टि तर्क के द्वारा कर सका था और उनके मस्तिष्क तथा हृदय दोनों को संतुष्ट कर सका था वहां इस बार मैं ऐसा नहीं कर सका। मैंने उन्हें बतलाया कि यद्यपि मेरा हृदय आशंकाओं से भरा हुआ था तथापि इसके लिए मैं कोई दलील नहीं दे सकता था वरना मैं उनसे कह देता कि प्रस्तावों को एकदम ठुकरा दें। अपनी आशंकाएं उनके सामने रखना मेरा कर्तव्य था ताकि वे सावधान हो जायं। परंतु मैं जो कुछ कहूं, उसकी परीक्षा उन्हें तर्क के आधार पर करनी चाहिए और मेरे दृष्टिकोण को तभी स्वीकार करना चाहिए जब उन्हें उसके सही होने का यकीन हो जाय।

"एक सत्याग्रही से मैं यह आशा नहीं करूंगा कि वह कहे कि अंग्रेज लोग जो-कुछ करते हैं वह बुरा है। अंग्रेज लोग लाजिमी तौर पर बुरे नहीं हैं। हम लोग खुद भी दोषों से बरी नहीं हैं। अगर अंग्रेजों में कुछ अच्छाई न होती तो वे अपनी मौजूदा ताकत को नहीं पहुंच सकते थे। उन्होंने आकर भारत का शोषण किया क्योंकि हम आपस में लड़ते रहे और अपना शोषण होने देते रहे। परमात्मा के जगत में शुद्ध बुराई कभी फलीभूत नहीं होती। जहां शैतान का राज्य है वहां भी ईश्वर का शासन है, क्योंकि शैतान का अस्तित्व उसीकी मर्जी पर है।

"हमको धैर्य और नम्रता और मनःशक्ति की आवश्यकता है। संविधान सभा फूलों की सेज नहीं बल्कि केवल कांटों की सेज होनेवाली है। आपको उससे दूर नहीं भागना चाहिए।

"हमको कायरता नहीं दिखानी चाहिए, बल्कि अपने काम में श्रद्धा और साहस के साथ लग जाना चाहिए। मेरे हृदय को जिस अंधकार ने घेर रखा है, उसकी परवाह न कीजिये। ईश्वर उसे प्रकाश में बदल देगा।

भाषण के बीच दो-तीन बार सबने तालियां बजाई।

कार्य-समिति के प्रस्ताव के पक्ष में २०४ मत आये और विरोध में ५१।

बरसात की गर्म और सीलभरी बंबई में कुछ दिन ठहरकर मैं जयप्रकाश-नारायण तथा उनकी पत्नी प्रभावती के साथ पचगनी के लिए रवाना हो गया जहां गांधीजी का नया मुकाम था। पूना तक तो हम लोग रेल में गये फिर कार में बैठे।

जयप्रकाश तो शाम को सतारा मे एक सभा में बोलने के लिए ठहर गये और प्रभावती तथा मैं कार द्वारा पहाड़ियों पर चढ़ते हुए और कुहरे को पार करते हुए आधी रात के लगभग पंचगनी पहुंचे।

सुबह प्रभावती ने अपना सिर गांधीजी के चरणों पर रख दिया। उन्होंने स्नेह से उसकी पीठ थपथपाई। भोजन के समय तक जयप्रकाश भी आ गये। चूंकि वहां जयप्रकाश तथा मैं—दो ही आगंतुक थे इसलिए गांधीजी से बातचीत करने का मुझे काफी अवसर मिला।

शुरू में उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने क्या देखा। मुझे संविधान सभा में विश्वास रखने तथा न रखनेवालों के बीच स्पष्ट दरार दिखाई दे रही थी।

गांधीजी—"मैं संविधान सभा को न अधिकारी नहीं मानता। मेरा विश्वास है कि वह सविनय अवज्ञा का स्थान पूरी तरह ले सकती है।

मैं—"आपका खयाल है कि अंग्रेज लोग ईमानदारी का खेल रहे हैं?"

गांधीजी—"मेरा खयाल है कि इस बार अंग्रेज ईमानदारी का खेल खेलेंगे।

मैं—"आपको यकीन है कि वे भारत छोड़कर जा रहे हैं?

गांधीजी—"हां।

मैं—"मुझे भी यकीन है। परंतु मैं जयप्रकाश को यकीन नहीं दिला सकता। लेकिन फर्ज कीजिये कि अंग्रेज नहीं जाय तो आप अपने तरीके का विरोध करेंगे जयप्रकाश के तरीके का तो नहीं?

गांधीजी—नहीं। जयप्रकाश को मेरे साथ आना होगा। मैं उसके मुकाबले में खड़ा नहीं होऊंगा। १९४२ में मैंने कहा था कि मैं अपरिचित पथ पर चल रहा हूं। अब मैं ऐसा नहीं करूंगा। तब मैं जनता को नहीं पहचानता था। अब मैं जानता हूं कि मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता।

मैं—१९४२ में आप नहीं जानते थे कि हिंसा होगी?

गांधीजी—"यह बात सही है।

मैं—"मतलब यह है कि अगर संविधान सभा असफल हो गई, तो आप सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं चलायेंगे?

गांधीजी—"यदि उस समय तक समाजवादी और साम्यवादी टिके नहीं रहे तो नहीं।

मैं—"यह तो संभव नहीं नजर आता।"

गांधीजी—"जब भारत के वायुमंडल में इतनी हिंसा भरी है तो मैं सविनय अवज्ञा का विचार नहीं कर सकता। आज कुछ सवर्ण हिंदू हरिजनों के साथ ईमानदारी का बर्ताव नहीं कर रहे।"

मैं—"कुछ सवर्ण हिंदुओं से आपका अभिप्राय कुछ कांग्रेसजनों से है?

गांधीजी—"बहुत से कांग्रेसजन तो नहीं परन्तु कुछ ऐसे हैं जिन्होंने हृदय से अस्पृश्यता का त्याग नहीं किया है। यही दुख की बात है। मुसलमान भी यह महसूस करते हैं कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। एक कट्टर हिंदू के घर में एक मुसलमान एक ही पटरी पर बैठकर हिंदू के साथ भोजन नहीं कर सकता। यह झूठा धर्म है। भारत में झूठी धार्मिकता है। उसे सच्चे धर्म की आवश्यकता है।"

मैं—"कांग्रेस को आप नहीं समझा पाये?

गांधीजी—"नहीं मैं सफल नहीं हुआ। मैं असफल हो गया। लेकिन फिर भी कुछ प्राप्त हुआ है। मथुरा तथा दूसरे कई तीर्थ-स्थानों में हरिजन मंदिरों में जाने लगे हैं। उन्हीं मंदिरों में सवर्ण पूजा करते हैं।

सुबह की बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

गांधीजी 'प्रकाश अंदर डाल' रहे थे और दूसरों में दोष देखने के बजाय प्रकाश-किरण कांग्रेस और हिंदुओं की बुराइयों को दिखाने में मदद कर रही थी। कुछ हिंदू इसे पसंद नहीं करते थे और जिन्ना और इस्लाम को दोष देते थे।

दोपहर को जयप्रकाश एक घंटा गांधीजी के साथ रहे।

जयप्रकाश—"कांग्रेस देश की शक्ति को संगठित नहीं कर रही है। आज कांग्रेस में भीरुता का स्थान नहीं है। जात-बिरादरी और सगे-संबंधी का महत्त्व है। यही कारण है कि हम समाजवादी संविधान सभा में नहीं जायेंगे। हमें ऐसा लगता है कि कांग्रेस कार्यकारिणी एक प्रकार की लाचारी से दबी है। 'अगर हम लोग ब्रिटिश प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते तो क्या कर सकते हैं?' यह उसका कहना है। यह कमजोरी का रुख है। वह चाहती है कि ब्रिटिश मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौते का रास्ता निकालें। हम अंग्रेजों से कह सकते थे 'भाग जाओ। हम आप सुलझ लेंगे।' अगर कांग्रेस इसे पसंद न करती तो हमें जेल में डाल सकते थे।

गांधीजी— जेल तो चोरों और डाकुओं के लिए जेल है। मेरे लिए तो वह महल है। चोरों को पकड़ने से पहले हीं मैंने जेल जाने की बात निकाली थी। टाल्स्टाय ने एक रूसी पत्र में लिखा था कि मैंने एक नई चीज खोजी है। एक रूसी स्त्री ने उसका अनुवाद करके मेरे पास भेजा। मैंने जेल के भीतर से ही सरकार से लड़ाई लड़ी है। जेल जाने से स्वराज आ सकता है बशर्ते कि उसके पीछे का सिद्धांत सही हो लेकिन आज जेल जाना तो एक मजाक हो गया है।

जयप्रकाश नारायण—"आज तो हमें अंग्रेजों को जेल भेजना चाहिए।"

गांधीजी—"क्यों ? कैसे ? इसकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो एक भाषा का अलंकार है और तुम जैसे व्यक्ति के मुह से नहीं निकलना चाहिए। हिंसात्मक युद्ध के बाद भी यह आवश्यक नहीं होगा। इसी ढंग से चर्चिल कहा करते थे कि वह हिटलर के साथ क्या करेंगे और नाजी युद्धापराधियों के मुकदमों की मूर्खता और चोंचली देखो। अपराधियों का मुकदमा करनेवालों में कुछ उतने ही अपराधी है।

कई प्रांतों में कांग्रेस ने सरकार बना ली थी और गांधीजी और जयप्रकाश देख रहे थे कि वहां किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ़ रहा है।

जिस वेदना ने गांधीजी का अंत किया उसके मार्ग पर उनके पैर पड़ने लगे थे।

तीसरे पहर गांधीजी ने मुझे एक घंटे से अधिक समय दिया। अमरीका के हब्शियों की समस्या पर कुछ देर बातचीत के बाद मैंने कहा—"भारत में आने के बाद मुझे यहां कुछ समझदार लोग मिले हैं।

गांधीजी—"अच्छा ! तुम्हें मिले हैं? बहुत नहीं होंगे !

मैं—"आप तथा दो-तीन और। वह हंसने लगे। "कुछ तो कहते हैं कि हिंदू मुस्लिम संबंध सुधरे हैं कुछ कहते हैं कि बिगड़े हैं।

गांधीजी—"जिन्ना तथा अन्य मुस्लिम नेता एक समय कांग्रेसी थे। उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी क्योंकि मुसलमानों के प्रति हिंदुओं का कृपालुओं जैसा बर्ताव उन्हें खटकता था। मुसलमान लोग धर्मांध हैं परंतु धर्मांधता का जवाब धर्मांधता से नहीं दिया जा सकता। अशिष्ट व्यवहार चिढ़ानेवाला होता है। कांग्रेस के प्रतिभाशाली मुसलमान उससे तंग आ गये। उन्हें हिंदुओं में मनुष्यों का भाई चारा नहीं मिला। वह कहते हैं कि इस्लाम मनुष्यों का भाई चारा है। वास्तव में वह मुसलमानों का भाई चारा है। कांग्रेस और लीग के बीच दरार पैदा करने में हिंदू

भेद भाव ने हिस्सा लिया है। जिन्ना प्रतिभाशाली हैं लेकिन उनकी प्रतिभा में खोट है। वह अपने-आपको पैगंबर समझते हैं।

मैं—"वह एक वकील हैं।

गांधीजी—"तुम उनके साथ अन्याय करते हो। १९४४ में उनके साथ अठारह दिन की अपनी बातचीत की मैं तुम्हें साक्षी देता हूं। वह सचमुच अपने को इस्लाम का त्राता मानते हैं।"

मैं—"मुसलमान लोग प्रकृति और साहस के धनी होते हैं। वे सहृदय और और मैत्रीपूर्ण होते हैं।"

गांधीजी—"हां।

मैं—"परंतु जिन्ना रूखे हैं। वह जिद्दी आदमी हैं। वह तो मामले की वकालत करते हैं, प्रेम का प्रचार नहीं।"

गांधीजी—"मैं मानता हूं कि वह जिद्दी आदमी हैं। लेकिन मैं उन्हें फरेबी नहीं समझता। उन्होंने भोले-भाले मुसलमानों पर जादू डाल रखा है।

मैं—"हिंदू प्रभावशाली कांग्रेस मुसलमानों को कैसे अपना सकती है?

गांधीजी—"घर भर में—अछूतों को समानता देकर।

मैं—"सुना है कि हिंदुओं और मुसलमानों का आपसी संपर्क कम हो रहा है।

गांधीजी—"ऊपर के स्तर का राजनैतिक संपर्क टूटता जा रहा है।

मैं—"१९४२ में जिन्ना ने मुझसे कहा था कि आप स्वाधीनता नहीं चाहते।"

गांधीजी—"तो मैं क्या चाहता हूं?

मैं—"उनका कहना था कि आप हिंदू-राज चाहते हैं।"

गांधीजी—"वह बिल्कुल गलत बात कहते हैं। इसमें जरा भी तथ्य नहीं है। मैं मुसलमान हूं, हिंदू हूं, बौद्ध हूं, ईसाई हूं, यहूदी हूं, पारसी हूं। अगर वह कहते हैं कि मैं हिंदू राज चाहता हूं, तो वह मुझे जानते ही नहीं। उनकी इस बात में सचाई नहीं है। वह मानो एक क्षुद्र वकील की तरह बात कर रहे हों। ऐसे आरोप कोई सनकी ही लगा सकता है। मेरा विश्वास है कि मुस्लिम लीग संविधान सभा में शामिल हो जायगी। परंतु सिखों ने इन्कार कर दिया है। सिख लोग यहूदियों की तरह मजहबी होते हैं।"

मैं—"अरब भी मजहबी हैं।

गांधीजी—"हैं?

मैं—"आप मजलिस आदमी हैं। आप जिद्दी हैं। आप हर चीज अपने ढंग की चाहते हैं। आप मृदु स्वभाव के अधिनायक हैं।"

इस पर सब लोग हंस पड़े और गांधीजी भी इस हंसी में खुलकर शामिल हुए।

गांधीजी—"अधिनायक ? मेरे पास कोई सत्ता नहीं है। मैं कांग्रेस को नहीं बदल पाया। उसके विरुद्ध शिकायतों का मेरे पास एक पुलिंदा है।

मैं—"अठारह दिन जिन्ना के साथ रहकर आपको क्या पता लगा ?

गांधीजी—"मुझे पता लगा कि वह सनकी है। सनकी आदमी कभी-कभी सनक छोड़ देता है और समझदार बन जाता है। उसके साथ बातचीत का मुझे कभी अफसोस नहीं है। मैं इतना जिद्दी कभी नहीं रहा कि सीखने से इन्कार कर दूं। मेरी हरएक असफलता एक सीढ़ी की तरह हुई है। जिन्ना के साथ मैं इसलिए आगे नहीं बढ़ सका कि वह सनकी है परंतु बातचीत के समय उसके बर्ताव ने मुसलमानों के दिलों में भी उसके लिए नफरत पैदा कर दी है।"

मैं—"तो फिर हल क्या है ?"

गांधीजी—"जिन्ना को अभी पच्चीस वर्ष और काम करना है।"

मैं—"वह तो आप ही के बराबर जीना चाहते हैं।

गांधीजी—"तो जबतक मैं १२५ वर्ष का न होऊं तबतक उन्हें जीना चाहिए।

मैं—"फिर आपका न मरना अच्छा है वरना वह मर जायेंगे और आपको हत्या लगेगी। (हंसी) वह आपकी मृत्यु के दूसरे ही दिन मर जायेंगे।"

गांधीजी—"जिन्ना पथ भ्रष्ट नहीं किये जा सकते और वह बहादुर हैं। अगर जिन्ना संविधान सभा में नहीं आयें तो अंग्रेजों को दृढ़ रहना चाहिए और हमको अकेले ही योजना को कार्यान्वित करने देना चाहिए। अंग्रेजों को जिन्ना की जबरदस्ती के आगे नहीं झुकना चाहिए। चर्चिल हिटलर के आगे नहीं झुका।

१८ जुलाई को महात्माजी से मेरी अंतिम बातें हुईं। मैंने कहा—"अगर कार्य-समिति आपके 'अंधेरे में टटोलने' के अनुसार, अथवा आपके शब्दों में आपकी अंतःप्रेरणा के अनुसार चली होती तो उसने संविधान-सभावाली केबिनेट मिशन योजना ठुकरा दी होती ?

गांधीजी—"हां परंतु मैंने यह नहीं होने दिया।

मैं—"आपका मतलब है कि आपने इसरार नहीं किया।

गांधीजी—"इससे भी अधिक। मैंने उन्हें अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार चलने से रोक दिया जब तक कि उन्हें भी ऐसा न लगे। इसकी कल्पना करने से कोई लाभ नहीं है कि क्या हुआ होता। सच यह है कि डा॰ राजेंद्रप्रसाद ने मुझसे पूछा—'क्या आपकी अंतःप्रेरणा इतनी दूर जाती है कि चाहे हम उसे समझें या न समझें, आप हमको दूरवर्ती प्रस्ताव स्वीकार करने से रोकेंगे?' मैंने उत्तर दिया—'नहीं, आप अपनी बुद्धि के अनुसार चलिये, क्योंकि मेरी खुद की बुद्धि मेरी अंतःप्रेरणा का समर्थन नहीं करती। मेरी अंतःप्रेरणा मेरी बुद्धि से विरोध करती है। मैंने अपनी आशंकाएं आपके सामने रख दी हैं, क्योंकि मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। जबतक मेरी बुद्धि सहारा न दे तबतक मैं खुद अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार नहीं चलता।' "

मैं—"परंतु आपने तो मुझसे कहा था कि जब कभी आपकी अंतःप्रेरणा आवाज देती है तो आप उसके अनुसार चलते हैं, जैसाकि आप उपवासों के पहले किया करते हैं।

गांधीजी—"हां, परंतु इन अवसरों पर भी उपवास शुरू होने से पहले मेरी बुद्धि मौजूद रहती है।"

मैं—"फिर आप वर्तमान राजनैतिक स्थिति में अपनी अंतःप्रेरणा को क्यों छोड़ते हैं?"

गांधीजी—"मैंने ऐसा नहीं किया। लेकिन मैं वफादार रहा। मैं केबिनेट मिशन की ईमानदारी में अपनी आस्था बनाये रखना चाहता था। इसलिए मैंने केबिनेट मिशन से कह दिया कि मेरी अंतःप्रेरणा की आशंकाएं हैं।"

मैं—"क्या इसका यह अर्थ है कि केबिनेट-मिशन के इरादे अच्छे थे?

गांधीजी—"शुरू में मैंने उन्हें जो प्रमाण-पत्र दिया था उसका एक अक्षर भी वापस नहीं लेना चाहता।

मैं—"क्या आप इसलिए संविधान समर्थक बन गये हैं कि आपको हिंसा का भय है?

गांधीजी—"मेरा कहना है कि हमको संविधान सभा में जाकर उसका उपयोग करना चाहिए। अगर अंग्रेज बेईमान हैं, तो उनकी पोल खुल जायगी। हानि हमारी नहीं होगी, उनकी तथा मानवता की होगी।

मैं—"मेरा अनुमान है कि आप आजाद हिंद फौज तथा सुभाषचंद्र बोस की भावना से डरते हैं। वह चारों ओर फैल रही है। उसने नौजवानों चित

मोह लिया है और आप इसे जानते हैं और उनके चित्त की इस अवस्था से डरते हैं। नौजवान पीढ़ी भारत के लिए दीवानी है।"

गांधीजी—"उसने देश के मन को नहीं मोहा है। यह अतिशयोक्ति है। हां नौजवानों तथा स्त्रियों का एक वर्ग उनका अनुगामी है। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने हिंदुओं को क्षमाशुता विशेष रूप से दी है। 'क्षमाशु हिंदु' शब्दों का प्रयोग निंदा के तौर पर किया जाता है। परन्तु मैं इन्हें सम्मान के शब्दों की तरह लेता हूं, जैसे चर्चिल के शब्द 'नंगा फकीर'। मैंने तो इन शब्दों को प्रशंसासूचक मान लिया और इसके बारे में चर्चिल को लिखा। मैंने चर्चिल से कहा कि मैं तो नंगा फकीर बनना चाहूंगा परंतु अभी तक बन नहीं पाया हूं।

मैं—"क्या चर्चिल ने कोई जवाब दिया ?"

गांधीजी—"हां उन्होंने वाइसराय की मार्फत शिष्टतापूर्वक मेरे पत्र की प्राप्ति स्वीकार की। और तथाकथित सभ्यता से मस्तृती और भ्रष्ट अस्वाभाविकता रहित स्त्रियां मेरे साथ हैं।"

मैं—"किन्तु आप बोस के प्रशंसक हैं। आपका विश्वास है कि वह जीवित है।"

गांधीजी—"बोस-संबंधित कथाओं को मैं प्रोत्साहन नहीं देता। मैं उनसे सहमत नहीं था। अब मुझे विश्वास नहीं है कि वह जीवित है।"

मैं—"मेरी दलील यह है कि बोस जर्मनी और जापान गये। ये दोनों फासिस्त देश हैं। अगर वह फासिस्तवाद के समर्थक थे तो आपको उनसे कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। अगर वह देशभक्त थे और समझते थे कि जर्मनी और जापान भारत को बचा लेंगे तो वह मूर्ख थे और राजनीतिज्ञों का मूर्ख होना बुरा है।

गांधीजी—"मालूम होता है, राजनीतिज्ञों के बारे में तुम्हारी बहुत अच्छी राय है। अधिकतर राजनीतिज्ञ मूर्ख होते हैं। मुझे सारी शक्तियों के विरुद्ध काम करना पड़ रहा है। हिंसा की निष्प्राणीय प्रवृत्ति फैली हुई है, जिसका मुकाबला करना है और मैं अपने ढंग से चल रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह एक ऐसा व्यवधान है जो समय पाकर अपने-आप खत्म हो जायगा। यह टिका नहीं रह सकता। यह भारत की भावना के प्रतिकूल तो है ही। लेकिन बातों से क्या फायदा ? मैं तो एक रहस्यपूर्ण दैव में विश्वास करता हूं, जो हमारे भाग्य का विधाता है—आप उसे ईश्वर के नाम से पुकारिये या किसी अन्य नाम से।

४

नोआखाली की महान यात्रा

कांग्रेस ने अस्थायी सरकार में शामिल होने से इन्कार कर दिया क्योंकि जिन्ना के हठ पर लार्ड वेवल ने उन्हें एक पद पर मुसलमान को नामजद करने का अधिकार नहीं दिया। यह सही है कि वेवल ने सार्वजनिक रूप से बतला दिया था कि अंतरिम सरकार की रचना आगे के लिए उदाहरण नहीं मानी जायगी। कांग्रेस को डर था कि यह मिसाल बन जायगी और उसने जिन्ना के इस अधिकार को मानने से सख्ती के साथ इन्कार कर दिया कि वह मंत्रिमंडल में कांग्रेसी मुसलमान की नियुक्ति को रोक सकते हैं।

तदनुसार वेवल ने कांग्रेस तथा लीग से अपने-अपने उम्मीदवारों की सूचियां भेजने को फिर कहा परंतु कांग्रेस की इच्छा के अनुसार यह स्पष्ट कर दिया कि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के नामजदों को नहीं रोक सकता। इस पर जिन्ना ने अस्थायी सरकार में सम्मिलित होने का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। १२ अगस्त १९४६ को वेवल ने नेहरू को सरकार बनाने का कार्य भार सौंपा। नेहरू ने जो सरकार बनाई उसमें एक हरिजन-सहित छ कांग्रेसी हिंदू, एक ईसाई, एक सिख एक पारसी और दो मुसलमान थे। मुस्लिम लीग के नहीं थे लिये। वेवल ने घोषणा की कि मुस्लिम लीग चाहे तो अपने पांच सदस्यों के नाम अस्थायी सरकार के लिए दे सकती है। जिन्ना ने कोई ध्यान नहीं दिया।

मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त को "सीधी कार्रवाई का दिन" मनाया। कलकत्ता में चार दिन भीषण दंगे हुए।

२४ अगस्त की शाम को शिमला में सर शफातअहमद खां को छुरों से हत्या कर दी गई। उन्होंने नेहरू की अस्थायी सरकार में शामिल होने के लिए मुस्लिम लीग से इस्तीफा दे दिया था।

२ सितंबर को नेहरू भारत के प्रधान मंत्री बने।

गांधीजी २ सितंबर को नई दिल्ली की भंगी-बस्ती में थे। उस दिन वह बहुत सवेरे उठे और नई सरकार के कर्तव्यों के बारे में नेहरू को पत्र लिखा। भारत के इतिहास में यह एक महान पर्व था। अपनी प्रार्थना-सभा में वह शाम को बोले और अंग्रेजों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया। उनके मन में उत्साह नहीं था। "जल्दी-से-जल्दी आपके हाथ में सारी शक्ति आ जायगी" उन्होंने

दर्शकों से वादा किया—"मगर वे मैहरू—आपके बिना ताज के बादशाह व प्रधान मंत्री—तथा उनके साथी अपने कर्तव्य का पालन करें।" मुसलमान हिंदुओं के भाई हैं, हालांकि वह अभी तक सरकार में नहीं हैं और गांधीजी ने कहा कि भाई गुस्से का बदला गुस्से से नहीं देता।

परंतु जिन्ना ने २ सितंबर को 'मातम का दिन' घोषित कर दिया।

गांधीजी ने इन संकेतों को गलत नहीं पढ़ा। उन्होंने ९ सितंबर को कहा—"अभी तक हम गृह-युद्ध में नहीं फंसे हैं परंतु उसके नजदीक आ रहे हैं।" सितंबर भर बंबई में गोलीबाजी और छुरेबाजी की घटनाएं होती रहीं। पंजाब में भी गड़बड़ फैल गई। बंगाल और बिहार मार-काट से थर्रा उठे।

भारत की इस अशांत स्थिति से भयभीत होकर वेवल ने मुस्लिम लीग को नई सरकार में आने के प्रयत्न दुगने कर दिये। जिन्ना अंत में राजी हो गये और उन्होंने चार मुस्लिम लीगी सदस्यों को तथा एक अछूत को नियुक्त किया।

दोनों जातियों के बीच लगातार मार-काट के विरुद्ध गांधीजी रोज प्रचार करते थे। उन्होंने कहा—"कुछ लोगों को खुशी है कि हिंदू अब इतने बलवान हो गये हैं कि उन्हें मारने की कोशिश करनेवालों को वे बदले में मार सकते हैं। मैं तो इसे अच्छा समझूंगा कि हिंदू लोग बिना बदला लिये मर जायं।

बहुत से कांग्रेसी मंत्री और उनके सहायक तथा प्रांतीय अधिकारी हरिजन बस्ती में गांधीजी की कुटिया पर सलाह लेने आते थे। गांधीजी 'महा-प्रधान-मंत्री' थे।

हिंदू-मुस्लिम हिंसाओं की बढ़ती हुई आग गांधीजी को चैन नहीं लेने दे रही थी परंतु मानव-जीवों में उनकी आस्था बनी हुई थी।

पागल बने हुए मनुष्यों में अब गांधीजी देवत्व की खोज करने लगे।

अक्तूबर में पूर्वी बंगाल के नोआखाली तथा टिपरा देहाती क्षेत्रों में हिंदुओं पर मुसलमानों के व्यापक हमले हुए। इनसे महात्माजी इतने भयभीत हुए, जितने शहरी दंगों से नहीं हुए थे। अभी तक भारत के गांवों में दोनों जातियों के लोग मेल-जोल से रहते थे। अब यदि जातीय विद्वेष देहात में भी फैल गया तो राष्ट्र का सत्यानाश हो जायगा। गांधीजी ने गड़बड़ के स्थानों पर जाने का निश्चय किया। मित्रों ने उनका इरादा बदलने की कोशिश की परंतु उन्होंने जवाब दिया—"मैं तो यह जानता हूं कि जबतक मैं वहां नहीं पहुंचूंगा तबतक मुझे शांति नहीं मिलेगी। उन्होंने लोगों से कहा कि स्टेशन पर उन्हें विदा करने न आयें।

परंतु लोगों की भीड़ पहुंच गई। सरकार ने उनके लिए स्पेशल गाड़ी का इंतजाम कर दिया। रास्ते में हरएक बड़े स्टेशन पर विशाल जन-समुदायों ने गाड़ी को घेर लिया। इस हल्ले-गुल्ले से थके-थकाये गांधीजी पांच घंटा देर से कलकत्ता पहुंचे।

जिस दिन गांधीजी दिल्ली से रवाना हुए, उस दिन कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगे में बत्तीस आदमी मारे गये। कलकत्ता पहुंचने के दूसरे दिन गांधीजी औप-चारिक रूप से बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज से मिले और फिर बंगाल के प्रधान-मंत्री श्री हुसेन सुहरावर्दी के यहां काफी देर ठहरे। दूसरे दिन ११ नवम्बर को उन्होंने सुहरावर्दी के साथ कलकत्ता की उजड़ी हुई बस्तियों का दौरा किया। मनुष्य को पशुओं से भी नीचा गिरानेवाले सामूहिक पागलपन की निराशापूर्ण भावना ने गांधीजी को अभिभूत कर दिया परंतु फिर भी वह आशावादी बने रहे।

अब वह नोआखाली जा रहे थे जहां मुसलमानों ने हिंदुओं की हत्याएं की थीं, हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था, हिंदू स्त्रियों पर बलात्कार किया था तथा हिंदू घरों और मंदिरों को जला डाला था। गांधीजी ने कहा था—"यह अस्त नारीत्व की पुकार है, जो मुझे बरबस नोआखाली बुला रही है। जब तक झगड़े की अंतिम चिनगारियां बुझ न जायं तब तक मैं बंगाल छोड़कर नहीं जाऊंगा। यदि जरूरत पड़ी तो मैं यहां मर जाऊंगा परंतु असफलता स्वीकार नहीं करूंगा।

प्रार्थना-सभा में गांधीजी के इन शब्दों पर कितने ही श्रोताओं की आंखों में आंसू आ गये।

परंतु दुखी महात्माजी के लिए अभी और भी संताप बाकी थे। नोआखाली की घटनाओं ने बिहार में हिंदुओं का रोष भड़का दिया था। २५ अक्तूबर को 'नोआखाली दिवस' मनाया गया। अगले सप्ताह में 'लंदन टाइम्स' के दिल्ली-स्थित संवाददाता के विवरण के अनुसार, दंगाइयों द्वारा ४५ आदमी मार डाले गये। गांधीजी ने बाद में यह संख्या दस हजार से ऊपर कूती थी। मरनेवालों में अधिक संख्या मुसलमानों की थी।

बिहार के अत्याचारों के समाचार कलकत्ता में गांधीजी के पास पहुंचे और वह बहुत दुखी हुए। उन्होंने बिहारियों के नाम एक संदेश भेजा—"मेरे सपनों के बिहार ने मुझे झूठा कर दिया है। ऐसा न हो कि जिस बिहार ने कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ाने में इतना काम किया है, वही सबसे पहले उसकी कब्र खोदनेवाला बन जाय।

इसके प्रायश्चित्त-स्वरूप गांधीजी ने घोषणा की कि वह 'कम-से-कम भोजन करेंगे' और 'यदि पथभ्रष्ट बिहारी लोग तथा अन्याय न मुक्त करेंगे' तो यह आमरण उपवास' बन जायगा।

बिहार की भीषणताओं के फलस्वरूप बंगाल में प्रतिशोध की आशंका से नेहरू और पटेल तथा लियाकतअली खां और अब्दुर्रब निश्तर हवाई जहाज में दिल्ली से कलकत्ता आ पहुंचे। लार्ड वेवल भी आ गये। डर था कि ईद के त्यौहार पर मुसलमानों का धार्मिक जोश न भड़क उठे।

कलकत्ता से चारों मंत्री बिहार गये। नेहरू ने जो कुछ देखा तथा सुना उससे क्रोधित होकर उन्होंने धमकी दी कि अगर हिंदुओं ने मार-काट बंद न की तो वह बिहार पर हवाई जहाजों से बम गिरवा देंगे। परंतु गांधीजी ने आलोचना की—"यह अंग्रेजों का तरीका है। फौज की सहायता से दंगों को दबाकर वे लोग भारत की आजादी को दबा देंगे।

नेहरू ने घोषणा की कि जब तक बिहार में शांति स्थापित नहीं हो जायगी वह वहां से नहीं जायगे। ६ नवंबर को गांधीजी ने उन्हें एक पत्र भेजा जिसमें लिखा—"बिहार के समाचारों ने मुझे झकझोर डाला है। जो सुनाई दे रहा है, उसका आधा भी सत्य है तो उससे पता चलता है कि बिहार मानवता को भूल गया है। मेरी आंतरिक पुकार कहती है—'इस प्रकार के विवेक शून्य हत्याकांड को देखने के लिए तुम जीवित मत रहो। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं? यह तर्क मुझे बेरोक उपवास की ओर ले जा रहा है।

कलकत्ता में तथा अन्यत्र ईद शांतिपूर्वक गुजर गई। महात्माजी को बिहार से संतोषजनक समाचार मिले। उनका कर्तव्य नोआखाली में था जहां मुसलमानों की मार-काट के सामने हिंदू भाग रहे थे। भय आजादी और लोकतंत्र का शत्रु है। अहिंसात्मक बहादुरी हिंसा के विष को मारनेवाली है। वह नोआखाली के हिंदुओं के सामने बहादुर बनकर उन्हें बहादुरी का पाठ सिखायेंगे। इतनी ही महत्त्व की बात यह थी कि गांधीजी जानना चाहते थे कि वह मुसलमानों पर भी असर डाल सकते हैं या नहीं। यदि अहिंसा अ-प्रतिशोध तथा भाईचारे की भावना मुसलमानों तक नहीं पहुंच सकती तो आजाद, संयुक्त भारत कैसे बन सकता है?

गांधीजी ने कहा—"मान लो, मुझे कोई मार डालता है तो बदले में किसी दूसरे को मारकर तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और अगर तुम इस बारे में सोचो तो पता चलेगा गांधी को सिवा गांधी के कौन मार सकता है? आत्मा को कोई भी

नष्ट नहीं कर सकता ?

क्या वह सोचते थे कि नोआखाली में कोई मुसलमान उन्हें मार डालेगा ? क्या उन्हें इस बात का भय था कि बदले की भावना से हिंदू सारे देश में मुसलमानों को कत्ल कर डालेंगे ?

नोआखाली जाने की तड़प इतनी जोरदार थी कि रोकी नहीं जा सकती थी।

गांधीजी ६ नवंबर को कलकत्ता से नोआखाली के लिए रवाना हुए। नोआखाली भारत का सबसे दुर्गम भाग है। यह गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा की दलदली भूमि में स्थित है। यातायात और दैनिक जीवन संबंधी यहां भारी कठिनाइयां हैं। बहुत से गांवों में नावों से पहुंचा जा सकता है। जिले की सड़कों को बैलगाड़ी भी पार नहीं कर सकती। यह ४ मील का भू-भाग है जिसमें २५ लाख व्यक्ति हैं, ८ प्रतिशत मुसलमान। गृह-युद्ध और धार्मिक कट्टरता से उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। कुछ गांव तो विध्वंस पड़े थे। गांधीजी ने इस दुरस्थ क्षेत्र द्वारा प्रस्तुत भौतिक या आध्यात्मिक चुनौती को जान-बूझकर स्वीकार किया था। उन्होंने महीनों धीरज रखा। ५ दिसंबर को उन्होंने नोआखाली से लिखा—"मेरा वर्तमान मिशन मेरे जीवन का बड़ा ही कठिन और जटिल मिशन है। मैं हर प्रकार की संभावना के लिए प्रस्तुत हूं। 'करो या मरो' को यहां कसौटी पर चढ़ाना है। 'करने' का यहां अर्थ है कि हिंदू और मुसलमान शांति और सद्भाव के साथ मिल-जुलकर रहें। इस प्रयत्न में मैं अपनी जान की बाजी लगा दूंगा।

गांधीजी के साथ बंगाल के कई मंत्री और गांधीजी के सचिव तथा सहायक नोआखाली तक गये। गांधीजी ने अपने शिष्यों को गांवों में बिखेर दिया और अपने साथ श्री निर्मलकुमार बसु, परशुराम तथा मनु गांधी को रखा।

उन्होंने कहा कि अपना खाना वह स्वयं पकायेंगे और अपनी मालिश स्वयं करेंगे। मित्रों ने विरोध करते हुए कहा कि मुसलमानों से सुरक्षा के लिए उनके साथ पुलिस रहनी ही चाहिए। उन्होंने कहा कि उनकी डाक्टर सुशीला नैयर भी उनके पास रहनी चाहिए। लेकिन नहीं यह, उनके भाई प्यारेलाल सुचेता कृपालानी आभा और मनु, सब एक-एक गांव में बैठ जायं ऐसे गांव में जो प्राय विरोधी और एकांत में थे और अपने प्रेम के उदाहरण से वहां की हिंसा को निर्मूल करें। प्यारेलाल मलेरिया ज्वर में पड़े थे। उन्होंने गांधीजी को एक पुर्जा भेजा कि क्या उनकी देखभाल के लिए सुशीला उनके पास आ सकती है ? गांधीजी ने उत्तर दिया—"जो गांवों में जा रहे हैं, उन्हें इस इरादे से जाना चाहिए कि जीवित रहेंगे या

मर जायंगे। अगर वे बीमार पड़ते हैं, तो उनको वहीं अच्छा होना है या वहीं मरना है। तभी जाने का कुछ अर्थ होगा। व्यवहार में इसका मतलब यह होता है कि उन्हें गांव के उपचारों या प्रकृति के पंच-तत्वों से संतुष्ट रहना चाहिए। डा सुशीला के पास देख-भाल को अपना गांव है। उसकी सेवाएं इस समय हमारे दस सदस्यों के लिए नहीं हैं। वे पूर्वी बंगाल के ग्रामवासियों के लिए पहले ही से बिरखी रखी जा चुकी हैं। वह स्वयं अपने पर इसी प्रकार का निर्मम और सख्त अनुशासन लागू कर रहे थे।

नोआखाली की यात्रा में गांधीजी उनन्चास गांवों में गये। वह सुबह चार बजे उठते तीन-चार मील नंगे पांव चलकर एक गांव में पहुंचते वहां लोगों के साथ बातचीत तथा निरंतर प्रार्थना करते हुए, एक या दो या तीन दिन ठहरते फिर अगले गांव को चल पड़ते। गांव में पहुंचकर वह किसी ग्रामीण की झोंपड़ी में और हो सकता तो किसी मुसलमान की झोंपड़ी में जाते और कहते कि वह उनको तथा उनके साथियों को अपने यहां ठहरा लें। दुत्कारे जाने पर वह आगे की झोंपड़ी में कोशिश करते। वह स्थानीय फलों तथा सब्जियों पर और मिल जाता तो बकरी के दूध पर, निर्वाह करते। ७ नवंबर १९४६ से २ मार्च १९४७ तक उनका यही जीवन रहा। उनकी आयु का उहत्तरवां वर्ष अभी पूरा हुआ था।

रास्ता चलने में कठिनाई होती थी। उनके पांवों में बिवाइयां फट गईं। परंतु वह चप्पल बहुत कम पहनते थे। नोआखाली का मसला इसलिए पैदा हुआ कि वह लोगों का अहिंसा के द्वारा इलाज करने में सफल नहीं हुए थे। इसलिए यह उनकी प्रायश्चित्त की यात्रा थी और प्रायश्चित्त करनेवाला यात्री जूते नहीं पहनता। विरोधी तत्व कभी-कभी उनके रास्ते में कांच के टुकड़े कांटे और मैला बिखेर देते। वह उन्हें दोष न देते। उनके मैत्रायों ने उन्हें भरमा लिया था। कितने ही स्थानों पर दलदल के ऊपर बने हुए पुलों को पार करना पड़ता था। ये पुल बांसों की दस पंद्रह फुट ऊंची बैसाखियों पर चार-पांच मोटे बांसों को बांधकर बनाये हुए होते थे। इन मोटे डावांडोल पुलों पर पकड़ के लिए एक ओर बांस की हत्थी लगी रहती थी परंतु यह भी किसी पुल में होती थी किसीमें नहीं। एक बार गांधीजी का पैर फिसल गया और वह नीचे दलदल में गिर पड़े होते परंतु उन्होंने फुर्ती से अपने आपको संभाल लिया। ऐसे पुलों को कुशलता से और बेखतरे पार करने के लिए उन्होंने नीचे पुलों पर चलने का अभ्यास किया।

हिंदू स्त्रियों का धर्म बदलने के लिए मुसलमान लोग उनकी चूड़ियां फोड़

डालते थे और उनके माथे का सौभाग्य-सिंदूर छुड़ा देते थे। हिंदू पुरुषों को दाढ़ियां रखने के लिए, मुसलमानों की तरह तहमद बांधने के लिए और कुरान पढ़ने के लिए मजबूर किया गया। मूर्तियां तोड़ डाली गईं और हिंदू मंदिर भ्रष्ट कर दिये गये। सबसे बुरी बात यह की गई कि हिंदुओं से उनकी गौएं कटवाई गईं और सब को मांस खिलाया गया।

शुरू में गांधीजी के कुछ सहयोगियों ने सलाह दी कि वह हिंदुओं पर जोर डालें कि वे संकटग्रस्त क्षेत्रों को छोड़कर दूसरे प्रांतों में जा बसें। गांधीजी ने इस प्रकार की पराजय-भावना को बड़े ताव के साथ अस्वीकार कर दिया। आबादियों की अदला-बदली करना यह मानने के समान होगा कि भारत का संयुक्त रहना असंभव है।

नोआखाली की समस्या का अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने निश्चय किया कि प्रत्येक गांव में एक ऐसा मुसलमान और एक हिंदू छांटा जाय जो गांव के सारे निवासियों की सुरक्षा की गारंटी कर सकें और आवश्यकता पड़े तो उनकी रक्षा के लिए जान भी दे दें। इस उद्देश्य से उन्होंने दोनों संप्रदायों के लोगों से बातें कीं। एक बार वह झोंपड़ी में फर्श पर मुसलमानों के बीच बैठे हुए अहिंसा की खूबियों पर व्याख्यान दे रहे थे। सुचेता कृपालानी ने महात्माजी को एक पर्चा दिया जिसमें लिखा था कि उनके दाहिनी ओर बैठे हुए आदमी ने हाल के दंगों में कई हिंदुओं की हत्याएं की थीं। गांधी धीरे से मुस्कराये और आगे बोलते रहे। या तो हत्यारे को फांसी पर चढ़ा दो—और गांधीजी का फांसी में विश्वास नहीं था—अन्यथा उसे दयालुतापूर्वक ठीक करने का प्रयत्न करो। अगर तुम उसे जेल में डालो, तो दूसरे आ जायंगे। परंतु गांधीजी जानते थे कि उन्हें एक सामाजिक रोग का इलाज करना है, एक या अधिक व्यक्तियों का सफाया कर देने से यह रोग मिटनेवाला नहीं था। इसलिए गांधीजी उन्हें क्षमा कर देते थे और उनसे कह भी देते थे और हिंदुओं से भी कहते थे कि उन्हें क्षमा कर दें। वह उनसे कहते थे कि वह स्वयं अपराधी हैं, क्योंकि वह हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करने में असफल हुए।

यह दुनिया ऐसे ही वैमनस्य से भरी हुई है। "लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अपने दुश्मन को प्यार करो जो तुम्हें कोसें उन्हें आशीर्वाद दो जो तुम्हें घृणा करें, उनकी भलाई करो और जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करें, तुम्हारा दमन करें, उनके लिए प्रार्थना करो। क्योंकि जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हींको प्यार करोगे तो

उसमें तारीफ क्या हुई! यह थी ईसा की सिखावन। गांधीजी ने उस पर अमल किया।

एक गांव में गांधीजी ने अपनी शिष्या अमतुस सलाम को भेजा था। उन्होंने देखा कि इस गांव के मुसलमान अपने हिंदू पड़ोसियों के साथ अभी तक दुर्व्यवहार कर रहे हैं। फिलिप्स टैलबॉट लिखते हैं—"गांधी परंपरा के अनुसार अमतुस सलाम ने निश्चय किया कि जबतक मुसलमान लोग एक हिंदू के घर से लूटी हुई बलि की तलवार नहीं लौटायंगे तबतक वह खाना नहीं खायेंगी। तलवार तो मिली नहीं शायद वह किसी पोखर में फेंक दी गई थी। जो भी हुआ हो जब अमतुस सलाम के अनशन के पच्चीसवें दिन गांधीजी उस गांव में पहुंचे तो वहां के घबराये हुए मुसलमान निवासी कोई भी बात मानने के लिए तैयार थे। कई घंटों की चर्चाओं के बाद गांधीजी ने गांव के नेताओं से यह प्रतिज्ञा करवा ली कि वह फिर कभी हिंदुओं को नहीं सतायेंगे।

गांधीजी और उनके सहयोगी बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम कर रहे थे। यात्रा के शुरू में उनकी प्रार्थना-सभाओं में मुसलमान लोग खूब जमा हो जाते थे परंतु लीगी नेताओं ने मुसलमानों के इस आचरण को पसंद नहीं किया। मुल्लाओं ने इसके खिलाफ फतवा दे दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि गांधीजी ईमानदारों को झूठी कसमें खिला रहे हैं। गांधीजी के प्रति मुसलमानों का आकर्षण था पर न तो इसे लीगी नेता मुसलमान पसंद करते थे और न अर्थाध मुसलमान।

एक मुलाकात में गांधीजी ने कहा था—"मैंने अपने लोगों से कह दिया है कि फौज या पुलिस की मदद पर निर्भर न रहें। तुम्हें लोकतंत्र स्थापित करना है और फौज तथा पुलिस पर निर्भरता लोकतंत्र के साथ मेल नहीं खाती। वह लोगों के दिमाग बदलकर उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करना चाहते थे। उन्होंने एक मित्र से कहा—"यदि यह बात पूरी हो गई, तो मेरे लिए मेरे जीवन की महान विजय होगी। मैं बंगाल से पराजित होकर नहीं लौटना चाहता। अगर आप चाहता हुई, तो मैं स्वयं हत्यारे के हाथों अपनी जान दे दूंगा।"

कभी-कभी उनके निकटतम सहकर्मी डरते थे कि दूर-दूर के गांवों में उन अकेलों का न मालूम क्या हाल हो जाय। गांधीजी ने उन्हें हिदायत दी—"तुम लोगों को व्यर्थ खतरे में नहीं पड़ना चाहिए, परंतु स्वाभाविक तौर पर जो कुछ आ पड़े उसका मुकाबला करना चाहिए।"

६ जनवरी को गांधीजी का मौन-दिवस था और उनका प्रार्थना-प्रवचन

श्रोताओं को पढ़कर सुनाया गया। उस दिन वह चंडीपुर में थे और उन्होंने लोगों को अपने यहां आने का अभिप्राय बतलाया—"मेरे सामने एक ही उद्देश्य है और वह बिल्कुल स्पष्ट है। वह यह कि ईश्वर हिंदुओं तथा मुसलमानों के हृदयों को शुद्ध करे और दोनों जातियां आपसी संदेह तथा भय से मुक्त हो जायं। आप लोग इस प्रार्थना में मेरे साथ शरीक हों और कहें कि परमात्मा हम दोनों का है और वह हमें सफलता दे।

ऐसा करने के लिए उन्हें इतनी दूर से क्यों आना पड़ा?

'मेरा उत्तर है कि अपनी इस यात्रा में मैं अपनी शक्ति भर ग्रामीणों को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि मेरे हृदय में किसीके लिए तनिक भी दुर्भावना नहीं है। ऐसा मैं उन लोगों के बीच रहकर और घूमकर ही सिद्ध कर सकता हूं जो मुझ पर विश्वास करते हैं।

इस गांव में गांधीजी को खबर मिली कि दंगे के दिनों में जो हिंदू घर छोड़ कर भाग गये थे उनका लौटकर आना शुरू हो गया है। दूसरी ओर उनकी प्रार्थना-सभा में उपस्थिति कम होने लगी। "लेकिन अपने व्याख्यान की स्वयं रिपोर्ट करते हुए गांधीजी ने लिखा— 'ऐसा होने पर भी कोई कारण नहीं है कि मैं निराश होकर अपने ध्येय को छोड़ दूं। मैं अपना चर्खा लेकर गांव-गांव घूमूंगा। मेरे लिए यह कार्य अग्निपरीक्षा है।

१७ जनवरी को पत्रों में प्रकाशित हुआ कि पिछले छः दिनों में गांधीजी बीच घंटे रोज काम करते रहे हैं। प्रत्येक दिन उन्होंने अलग-अलग गांवों में बिताया और उनकी झोंपड़ी में लोगों की भीड़ सलाह, सांत्वना तथा दीक्षा स्वीकार करने के लिए आती रहती थी।

नारायणपुर गांव में एक मुसलमान ने रात में उन्हें आश्रय दिया और दिन में भोजन। गांधीजी ने उसे सार्वजनिक रूप से धन्यवाद दिया। इस प्रकार का आतिथ्य अब बढ़ता जा रहा था।

इस मुसलमान ने गांधीजी से पूछा कि इतनी कठिन यात्रा का कष्ट उठाने के बजाय वह जिन्ना से समझौता क्यों नहीं कर लेते? उन्होंने जवाब दिया—"नेता तो उसके अनुयायी बनाते हैं। पहले लोगों को आपसी शांति स्थापित करनी चाहिए और तब पड़ोसियों के प्रति उनकी शांति-भावना का प्रतिबिंब उनके नेताओं पर पड़ेगा। मगर उनका पड़ोसी बीमार पड़ जाय तो क्या वे कांग्रेस या लीग से पूछने के लिए दौड़ेंगे कि क्या करना चाहिए?

किसीने पूछा कि क्या शिक्षा से मदद नहीं मिलेगी ? गांधीजी ने कहा—"शिक्षा ही काफी नहीं है। जर्मन पढ़े-लिखे थे लेकिन फिर भी वे हिटलर के अधीन हो गये। शिक्षा या ज्ञान से आदमी नहीं बनता बल्कि शिक्षा आदमी जीवन का निर्माण करनेवाली होनी चाहिए। अगर वे यह नहीं जानते कि अपने पड़ोसियों के साथ भ्रातृ भाव से कैसे रहें तो उनके सब बातों का ज्ञान रखने से क्या लाभ ?

अगर सवाल यह हो कि हम अपनी जान दें या हत्यारे की लें तो आप क्या सलाह देंगे ?

गांधीजी ने कहा— "मेरे मन में तनिक भी संदेह नहीं है कि पहला मार्ग चमत्कार होगा।"

२२ जनवरी को पनियाला गांव की प्रार्थना-सभा में पांच हजार नर-नारी उपस्थित थे। किसीने पूछा—"आपकी राय में सांप्रदायिक दंगों का क्या कारण है ?

"दोनों जातियों की मूर्खता उन्होंने जवाब दिया।

२७ जनवरी को पस्ता गांव में गांधीजी से पूछा गया—"यदि किसी स्त्री पर आक्रमण हो तो उसे क्या करना चाहिए ? क्या वह आत्म-हत्या कर ले ?

गांधीजी ने उत्तर दिया—"जीवन की मेरी योजना में आत्म-समर्पण के लिए जगह नहीं है। स्त्री के लिए आत्म-समर्पण से अच्छा यही है कि वह आत्म-हत्या कर ले।

१ फरवरी को श्रीनगर में स्वयंसेवकों ने एक मंच बनाया था और ऊपर चंदोवा लगाया था। गांधीजी ने उन्हें लताड़ा—"यह श्रम और धन का अपव्यय है। उन्होंने प्रार्थना-सभा में कहा— 'मुझे तो बस एक ऊंचा चबूतरा चाहिए, जिस पर मेरी मांस-रहित हड्डियों को आराम देने के लिए कोई साफ मुलायम चीज बिछी हो।" फिर वह हंस पड़े और उन्होंने अपनी बिना दांत के मसूड़े दिखा दिये।

गांधीजी की सभाओं में अमीर मुसलमानों की अपेक्षा गरीब मुसलमान अधिक आते थे। उन्हें समाचार मिले कि सम्पत्तिवान और शिक्षित मुसलमान गरीबों को धार्मिक दबाव का डर दिखा रहे थे। इन लोगों ने गांधी-विरोधी पोस्टर भी लगवाये। २ फरवरी को टिपरा जिले में बिरकाटाली गांव से लौटते समय गांधीजी बांस के सुंदर वनों तथा नारियल के झुरमुटों में होकर गुजरे। उन्होंने पेड़ों पर पोस्टर लगे हुए देखे जिन पर लिखा था—"बिहार को याद

करो तुरंत टिपरा छोड़कर चले जाओ। आपको बार-बार चेतावनी दी जा चुकी है फिर भी आप जगह-जगह घूमने पर तुले हुए हैं। भलाई इसीमें है कि चले जाओ। जहां आपकी जरूरत है, वहां जाइये। आपका पाखंड सहन नहीं किया जायगा। पाकिस्तान मंजूर करो।

फिर भी प्रार्थना सभाओं में भीड़ बढ़ती ही गई।

एक जगह एक विद्यार्थी ने गांधीजी से पूछा— क्या यह सच नहीं है कि ईसाई-मत और इस्लाम प्रगतिशील धर्म हैं और हिंदू धर्म स्थिर या प्रतिगामी ?

गांधीजी बोले— नहीं मुझे किसी धर्म में कोई स्पष्ट प्रगति देखने को नहीं मिली। अगर संसार के धर्म प्रगतिशील होते तो आज जो संसार लड़खड़ा रहा है वह नहीं होता।"

एक प्रश्नकर्ता ने पूछा—"अगर एक ही खुदा है तो क्या एक ही मजहब नहीं होना चाहिए ?

"एक पेड़ में लाखों पत्ते होते हैं गांधीजी ने उत्तर दिया—"जितने नर और नारियां हैं उतने ही मजहब हैं परंतु सबकी जड़ खुदा में है।

गांधीजी को एक लिखित प्रश्न दिया गया—"क्या धार्मिक शिक्षा स्कूलों के राज्य-मान्य पाठ्यक्रम का अंग होना चाहिए ?

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं राज्य धर्म में विश्वास नहीं करता भले ही सारे समुदाय का एक ही धर्म हो। राज्य का हस्तक्षेप शायद हमेशा नापसंद किया जायगा। धर्म तो शुद्ध व्यक्तिगत मामला है। धार्मिक संस्थाओं को आंशिक या पूरी राज्य-सहायता का भी मैं विरोधी हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि जो संस्था या जमात अपनी धार्मिक शिक्षा के लिए धन की व्यवस्था खुद नहीं करती वह सच्चे धर्म से अनजान है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यों के स्कूलों में सदाचार की शिक्षा नहीं दी जायगी। सदाचार के मूलभूत नियम सब धर्मों में समान हैं।

मुसलमान आलोचकों ने उन्हें चेतावनी दी कि वह पर्दे का जिक्र न करें। एक हिंदू की यह हिम्मत कि वह उनकी स्त्रियों से चेहरा उघाड़ने को कहे ! मगर गांधीजी फिर भी यह जिक्र करते रहे।

२ मार्च १९४७ को गांधीजी नोआखाली से बिहार के लिए रवाना हो गये। उन्होंने फिर किसी दिन आने का वादा किया। वापस आने का वादा उन्होंने इस-लिए किया कि उनका मिशन पूरा नहीं हुआ था।

नोआखाली में गांधीजी का कार्य आंतरिक शांति पुनः स्थापित करना था

ताकि भागे हुए हिंदू वापस आ जायं और अपने-आपको सुरक्षित महसूस करें और इसलिए कि मुसलमान उन पर दुबारा हमले न करें। रोग बहुत गहरा था किंतु उसके भीषण विस्फोट क्वचित् और क्षणिक थे। इसलिए गांधीजी निराश नहीं हुए थे। वह समझते थे कि यदि स्थानीय समुदायों पर बाहर के राजनैतिक प्रचार का बुरा असर न पड़े तो वे शांति के साथ रह सकते हैं।

नोआखाली की पुकार बराबर आग्रह कर रही थी। गांधीजी दिल्ली से संदेश भेज सकते थे या प्रवचन सुना सकते थे। परंतु वह कर्मयोगी थे। उनका विश्वास था कि कहने और कर सकने का भेद ही संसार की अधिकतर समस्याओं को हल करने के लिए काफी है। उन्होंने जीवन भर इस भेद को मिटाने का प्रयत्न किया। इसमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

५

पश्चिम को एशिया का संदेश

नवंबर १९४६ के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड के प्रधान मंत्री एटली ने एक असाधारण सम्मेलन के लिए नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली को लंदन बुलाया।

संविधान सभा ६ दिसंबर को नई दिल्ली में बैठनेवाली थी। जिन्ना बार बार घोषित कर चुके थे कि मुस्लिम लीग उसका बहिष्कार करेगी। लंदन सम्मेलन का उद्देश्य मुस्लिम लीग को संविधान सभा में शामिल करना था।

दिसंबर के शुरू में नेहरू, बलदेवसिंह, जिन्ना और लियाकतअली हवाई जहाज से लंदन गये।

लंदन में जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह भारत को हिंदू राज्य तथा मुस्लिम राज्य में विभाजित करना चाहते हैं।

यद्यपि महान प्रयत्न के बाद एटली कांग्रेस और मुस्लिम लीग को अपने यहां बुलाने में सफल हुए, तथापि सम्मेलन मतभेद में ही समाप्त हो गया।

अतः ६ दिसंबर को एटली ने घोषित किया कि अगर मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना संविधान सभा ने कोई संविधान स्वीकार कर लिया तो "सम्राट की सरकार यह विचार नहीं कर सकती कि ऐसा संविधान देश के किन्हीं अनिच्छुक भागों पर लादा जाय।

लंदन से वापस लौटते ही नेहरू नोआखाली में श्रीरामपुर गांव गये और वहां

२७ दिसंबर १९४६ को, उन्होंने गांधीजी को लंदन-सम्मेलन की ऐतिहासिक असफलता का समाचार सुनाया।

गांधीजी ने आसाम को और सिखों को गुटों में बांटनेवाली धाराओं का विरोध करने की सलाह दी। उनकी राय में यह भारत के टुकड़े करने की चाल थी और वह ऐसी किसी बात का समर्थन नहीं कर सकते थे जिसका फल भारत का विभाजन हो।

परंतु फिर भी कांग्रेस महा-समिति ने इन धाराओं को स्वीकार करने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया।

कांग्रेस में गांधीजी का प्रभाव कम हो रहा था।

हिंदु-मुस्लिम मेल-जोल में गांधीजी को अब भी विश्वास था। नेहरू और पटेल जानते थे कि इन धाराओं का अर्थ पाकिस्तान का आरंभ है परंतु गृह-युद्ध के सिवा दूसरा चारा न देखकर वे उन्हें मानने पर राजी हो गये। उन्हें आशा थी कि जिन्ना भारत के तीन संघीय राज्यों में विभाजन से संतुष्ट हो जायंगे और पाकिस्तान की मांग छोड़ देंगे।

प्रधान मंत्री एटली का अगला कदम यह था कि २० फरवरी १९४७ को उन्होंने ब्रिटिश लोक सभा में वक्तव्य दिया कि इंग्लैंड भारत को जून १९४८ से पहले छोड़ देगा।

मार्च के पहले सप्ताह में कार्य-समिति ने अपने अधिवेशन में एटली के वक्तव्य को अविकृत रूप से स्वीकार कर लिया और मुस्लिम लीग को आपसी बातचीत के लिए निमंत्रण दिया। साथ ही समिति ने पंजाब की व्यापक खून-खराबी पर भी ध्यान दिया। वास्तव में उसने पंजाब की घटनाओं को इतना भयंकरतापूर्ण और गंभीर समझा कि पंजाब के विभाजन की संभावना मान ली।

इधर पश्चिम की घटनाओं से विकल होकर गांधीजी पूर्वी बंगाल से बिहार आ गये। एक दिन का भी विश्राम किये बिना उन्होंने इस प्रांत का दौरा शुरू कर दिया।

जहां-कहीं वह गये वहां उन्होंने आत्मचिंतन और क्षतिपूर्ति का उपदेश दिया। तमाम भगाई हुई मुसलमान स्त्रियां लौटा दी जायं लूटी हुई या नष्ट की गई संपत्ति का हर्जाना दिया जाय।

किसी हिंदु का तार आया जिसमें महात्माजी को चेतावनी दी कि हिंदुओं ने जो कुछ किया उसकी निंदा न करें। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में इस तार का जिक्र

किया और कहा— यदि मैं अपने हिंदू भाइयों के अथवा किसी भी दूसरे भाई के कुकृत्यों को सहारा देने लगूं तो हिंदू होने के दावे का अधिकारी नहीं रहूंगा।"

किसी जगह बोलने से पहले गांधीजी वहां उन मुसलमानों या मुसलमान-परिवारों के बरबाद घरों पर जाते थे जो मौत या शारीरिक चोट के शिकार हो गये थे। वह बार-बार यही कहते थे कि हिंदू लोग भागे हुए मुसलमानों को वापस बुलायें और उनकी झोंपड़ियां दुबारा बनायें और उन्हें फिर काम-धंधे से लगायें। अत्याचार करनेवाले हिंदुओं को उन्होंने आत्म-समर्पण के लिए कहा।

जिस दिन गांधीजी मसूढ़ी कस्बे में पहुंचे, दंगों के पचास भागे हुए अभियुक्तों ने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया।

जब गांधीजी की कार देहात में होकर गुजरती थी तो हिंदुओं की टोलियां उन्हें ठहरने का इशारा करती थीं और मुसलमानों की सहायता के लिए थैलियां भेंट करती थीं। फौज या पुलिस की मदद के बिना हिंसा को रोकने का यह तरीका था।

२२ मार्च १९४७ को लार्ड माउंटबैटन अपनी पत्नी एडवीना के साथ नई दिल्ली आ पहुंचे। चौबीस घंटे बाद जिन्ना ने सार्वजनिक रूप से वक्तव्य दिया कि विभाजन ही एकमात्र हल है वरना "भयंकर विनाश होगा।"

अपने आगमन के चार दिन के भीतर लार्ड माउंटबैटन ने गांधीजी और जिन्ना को वाइसराय भवन आने का निमंत्रण दिया। गांधीजी बिहार के भीतरी भाग में थे। माउंटबैटन ने उन्हें हवाई जहाज से लाने का प्रस्ताव किया। गांधीजी ने कहा कि वह यात्रा के उसी साधन को पसंद करते हैं, जिसका उपयोग करोड़ों जन करते हैं।

३१ मार्च को माउंटबैटन ने गांधीजी के साथ सवा दो घंटे मंत्रणा की।

अगले दिन गांधीजी एशियन रिलेशन्स् कान्फ्रेंस में गये जिसका अधिवेशन नई दिल्ली में २३ मार्च से हो रहा था। उनसे बोलने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा कि वह दूसरे दिन अंतिम अधिवेशन में भाषण देंगे। परंतु यदि कोई प्रश्न पूछे जायं तो वह उनके उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

क्या आप संसार की एकता में विश्वास करते हैं और क्या वर्तमान हालतों में यह सफल हो सकती है?

"अगर यह संसार एक न हो सके तो मैं इसमें जीना पसंद नहीं करूंगा," गांधीजी ने उत्तर दिया—"निश्चय ही मैं चाहता हूं कि यह स्वप्न मेरे जीवन-काल

में ही पूरा हो जाय। मैं उम्मीद करता हूं कि एशियाई देशों से आये सारे प्रतिनिधि एक-विश्व स्थापित करने के लिए पूरा बल करेंगे। यदि वे पक्के इरादे से काम करें, तो स्वप्न अवश्य चरितार्थ हो जायगा।"

एक चीनी प्रतिनिधि ने एक स्थायी 'एशियाई इंस्टीट्यूट' के विषय में पूछा। गांधीजी विषय से दूर हट गये और उनके दिमाग में जो मुख्य समस्या थी उसी की चर्चा की। वह बोले—"मुझे खेद है कि मुझे देश की वर्तमान स्थिति का उल्लेख करना पड़ता है। हम नहीं जानते कि आपस में शांति कैसे रखें। हम सोचते हैं कि हमें 'जंगल के कानून' अर्थात पाशविक-वृत्तियों का सहारा लेना पड़ेगा। मैं चाहूंगा कि इस प्रकार का अनुभव आप अपने-अपने देशों को न ले जायं।

उन्होंने एशिया की समस्याओं का भी जिक्र किया। "सारे एशिया के प्रतिनिधि यहां इकट्ठे हुए हैं," वह बोले—"क्या इसलिए कि यूरोप या अमरीका या अन्य गैर-एशियाइयों के खिलाफ युद्ध करें? मैं पूरे जोर के साथ कहता हूं कि नहीं यह भारत का उद्देश्य नहीं है। मैं यह कहना चाहता था कि इस तरह की कान्फ्रेंस निश्चित रूप से होनी चाहिए और अगर आप मुझसे पूछें कहां तो वह जगह भारत है।

दूसरे दिन उन्होंने कान्फ्रेंस में भाषण किया जिसका वादा उन्होंने पहले दिन किया था। पहले तो उन्होंने अंग्रेजी में बोलने के लिए क्षमा मांगी। फिर स्वीकार किया कि उन्होंने अपने विचारों को एक सूत्र में बांधने की आशा की थी परंतु समय नहीं मिला।

इसके बाद वह बिना सिलसिले के बोलने लगे

"आप लोग शहर में इकट्ठे हुए हैं, परंतु भारत शहरों में नहीं है। वास्तविक सचाई गांवों में और गांवों के अछूतों के घरों में है।

"पूर्व ने पश्चिम की सांस्कृतिक विजय स्वीकार कर ली है। किंतु पश्चिम ने प्रारंभ में अपना ज्ञान पूर्व से प्राप्त किया था जरथुस्त्र बुद्ध मूसा ईसा मोहम्मद कृष्ण राम तथा अन्य छोटे-मोटे दीपकों से।

"सम्मेलन को एशिया का संदेश समझना चाहिए। इसकी जानकारी पश्चिमी चश्मों के द्वारा या परमाणु बम के द्वारा नहीं होगी। यदि आप पश्चिम को कोई संदेश देना चाहते हैं तो यह संदेश प्रेम का और सत्य का होना चाहिए। मैं केवल आपके दिमाग को आकर्षित नहीं करना चाहता आपके दिल को पकड़ना चाहता हूं।

"मुझे आशा है कि एशिया का प्रेम और सत्य का संदेश पश्चिम को जीत

लेगा। इस विजय को खुद पश्चिम भी प्रेम के साथ स्वीकार करेगा। आज पश्चिम सुबुद्धि के लिए तड़प रहा है।"

रचना की दृष्टि से यह भाषण ज्यादा अच्छा नहीं था परंतु इसमें सारभूत बात तथा गांधीजी का सार भरा हुआ था। प्रतिनिधियों ने शायद इतने सरल तथा हृदयगत शब्द बहुत वर्षों से नहीं सुने थे।

११ मार्च और १२ अप्रैल के बीच माउंटबैटन ने छः बार गांधीजी से मंत्रणा की। व्यस्त वाइसराय के साथ जिन्ना की भी इतनी ही बार बातें हुईं।

लंदन में रायल एंपायर सोसाइटी की कौंसिल के सामने भाषण देते हुए ६ अक्तूबर १९४८ को लार्ड माउंटबैटन ने इन बातचीतों का रहस्य खोला था—"समस्या के वास्तविक हल की बात उठाने से पहले मैं उनसे बातचीत करना और उन्हें समझना चाहता था उनसे मिलना और वार्तालाप करना चाहता था। जब मुझे लगा कि जिन व्यक्तियों से मेरा वास्ता पड़ता है उन्हें मैं कुछ समझ गया हूं तो मैंने उनसे प्रस्तुत समस्या के बारे में बातचीत शुरू की

"व्यक्तिगत रूप से मुझे प्रतीत हो गया था कि उस समय और अब भी सही हल भारत को संयुक्त रखना ही होगा परंतु मि जिन्ना ने शुरू से ही यह स्पष्ट कर दिया कि अपने जीते-जी वह संयुक्त भारत स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने विभाजन की मांग की पाकिस्तान के लिए हठ किया। दूसरी ओर कांग्रेस अविभाजित भारत के पक्ष में थी परंतु कांग्रेस-नेता गृह-युद्ध बचाने के लिए विभाजन स्वीकार करने पर राजी हो गये। मुझे यकीन था कि मुस्लिम लीग लड़ाई करती।

"जब मैंने जिन्ना से कहा कि विभाजन के लिए कांग्रेस नेताओं का अस्थायी स्वीकृति-पत्र मेरे पास है, तो वह खुशी से उछल पड़े। जब मैंने बताया कि इसका तर्क-संगत परिणाम पंजाब और बंगाल का विभाजन होगा तो वह भय से चौंक उठे। उन्होंने जोरदार दलीलें दी कि इन प्रांतों का विभाजन क्यों नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि इन प्रांतों की राष्ट्रीय विशिष्टताएं हैं और विभाजन विनाशकारी हो जायगा। मैंने मान लिया परंतु साथ ही यह भी बताया कि अब मैं कितना ज्यादा महसूस करता हूं कि सारे भारत के विभाजन पर भी यही दलील लागू होती है। यह बात उन्हें पसंद नहीं आई और वह समझाने लगे कि भारत का विभाजन क्यों होना चाहिए। इस तरह हम खूंटे के चारों ओर चक्कर लगाते रहे और अंत में वह समझ गये कि या तो उन्हें अविभाजित पंजाब और बंगाल के साथ संयुक्त भारत लेना पड़ेगा या विभाजित पंजाब और बंगाल के साथ विभक्त

भारत। अंत में उन्होंने दूसरा हल स्वीकार कर लिया।"

अप्रैल १९४७ में गांधीजी ने किसी प्रकार के विभाजन का अनुमोदन नहीं किया और अपनी मृत्यु के समय तक इसका अनुमोदन करने से इन्कार कर दिया।

१५ अप्रैल को माउंटबैटन की प्रार्थना पर गांधीजी और जिन्ना ने एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें भारत के नाम पर कानून तोड़नेवाले दल की हुल्लड़बाजी और मार-काट की निंदा की गई और राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए बल-प्रयोग को बुरा बताया गया। यह वक्तव्य उस पखवाड़े के अंत में निकाला गया जब जिन्ना ने माउंटबैटन को यकीन दिलाया कि यदि उनका राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ तो भारत में गृह-युद्ध फूट पड़ेगा।

इस पखवाड़े में गांधीजी दिल्ली की हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे और वहां रोज शाम को प्रार्थना-सभा करते थे। पहली शाम को उन्होंने उपस्थित लोगों से पूछा कि उन्हें कुरान की कुछ आयतें पढ़ी जाने पर आपत्ति तो नहीं है। कई विरोधियों ने हाथ ऊंचे कर दिये। इस पर गांधीजी ने सभा भंग कर दी। दूसरी शाम को उन्होंने यही सवाल किया। उस दिन भी कुछ लोगों ने आपत्ति की और उस दिन भी उन्होंने सभा में प्रार्थना नहीं की। तीसरी शाम को भी यही बात हुई।

चौथी शाम को किसीने एतराज नहीं किया। गांधीजी ने बतलाया कि अगर पिछले तीन दिन सारे-के-सारे उपस्थित जन एतराज करते तो वह कुरान की आयतें जरूर पढ़ते और तैयार रहते कि यदि वे उन्हें मारना चाहें तो वह ईश्वर का नाम लेते-लेते उनके हाथ से मर जायं परंतु प्रार्थना-स्थान में वह प्रार्थना की इच्छा रखनेवालों तथा आपत्ति करनेवालों के बीच झगड़ा नहीं होने देना चाहते थे। अंत में अहिंसा की विजय हुई।

गांधीजी की दलील थी—"मस्जिद में ईश्वर का नाम लेना पाप कैसे हो सकता है?" हिंदू-मुस्लिम एकता उनके जीवन का लक्ष्य था। यदि हिंदुस्तान का अर्थ था केवल हिंदुओं की भूमि और पाकिस्तान का अर्थ था केवल मुसलमानों की भूमि तो पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों जहर से भरी भूमियां होनेवाली थीं।

११ अप्रैल को गांधीजी बिहार वापस चले गये।

अब तो अहिंसा के लिए तथा घृणा के विरुद्ध कार्रवाई ही वह राजनैतिक काम का जरिया कुछ बचा था। यदि गांधीजी सिद्ध नहीं कर सके कि हिंदू और मुसलमान मेल-जोल से रह सकते हैं, तो जिन्ना की बात सही थी और पाकिस्तान अनिवार्य था।

सवाल यह था—क्या भारत एक राष्ट्र है, अथवा ऐसा देश है, जिसमें एक-दूसरे से सदा लड़नेवाले धार्मिक समुदाय बसते हैं ?

संसार का एक सबसे बुरा अभिशाप है विगत शताब्दियों का प्रभाव। भारत में सत्रहवीं अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियां बीसवीं शताब्दी को प्रभावित करने के लिए बाकी बच गई हैं। मजहबी जोशों का प्रांतीय भावनाओं का और देसी रियासतों का भारत में वैसा ही क्षयकारी विभाजक प्रभाव रहा है, जैसा उद्योगवाद तथा राष्ट्रवाद के आधुनिक युग से पहले यूरोप में। चालीस करोड़ की आबादी वाले भारत में केवल तीस लाख औद्योगिक मजदूर हैं। देश में एकसूत्रता का अभाव था क्योंकि इस पिछड़े हुए देश की बिखरनेवाली प्रवृत्तियों को दबाने के लिए किसीके भी पास न तो एकीकरण की पर्याप्त सामर्थ्य थी और न एकीकरण की आकर्षक सूझ-बूझ। राष्ट्रवाद के एकीकरण के उच्च प्रतीक गांधीजी खुद ही बीते हुए अतीत संघर्षशील वर्तमान तथा अपने उच्च आदर्शों के भावी संसार का मिश्रण थे।

गृह-युद्ध की धमकी जिन्ना का बल थी दंगे उसके पूर्व रूप थे। भारत की एकता कायम रखने की एकमात्र आशा यही थी कि जनता को शांत किया जाय और इस प्रकार जिन्ना की धमकी को गीदड़-भभकी सिद्ध कर दिया जाय।

गांधीजी बिना विचलित हुए तथा अकेले ही इस काम में जुट गये।

इतिहास पूछ रहा था कि भारत एक राष्ट्र है या नहीं ?

६

दुखांत विजय

अप्रैल में बिहार में जोर की गर्मी थी और गांधीजी गांवों की लंबी-चौड़ी यात्राओं का श्रम बरदाश्त नहीं कर सकते थे। परंतु यदि हिंदू लोग पश्चात्ताप न करें और डर से भागे हुए मुसलमानों को वापस न लायें तो गांधीजी का वहां जाना जरूरी था। उनको एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि तुम्हें कृष्ण की तरह वन में चले जाना चाहिए, अहिंसा से देश का विश्वास जाता रहा है। इसके अलावा गीता अहिंसा का उपदेश नहीं देती।

उन्हें समाचार मिला कि नोआखाली में फिर दंगे शुरू हो गये हैं।

परंतु कई घटनाओं ने गांधीजी को उत्साहित किया। गांधीजी के कहने पर

मालाबार हिंद फौज के अलावा आखिरकार बिहार ही में रह गये थे। उन्होंने बतलाया कि मुसलमान लोग अपने-अपने गांवों को लौट रहे हैं और हिंदू तथा सिख उन्हें सहायता दे रहे हैं। एक सिख को मस्जिद में भी बुलाया गया था।

इस समाचार से गांधीजी को लगा कि अगर हिंदू लोग सच्चे हिंदू बन जायें और मुसलमानों को गले लगायें तो सबको अपनी लपटों में लपटनेवाली मौजूदा आग बुझ जाय। बिहार बड़ा प्रांत था। उसके उदाहरण से दूसरों को प्रेरणा मिलेगी। बिहार की शांति कलकत्ता तथा दूसरी जगहों के फिसादों को मिटा देगी। उन्होंने बतलाया कि उनकी अशिक्षित ग्रामीण-मां ने उन्हें सिखाया था कि परमाणु में ब्रह्मांड है। यदि वह अपने इर्द-गिर्द की चीजों को संभाल लेंगे तो दुनिया अपनी संभाल आप कर लेगी।

नेहरू ने तार द्वारा गांधीजी को दिल्ली बुलाया। एक महान ऐतिहासिक निर्णय के लिए कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक १ मई को होनेवाली थी। गांधीजी गर्मी में पांचवीं मील की यात्रा करके दिल्ली पहुंचे।

माउंटबैटन ने स्थिति का अध्ययन करके पता लगा लिया था कि पाकिस्तान के सिवा कोई चारा नहीं है। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के सामने प्रश्न रखा—क्या वह भारत का विभाजन स्वीकार करेगी? २१ अप्रैल को संयुक्त प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन में नेहरू ने कहा था—"अगर मुस्लिम लीग पाकिस्तान चाहती है, तो उसे मिल जायगा किंतु इस शर्त पर कि वह भारत के उन भागों को न मांगे जो पाकिस्तान में शामिल नहीं होना चाहते।

क्या कार्य-समिति भी यही निर्णय करनेवाली थी?

गांधीजी इसके विरुद्ध थे। पटेल डावांडोल थे। वह जिन्ना की धमकियों पर बल-परीक्षा करना चाहते थे। वह मुसलमानों की हिंसा को दबाने के लिए केंद्रीय सरकार का उपयोग करना चाहते थे परंतु अंत में वह भी राजी हो गये। गृह-युद्ध का खतरा उठाने के बजाय या स्वाधीनता खोने के बजाय कांग्रेस ने पाकिस्तान को मान लेना बेहतर समझा।

आजादी के लिए कांग्रेस ने पाकिस्तान के रूप में ऊंची कीमत अदा की।

गांधीजी ने अपनी झुंझलाहट को छिपाया नहीं। ७ मई की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा—"कांग्रेस ने पाकिस्तान स्वीकार कर लिया है और पंजाब तथा बंगाल का विभाजन मांगा है। भारत के विभाजन का मैं आज भी उतना ही विरोधी हूं जितना सदा से रहा हूं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? मैं तो केवल यही कर

सकता हूं कि ऐसी योजना से अपने-आपको अलग हटा लूं। ईश्वर के सिवा और कोई भी मुझे इसे स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता।"

गांधीजी माउंटबेटन से मिलने गये। अंग्रेजों को उन्होंने सलाह दी कि अपने सैनिकों-सहित भारत छोड़ कर चले जायं और 'भारत को उपद्रव तथा अराजकता के भरोसे छोड़ने का खतरा उठा लें'। अंग्रेजों के चले जाने पर कुछ समय उपद्रव होंगे "और हमको निस्संदेह आग में से गुजरना पड़ेगा परंतु यह आग हमको शुद्ध कर देगी।

गांधीजी के सुझाव का यह केवल विचारात्मक पहलू था। ठोस रूप में इसकी चतुराई इसकी सादगी में छिपी हुई थी। अंग्रेज लोग भारत को बिना किसी सरकार के नहीं छोड़ सकते थे। उपद्रवों के भरोसे भारत छोड़ जाने की सलाह का अर्थ था भारत कांग्रेस को सौंप देना। अगर इंग्लैंड इन्कार करता तो गांधीजी चाहते थे कि कांग्रेस ही सरकार को छोड़ दे। उस हालत में देश में शांति कायम रखने की जिम्मेदारी पूरी तरह अंग्रेजों पर रहती और अंग्रेज यह जिम्मेदारी उठाना नहीं चाहते थे।

इसलिए गांधीजी ने अंग्रेजों के सामने जो विकल्प रखा वह यह था—या तो भारत पर कांग्रेस को शासन करने दो वरना इस मार-काट के समय में खुद शासन चलाओ।

गांधीजी जानते थे कि पाकिस्तान तब तक संभव नहीं है जब तक कि ब्रिटिश सरकार उसे न बनाये और अंग्रेज लोग पाकिस्तान तब तक नहीं बनायेंगे जब तक कि कांग्रेस उसे स्वीकार न करले। जिन्ना तथा अल्पसंख्यकों को संतुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार भारत के टुकड़े नहीं कर सकती थी और बहुमत को नाराज नहीं कर सकती थी। इसलिए कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार नहीं करना चाहिए।

परंतु गांधीजी की कौन सुनता था? गांधीजी के एक सहयोगी ने लिखा है—"हमारे नेता थक गये थे और दूर दृष्टि खो बैठे थे। कांग्रेस-नेता स्वाधीनता को टालने से डरते थे। गांधीजी इस आशा से देर करना चाहते थे कि अंत में संयुक्त देश को आजादी प्राप्त हो न कि दो परस्पर विरोधी भारतों को।

१९४८ की गर्मियों में मैंने नेहरू पटेल आदि से पूछा कि गांधीजी ने कांग्रेस को पाकिस्तान स्वीकार करने से रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं किया अगर कोई मामूली उपाय कारगर न होता तो वह उपवास करके उसे दबा सकते थे?

सबका एक ही जवाब था कि गांधीजी का यह तरीका नहीं है कि चरम मुद्दों

पर भी राजी होने के लिए किसीको मजबूर करें। यह सही है परंतु दूसरा उत्तर इससे भी गहरा है। कांग्रेस ने पाकिस्तान मान लिया और शासन-सूत्र संभाले रही। इसका विकल्प केवल यही था कि पाकिस्तान को ठुकरा दिया जाता, शासन सूत्र छोड़ दिया जाता और जनता में दुबारा सुबुद्धि तथा शांतिप्रियता स्थापित करने पर सारी शक्ति लगा दी जाती। परंतु गांधीजी ने देख लिया कि उनके विकल्प में नेताओं को श्रद्धा नहीं है। कमेटियों में वह उन्हें अपने मत का समर्थन करने के लिए दबा सकते थे परंतु उनमें श्रद्धा नहीं फूंक सकते थे। इसके लिए पहले उन्हें यह सिद्ध करना पड़ता कि हिंदू और मुसलमान मेल-जोल के साथ रह सकते हैं। यह सिद्ध करने का भार गांधीजी पर था और समय बड़ी तेजी से बीता जा रहा था।

गांधीजी कलकत्ता गये। पाकिस्तान पाने के लिए बंगाल का पाकिस्तान तथा हिंदुस्तान के बीच बटवारा करना होगा। अगर वह बंगाल के मुसलमानों को इस बंग-भंग के दुखद परिणाम समझा सकें अथवा वह बंगाल के विभाजन के लिए हिंदुओं की उमड़ती हुई भावनाओं को रोक सकें तो शायद वह पाकिस्तान को टाल सकें।

कलकत्ता में गांधीजी ने पूछा—"जब बहाव के सिरे पर एक बंध-बांधा बिगड़ जाता है, तो क्या उसे में जनता की सद्बुद्धि इस बरबादी-भरे बहाव के खिलाफ उठ कर खड़ी नहीं हो सकती? यही उनकी आशा थी।

गांधीजी ने दलील दी कि बंगाल की एक संस्कृति है, एक भाषा है। उसे संयुक्त ही बना रहने दो। लार्ड कर्जन द्वारा बंग-भंग के बाद उन्होंने बंगाल को फिर एक करवा लिया था। क्या वे विभाजन से पहले जिन्ना को नहीं रोक सकते?

उस दिन कलकत्ता छोड़कर गांधीजी बिहार चले गये। बेहद गर्मी के बावजूद वह गांवों का दौरा करने लगे। उनका गीत यही था—"यदि हिंदू लोग भाईचारे की भावना प्रदर्शित करें तो इससे बिहार का भला होगा भारत का भला होगा और संसार का भला होगा।"

नेहरू का बुलावा आने पर गांधीजी २५ मई को फिर दिल्ली वापस गये। माउंटबेटन अपने मन में निश्चय करके हवाई जहाज द्वारा लंदन चले गये थे। अफवाह थी कि भारत का विभाजन होगा और इसकी योजना शीघ्र ही घोषित की जायगी। गांधीजी को आश्चर्य था कि ऐसा क्यों हो रहा है। १६ मई १९४६ को केबिनेट मिशन ने विभाजन तथा पाकिस्तान अस्वीकृत कर दिया था। उसके

कौनसी बात हो गई, जिससे स्थिति बदल गई ? क्या दंगे ? क्या वे हुल्लड़बाजी के आगे घुटने टेक रहे थे ?

वह विभाजन की ओर बढ़ते हुए ज्वार को पीछे ढकेलने का अब भी प्रयत्न कर रहे थे। यह प्रयत्न उनकी जान ले ले तो भी क्या ? गांधीजी ने कहा था—"आज भारत का जो रूप बन रहा है उसमें मेरे लिए स्थान नहीं है। मैंने सवासौ वर्ष जीने की आशा छोड़ दी है। शायद मैं साल-दो-साल और जिन्दा रहूं। यह दूसरी बात है। परंतु यदि भारत मार-काट की बाढ़ में डूब गया जैसाकि खतरा दिखाई दे रहा है, तो मैं जीवित नहीं रहना चाहता।"

फिर भी वह बहुत दिनों तक निराशावादी नहीं रह सके। नेहरू चीन के राजदूत डा॰ लो चिया-ल्युएन को गांधीजी के पास लाये। "आपके खयाल से घटनाएं क्या रूप लेंगी ?" डा॰ लो ने पूछा।

गांधीजी ने उत्तर दिया—"मैं अदम्य आशावादी हूं। बंगाल, पंजाब और बिहार की तमाम विवेकहीन खून-खराबी को देखते हुए हम जैसे वहशी नजर आ रहे हैं क्या वैसा बनने के लिए ही हम अब तक जिन्दा रहे हैं और कठिन परिश्रम करते रहे हैं ? किन्तु मुझे लगता है कि यह इशारा है कि जब हम विदेशी जुए को उतार कर फेंक रहे हैं तो सारा मैल और सारे झाग ऊपर आ रहे हैं। गंगा में जब बाढ़ आती है तो पानी गंदला हो जाता है मैल ऊपर आ जाता है। जब बाढ़ का पानी उतरता है तो हमको शुद्ध नीला जल दिखाई देता है, जो आंखों को ठंडक पहुंचाता है। मैं इसी आशा में जी रहा हूं। मैं भारत के मनुष्यों को वहशी नहीं देखना चाहता।

इस अर्से में माउंटबैटन भवन में भारत के विभाजन की योजना तैयार कर रहे थे।

इस योजना में केवल भारत के विभाजन का नहीं बल्कि बंगाल पंजाब और आसाम के विभाजन का भी विधान था—यदि वहां की जनता चाहे।

३ जून १९४७ को प्रधान मंत्री एटली ने ब्रिटिश लोक सभा में तथा माउंटबैटन ने नई दिल्ली में आकाशवाणी से इस योजना की घोषणा की।

नेहरू पटेल तथा कार्य-समिति ने योजना मंजूर कर ली। कांग्रेस महा-समिति ने १५ जून को १५७ के विरुद्ध २९ मतों से इसे मंजूर करके अधिकृत रूप दे दिया।

प्रस्ताव पास होने के बाद कांग्रेस के अध्यक्ष प्रोफेसर जे॰ बी॰ कृपालानी ने एक

छोटे-से भाषण में बतलाया कि कांग्रेस ने गांधीजी का साथ क्यों छोड़ दिया। उन्होंने कहा—"हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मार-काट के बुरे-से-बुरे दृश्यों की होड़ चल रही है। डर यह है कि अगर हम इस तरह एक-दूसरे से बदला लेते और एक-दूसरे का तिरस्कार करते चले जायें तो धीरे-धीरे हम नर-भक्षकों की अथवा इससे भी बुरी स्थिति में जा गिरेंगे। हर नये झगड़े में पुराने झगड़े के अत्यंत पाशविक तथा हीन दृश्य भी साधारण बन जाते हैं। मैं तीस साल से गांधीजी के साथ हूं। उनके प्रति मेरी भक्ति कभी विचलित नहीं हुई है। यह भक्ति व्यक्तिगत नहीं राजनीतिक है। जब कभी मैं उनसे सहमत नहीं हुआ हूं, तब भी मैंने उनकी राजनैतिक अंतःप्रेरणा को अपने खूब तर्कयुक्त विचारों से ज्यादा सही माना है। आज भी मैं मानता हूं कि अपनी महान निर्भयता को लिये हुए वह सही हैं और मेरी दलील त्रुटिपूर्ण है।

"तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूं? इसलिए नहीं हूं कि मैं महसूस करता हूं कि वह अभी तक इस समस्या को सामूहिक रूप से हल करने का कोई रास्ता नहीं निकाल पाये हैं।

शांति और भाईचारे के लिए गांधीजी की दलील की राष्ट्र पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी।

गांधीजी इसे जानते थे। उन्होंने कहा था—"यदि केवल गैर-मुस्लिम भारत मेरे साथ होता तो मैं प्रस्तावित विभाजन को रद्द कराने का रास्ता बता सकता था।

गांधीजी की लम्बे फीतवी डाक गालियों से और घृणा से भरी हुई होती थी। हिंदुओं के पत्रों में पूछा जाता था कि वह मुसलमानों का पक्ष क्यों लेते हैं और मुसलमानों के पत्रों में यह मांग होती थी कि वह पाकिस्तान की स्थापना में अड़चन डालना बंद कर दें।

एक मराठा-दंपति ने दिल्ली आकर हरिजन बस्ती के पास डेरा डाल दिया और घोषणा की कि उन्होंने उपवास शुरू कर दिया है, जो तब तक जारी रहेगा कि जब तक पाकिस्तान की योजना त्याग न दी जाय। गांधीजी ने प्रार्थना-सभा में प्रवचन देते हुए उनसे पूछा—"क्या तुम पाकिस्तान के विरुद्ध इसलिए उपवास कर रहे हो कि मुसलमानों से घृणा करते हो या इसलिए कि मुसलमानों से प्रेम करते हो? अगर तुम मुसलमानों से घृणा करते हो तो उपवास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम मुसलमानों से प्रेम करते हो तो आशा करता हिंदुओं को भी उनसे प्रेम

करना सिखाओ।" दोनों ने उपवास छोड़ दिया।

गांधीजी विभाजन को एक 'आध्यात्मिक दुर्घटना' कहते थे। वह खून-फिसाद की तैयारियों को देख रहे थे। उन्हें 'सैनिक प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही' की ओर फिर 'आजादी के बिना' की संभावना दिखाई दे रही थी। उन्होंने कहा—"मेरे निकटतम मित्रों ने जो कुछ किया है, या वह जो कुछ कर रहे हैं उससे मैं सहमत नहीं हूं।"

गांधीजी का कहना था कि बत्तीस वर्ष के काम का 'शर्मनाक अंत' हो रहा है। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वाधीन होनेवाला था परंतु यह विजय एक कच्ची राजनैतिक व्यवस्था थी। यह आजादी का खोखा छिलका था। यह दुखांत विजय थी। यह ऐसी विजय थी जिसमें सेना खुद अपने सेनापति को हराते हुए पाई गई।

गांधीजी ने घोषणा की— "मैं १५ अगस्त के समारोह में भाग नहीं ले सकता।"

स्वाधीनता अपने निर्माता के लिए शोक लेकर आई। अपने देश का पिता अपने ही देश से निराश हो गया। उन्होंने कहा—"मैंने इस विश्वास में अपने को धोखा दिया कि जनता अहिंसा के साथ बंधी हुई है।"

१ अक्तूबर १९४८ को माउंटबैटन ने रायल एम्पायर सोसायटी को बताया कि भारत में गांधीजी की तुलना रूज़वेल्ट या चर्चिल जैसे राजनैतिकों के साथ नहीं होती। यहां के लोग तो उन्हें अपने मन में मोहम्मद और ईसा की श्रेणी का मानते हैं।

करोड़ों लोग गांधीजी की पूजा करते थे ढेरों लोग उनके चरणों को अथवा उनके चरणों की धूल को माथे से लगाने का प्रयत्न करते थे। वे उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पण करते थे और उनके उपदेशों को ठुकराते थे। वे उनके शरीर को पावन मानते थे और उनके व्यक्तित्व को अपावन। वे उनमें विश्वास करते थे किंतु उनके सिद्धांतों में नहीं। वे लोग की स्तुति करते थे और सार को पांवों से कुचलते थे।

१५ अगस्त स्वाधीनता-दिवस ने गांधीजी को कलकत्ता में दंगों को रोकने का प्रयत्न करते हुए पाया। सारे दिन उन्होंने उपवास रखा और प्रार्थना की। देश के लिए उन्होंने कोई संदेश नहीं दिया। राष्ट्र के जीवन के औपचारिक उद्घाटन में भाग लेने के लिए राजधानी पहुंचने का निमंत्रण उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उत्सवों के दौर में वह शोकाकुल थे। उन्होंने पूछा—"क्या मुझमें कोई खराबी पैदा हो गई है, या वास्तव में ही ढंग बिगड़ रहा है।

भारत को आजादी मिली लेकिन गांधीजी परेशान और बेचैन थे। उनकी

मनःशक्ति में कमी आ गई थी। उन्होंने कहा भी था—"मैं समत्व की स्थिति से दूर हट गया हूं।"

परंतु विश्वास ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा। न उन्होंने दुःख में या संकट में चले जाने का विचार किया। "कोई भी हेतु, जो भीतर से न्यायोचित है, निष्फल कभी नहीं कहा जा सकता," उन्होंने दृढ़ता से कहा।

२१ अगस्त को उन्होंने अमृतकौर को लिखा था—"मानवता एक महासागर है। यदि महासागर की कुछ बूंदें गंदली हो जायें तो सारा महासागर गंदला नहीं होता।"

मनुष्य में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। ईश्वर में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा था। अपने प्रार्थना-प्रवचन में एक दिन उन्होंने कहा था—"मैं सत्य से ही संघर्ष करनेवाला हूं और असफलता को नहीं जानता।"

निराशाजनक तथ्य था, परंतु उनका कहना था कि "सही आचरण से किसी बुराई को कम करना हमेशा संभव है और अंत में बुराई में से भलाई निकालना भी संभव है।"

कोई छोटा आदमी खिन्न हो जाता या कटु बन जाता या अपने मार्ग में बाधा डालनेवालों को पराजित करने की कोशिश करता। गांधीजी ने अपने अंदर टटोलकर देखा, शायद उनका ही दोष हो। "हे ईश्वर तू मुझे अंधकार से प्रकाश में ले जा।"

गांधीजी अपनी आयु के अठहत्तर वर्ष पूरे कर रहे थे। जो संसार उन्होंने रचा था वह उनके चारों ओर बिखरा हुआ पड़ा था। उन्हें नये सिरे से निर्माण करना था। कांग्रेस केवल राजनैतिक दल बन गई थी। उसे जनता के रचनात्मक उत्थान का निमित्त बनना आवश्यक था। वह नई दिशाएं टटोल रहे थे। उनका शरीर बूढ़ा था और बोझ उठाते थका। वह अनुभव में बूढ़े थे और विश्वास में युवा।

कलकत्ता में लोग उन्हें एक मुसलमान के घर ले गये। इस मुहल्ले की गली में ताजे खून के दाग चमकते थे और हवा में जलते मकानों के धुएं की दुर्गंध थी।

शोक-संतप्त लोग उस छोटे से मकान में उनके पास आये और गांधीजी ने उनके आंसू पोंछे। दूसरों के घावों का मरहम लगाने में उन्हें सांत्वना मिलती थी। उन्होंने अपना नया कर्त्तव्य खोज लिया था। यह उनका पुराना काम था। कष्ट निवारण, प्रेम का प्रसार तथा सब मनुष्यों को भाई-भाई बनाना।

फ्रांसीसी के संत फ्रांसिस जब अपने बागीचे में फावड़ा चला रहे थे तो किसीने उनसे पूछा कि अगर उन्हें अचानक यह पता लग जाय कि उसी शाम को उनकी मृत्यु होनेवाली है तो वह क्या करेंगे ?

उन्होंने जवाब दिया—"मैं अपने बागीचे में फावड़ा चलाना समाप्त कर दूंगा।

गांधीजी उसी बागीचे में फावड़ा चलाते रहे, जिसमें उन्होंने अपने जीवन भर काम किया था। पापियों ने उनके बागीचे में पत्थर और कचरा फेंक दिया था परंतु वह फावड़ा चलाते रहे।

सत्याग्रह गांधीजी के लिए निराशा तथा दुखों की औषध था। कर्म उन्हें आंतरिक शांति प्रदान करता था।

७

वेदना की पराकाष्ठा

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। उन्हें राजनीति के प्रसारों का ज्ञान था भारत की दीवार पर उन्होंने यह हस्तलेख पढ़ लिया था—"तुम्हारे दिन पूरे हो गये।" यह हस्तलेख गांधीजी का था।

भारतवासियों की मर्जी से लार्ड माउंटबैटन भारतीय संघ के गवर्नर-जनरल बने रहे। यह तय हुआ था कि माउंटबैटन पाकिस्तान के भी गवर्नर-जनरल होंगे और इस प्रकार एकता के प्रतीक होंगे। परंतु जिन्ना ने उनकी जगह ले ली।

पाकिस्तान बनने से भारत के दो टुकड़े हो गये। खुद पाकिस्तान के भी दो टुकड़े हो गये। दोनों टुकड़ों के बीच भारतीय संघ का करीब ८ मील लंबा फासला था।

भारत का विभाजन करनेवाली सीमांत रेखा ने परिवारों के दो भाग कर दिये। इसने कारखानों को कच्चे माल से और खेती की उपज को मंडियों से पृथक कर दिया। पाकिस्तान के अल्पसंख्यक अपने भविष्य के बारे में चिंतित थे। भारतीय संघ के मुसलमान बेचैन थे। दोनों उपनिवेशों में शासक बहुसंख्यकों तथा भयभीत अल्पसंख्यकों के बीच मारकाट शुरू हो गई।

भारत शांति के साथ रह सकता था। अंग भंग ने मार्मिक शिराओं को काट दिया। इनमें से मानव रक्त तथा धार्मिक विद्वेष का विष बहने लगा।

कलकत्ता तथा बंगाल का पश्चिमी भाग भारतीय संघ में रहा। पूर्वी बंगाल

पाकिस्तान में गया। कलकत्ता की आबादी में तेईस फीसदी मुसलमान थे। हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ पड़े।

गांधीजी ने इस भड़क उठनेवाले मसाले पर शांति का शीतल जल छिड़कने का बीड़ा उठाया।

गांधीजी ९ अगस्त १९४७ को कलकत्ता पहुंचे। जिन्ना के 'सीधी कार्रवाई' के दिन से अब तक पूरे साल भर कलकत्ता खूनी लड़ाई-झगड़ों से ग्रस्त था। धार्मिक उन्माद से भरी हुई गलियों में गांधीजी और हुसैन सुहरावर्दी बांह-में-बांह डाले घूमे। दंगे के क्षेत्रों में सुहरावर्दी गांधीजी को अपनी कार में खुद ले गये। जहां-कहीं वे दोनों गये वहां मार-काट मानों काफूर हो गई। हजारों मुसलमान और हिंदू आपस में गले मिले और उन्होंने नारे लगाये "महात्मा गांधी जिंदाबाद! हिंदू-मुस्लिम एकता जिंदाबाद!" गांधीजी की दैनिक प्रार्थना-सभाओं में विशाल भीड़ भाईचारा प्रकट करने लगी। १४ अगस्त के बाद कलकत्ता में कोई दंगा नहीं हुआ। गांधीजी ने तूफान को शांत कर दिया था। समाचार-पत्रों ने लंगोटीवाले जादूगर को प्रशंसा के उपहार भेंट किये।

३१ अगस्त को गांधीजी एक मुसलमान के घर में सोये हुए थे। रात को १० बजे के लगभग उन्हें रोष भरी आवाजें सुनाई दीं। वह चुपचाप पड़े रहे। सुहरावर्दी तथा महात्माजी की कई शिष्याएं कुछ हमलावरों को शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे। तभी कांच टूटने लगे खिड़कियों के कांच पत्थरों और घूंसों से तोड़े जा रहे थे। कुछ नौजवान मकान के भीतर घुस आये और किवाड़ों पर लातें मारने लगे। गांधीजी ने बिस्तर से उठकर अपने कमरे के किवाड़ खोल दिये। वह क्रोध-भरे दंगाइयों के सामने खड़े थे। उन्होंने अपने हाथ जोड़ दिये। उनपर ईंट फेंकी गई। वह ईंट उनके पास खड़े एक मुसलमान मित्र के लगी। एक दंगाई ने लाठी घुमाई, जो गांधीजी के सिर पर पड़ने से जरा ही बच गई। महात्माजी ने दुख से अपना सिर हिलाया। पुलिस आ गई। पुलिस के अफसर ने गांधीजी से अपने कमरे में चले जाने को कहा। तब पुलिस अफसरों ने दंगाइयों को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। बाहर बेकाबू भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु गैस का प्रयोग किया गया। यह भीड़ एक पट्टी-बंधे मुसलमान को लेकर भड़क गई थी और उसका कहना था कि उसे हिंदुओं ने छुरा मारा है।

गांधीजी ने उपवास का निश्चय कर डाला।

१ सितंबर को समाचार-पत्रों को दिये गये एक वक्तव्य में उन्होंने कहा—"जोश

से पीछेवाली भीड़ के सामने बाते से कुछ नहीं बनता। कम-से-कम कल रात कुछ नहीं बना। जो बात मेरे प्रयत्न से नहीं हो सकी वह शायद मेरे उपवास से हो सके। अगर कलकत्ता में मैं सड़नेवाले बलवाइयों के दिलों पर असर कर सका तो पंजाब में भी कर सकूंगा। इसलिए मैं आज रात को ८.१५ बजे से उपवास शुरू कर रहा हूं और वह उस समय समाप्त होगा जब कलकत्तावालों में सद्बुद्धि फिर लौट आयगी।"

यह आमरण उपवास था। यदि सद्बुद्धि न लौटे तो महात्माजी मर जायंगे।

२ सितंबर को टोलियों तथा शिष्टमंडलों का गांधीजी के निवास-स्थान पर तांता बंध गया। उन्होंने कहा कि गांधीजी की प्राण-रक्षा के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं। गांधीजी ने बतलाया कि यह दृष्टिकोण ही गलत है। उनके उपवास का अभिप्राय था अंतरात्मा को जगाना और दिमागी सुस्ती दूर करना। हृदय-परिवर्तन मुख्य बात थी और उनके जीवन की रक्षा गौण।

सारे संप्रदायों तथा अनेक संस्थाओं के नेतागण महात्माजी से मिलने आये। गांधीजी ने सबसे बातें कीं। जबतक सांप्रदायिक मेल फिर स्थापित न हो जाय वह उपवास नहीं तोड़ेंगे। कुछ प्रमुख मुसलमान तथा पाकिस्तान सीमैन यूनियन के एक पदाधिकारी गांधीजी से मिले और उन्होंने आश्वासन दिया कि शांति कायम रखने का वह भरसक प्रयत्न करेंगे और मुसलमान भी आवें। उपवास का जन पर असर पड़ा था। यह उपवास उनकी सुरक्षा के लिए तथा उनके विनष्ट घरों के पुनर्वास के लिए था।

४ सितंबर को म्युनिसिपल अधिकारियों ने सूचना दी कि गत चौबीस घंटों में शहर में पूरी शांति रही। लोगों ने गांधीजी को यह भी बताया कि सांप्रदायिक शांति की अपनी इच्छा का सबूत देने के लिए उत्तर कलकत्ता के ५ पुलिस सिपाहियों ने जिनमें यूरोपियन पुलिस-अफसर भी थे ड्यूटी पर काम करते हुए ही सहानुभूति में चौबीस घंटे का उपवास शुरू कर दिया है। हुल्लड़बाज गिरोहों के सरदार, लंब-टाईम हत्यारे, गांधीजी के बिस्तर के पास बैठकर रोने लगे और उन्होंने वादा किया कि अपनी स्वाभाविक लूट-मार बंद कर देंगे। हिंदुओं मुसलमानों तथा ईसाइयों के प्रतिनिधियों ने कार्यकर्त्ताओं ने व्यापारियों तथा दुकानदारों ने गांधी जी के सामने प्रतिज्ञा की कि कलकत्ता में आगे से झगड़े नहीं होंगे। गांधीजी ने कहा कि वह उनका विश्वास तो करते हैं, परंतु इस बार लिखित प्रतिज्ञा चाहते हैं और प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने से पहले उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अगर

प्रतिज्ञा भंग की गई, तो वह अनंत उपवास शुरू कर देंगे जिसे उनकी मृत्यु तक पृथ्वी की कोई भी वस्तु नहीं रोक सकेगी।

शहर के नेतागण मंत्रणा के लिए प्रलय चले गये। वह बड़ा महत्त्वपूर्ण क्षण था और वे लोग अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते थे। फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा का मसविदा बनाया और उस पर हस्ताक्षर कर दिये। ४ सितंबर को रात के ६.१५ पर गांधीजी ने सुहरावर्दी के हाथ से नींबू के शरबत का एक गिलास पिया। उन्होंने तिहत्तर घंटे उपवास किया था।

इस दिन से कलकत्ता तथा बंगाल के दोनों भाग दंगों से मुक्त रहे हालांकि आगे के कितने ही महीनों तक पंजाब तथा अन्य प्रांत भयानक हत्याओं से बरबाद रहे। बंगाल अपने वचन पर ईमानदारी से डटा रहा।

७ सितंबर को गांधीजी दिल्ली होकर पंजाब जाने के लिए कलकत्ता से रवाना हो गये। राष्ट्र के दूसरे भाग में दुआई की आवश्यकता थी।

स्टेशन पर गांधीजी को सरदार पटेल राजकुमारी अमृतकौर आदि मिले। इनके चेहरों पर निराशा छाई हुई थी। दिल्ली में दंगों का जोर था। पंजाब की आग से भागे हुए सिख तथा हिंदू शरणार्थी दिल्ली में भरते जा रहे थे। अछूतों की जिस बस्ती में महात्माजी ठहरा करते थे वह इन लोगों ने घेर ली थी। इसलिए गांधीजी को बिड़ला भवन में रहना पड़ा।

बिड़ला भवन में गांधीजी का कमरा नीचे की मंजिल में था। जब गांधीजी वहां पहुंचे तो उन्होंने सारा फर्नीचर हटवा दिया। आगंतुक लोग फर्श पर बैठते थे और गांधीजी कमरे के बाहर बरामदे में सोते थे।

बिड़ला भवन पहुंचने पर गांधीजी को मालूम हुआ कि दिल्ली में ताजा फल और सब्जियां मिलना दुश्वार था। दंगों ने सब कारोबार ठप कर दिया था।

अब गांधीजी तेजी के साथ और पूरी तरह जुटकर दिल्ली की अशांति मिटाने वाले के काम में जुट गये दिल्ली की भी और पंजाब की भी। दूसरी कोई बात महत्त्व नहीं रखती थी। पिछले वर्षों में गांधीजी डाक्टरों को अपना रक्तचाप नाप लेने देते थे। अब उन्होंने कह दिया— 'मुझे तंग मत करो। मैं तो काम करना चाहता हूं और अपने रक्तचाप के बारे में कुछ नहीं जानना चाहता। डाक्टरों का कहना था कि पिछले दस वर्षों में उनके रक्त-परिभ्रमण संस्थान में कोई गिरावट नहीं आई थी न उनके चेहरे अथवा शरीर पर ज्यादा झुर्रियां पड़ी थीं। शोर की आवाज उनके कानों को सहन नहीं होती थी। वह रात में पाच-छः घंटे और दिन

में आधा या एक घंटा सोते थे। वह खूब गहरी नींद सोते थे। सुबह उनमें खूब ताजगी और फुर्ती रहती थी।

राजनैतिक स्थिति पर तीव्र विक्षोभ के बावजूद गांधीजी अपने शरीर पर बहुत अधिक ध्यान देते थे। खूब गर्म पानी के टब में १ से २ मिनट तक पड़ा रहना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। अगर गुसलखाने में फुहारेवाली टोंटी होती तो वह बाद में ठंडे पानी से स्नान करते थे।

कठिन यात्राओं तथा जबरदस्त मानसिक खिचाव के इन महीनों में वह मस्त मौजम करते थे। उनका गुर था : शक्ति से ज्यादा काम करना पड़े तो कम खाओ। उनके लिए तो अभी बहुत काम करनी को पड़ा था।

बिड़ला भवन पहुंचने के पहले ही दिन गांधीजी दिल्ली से चौदह मील दूर ओखला में डा. जाकिरहुसैन से मिलने गये।

जाकिरहुसैन ओखला की जामिया मिल्लिया इस्लामिया के अध्यक्ष थे। यह बहुत ऊंचे दिमाग और चरित्रवाले भव्य विद्वान हैं। इस स्कूल के लिए गांधीजी ने चंदा इकट्ठा किया था। उन्होंने डा. जाकिरहुसैन को 'तालीमी संघ' का अध्यक्ष भी बनाया था।

अगस्त १९४७ में जामिया मिल्लिया पर क्रोधित हिंदुओं तथा सिखों का समुद्र लहरें मारने लगा क्योंकि इनके लिए सारी मुस्लिम चीजें चाहे आदमी हो या इमारत, घृणास्पद थीं। रात को जामिया के अध्यापक तथा विद्यार्थी हमले की आशंका में पहरा देते थे। चारों ओर के गांवों में मुसलमानों के घर जल रहे थे। हमलावरों का घेरा नजदीक आता जा रहा था। एक अंधेरी रात को एक टैक्सी जामिया के अहाते में पहुंची। इसमें से जवाहरलाल नेहरू उतरे। दिल्ली को घेरने-वाले दीवानों के घेरे में होकर वह अकेले ही वहां जा पहुंचे थे ताकि डा. हुसैन और उनके विद्यार्थियों के पास रहें और उन्हें हमले से बचायें।

ज्योंही गांधीजी ने जामिया के सामने खड़े खतरे की बात सुनी, वह कार में वहां जा पहुंचे और डा. जाकिरहुसैन तथा विद्यार्थियों के साथ एक घंटा ठहरे। गांधीजी के पदार्पण से जामिया पवित्र हो गई। इसके बाद उस पर हमले की आशंका नहीं रही।

उसी दिन गांधीजी ने कई शरणार्थी कैंपों का दौरा किया। उनसे अनुरोध किया गया कि हथियारबंद रक्षक साथ ले जायं। संभव था हिंदू तथा सिख उन्हें मुस्लिम परस्त मानकर उन पर हमला कर दें और मुसलमान उन्हें हिंदू मानकर।

परंतु वह अपनी रक्षा के लिए किसीको नहीं ले गये।

सावधानी और तंदुरुस्ती को ताक में रखकर गांधीजी ने अब असाधारण शक्ति का प्रदर्शन किया। वह दिन में कितनी ही बार शहर में इधर-उधर दौड़ते थे कभी दंगेवाले भागों का दौरा करते कभी शहर में या बाहर शरणार्थी डेरों में जाते और कई बार मानवता के भटका मरे, जड़ से उखड़े नमूनों की हजारों की भीड़ में जाकर बैठे। १ सितंबर की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा था—"मैं दिल्ली के और पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी पंजाब के दीन-हीन शरणार्थियों का विचार करता हूं। मैंने सुना है कि हिंदुओं और सिखों का सत्तावन मील लंबा काफिला पश्चिमी पंजाब से भारत में प्रवेश कर रहा है। यह सोचकर मेरा सिर चकराता है कि ऐसा कैसे हो सकता है। इस प्रकार की घटना संसार के इतिहास में दूसरी नहीं मिलेगी। इससे मेरा सिर शर्म से झुक जाता है और आप लोगों का भी झुक जाना चाहिए।

मुर्दों और पागलों के इस शहर में गांधीजी प्रेम और शांति का उपदेश देने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कहा—"जो हिंदू और सिख मुसलमानों को सताते हैं, वे अपने धर्म को बदनाम करते हैं और भारत को ऐसी क्षति पहुंचाते हैं, जो कभी पूरी नहीं हो सकती।

गांधीजी एक तूफानी बाढ़ के सामने अकेले ही तनकर खड़े हो गये थे।

वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के करीब पांचसौ सदस्यों की एक सभा में गये। उन्होंने कहा कि अपनी असहिष्णुता से संघ हिंदू धर्म की हत्या कर डालेगा।

भाषण के बाद गांधीजी ने प्रश्न आमंत्रित किये। एक सवाल और उसका जवाब दिये गये हैं।

"क्या हिंदू धर्म अत्याचारी को मारने की अनुमति देता है?

"एक अत्याचारी दूसरे अत्याचारी को सजा नहीं दे सकता गांधीजी ने उत्तर दिया—"सजा देना सरकार का काम है, जनता का नहीं।"

२ अक्तूबर १९४७ को गांधीजी का अठहत्तरवां जन्म-दिन था। लेडी माउंटबैटन तथा विदेशी कूटनीतिक प्रतिनिधि गांधीजी को मुबारकबाद देने आये। अनुक-ल मुसलमानों ने शुभ-कामनाएं भेजी। धनवानों ने रुपया भेजा शरणार्थियों ने फूल भेजे। गांधीजी ने पूछा—"मुबारकबाद का मौका कहां है? क्या संवेदनाएं भेजना अधिक उचित नहीं होगा? मेरे हृदय में तीव्र वेदना के सिवा कुछ नहीं है। एक समय था जब जन-समूह पूरी तरह मेरे कहने के अनुसार चलता था। आज मेरी

वातावरण अरण्यरोदन के समान हो गई है। मैंने १२५ वर्ष तो क्या ज्यादा जीवित रहने की भी सारी इच्छा छोड़ दी है। जब विद्वेष तथा मार-काट वातावरण को दूषित कर रहे हैं तब मैं नहीं रह सकता। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मौजूदा पागलपन छोड़ दीजिये।

गांधीजी अपने को निरुत्साहित महसूस नहीं करते थे वह अपने को निरुपाय महसूस कर रहे थे। "सर्व-समावेशक शक्ति से मैं सहायता की याचना करता हूं कि वह मुझे इस आंसुओं की घाटी से उठाले तो बेहतर होगा बजाय इसके कि वहशी बने हुए मनुष्य के कसाईपन का मुझे निरुपाय दर्शक बनाये।"

वह शरणार्थियों के उन कैंपो में गये जो भरे थे। सवर्ण शरणार्थियों ने इनकी सफाई से इन्कार कर दिया। गांधीजी ने हिंदुओं की इस कमजोरी की भर्त्सना की। सर्दी का मौसम आ रहा था। उन्होंने बेघरों के लिए कंबलों रजाइयों और चादरों की अपील की।

रोज शाम को वह बतलाते थे कि उन्हें कितने कंबल प्राप्त हुए। एक दिन गांधीजी दिल्ली केंद्रीय जेल में गये और १ कैदियों के साथ प्रार्थना की। उन्होंने हंसते हुए कहा—"मैं तो एक अभ्यस्त पुराना कैदी हूं।" उन्होंने पूछा—"स्वतंत्र भारत में जेल कैसे होंगी? सारे अपराधियों के साथ रोगी जैसा व्यवहार होगा और जेल अस्पताल बनेंगी जिनमें इलाज और सेहत के लिए रोगी भरती किये जायंगे।" अंत में उन्होंने कहा कि मेरी इच्छा है कि हिंदु-मुसलमान-सिख कैदी मिलकर भाईचारे से रहें।

कलकत्ता से अच्छे समाचार आ रहे थे। गांधीजी ने अपनी प्रार्थना सभा में पूछा कि दिल्ली भी कलकत्ता के शांतिपूर्ण उदाहरण का अनुकरण क्यों नहीं करती?

प्रतिशोध के डर से भारतीय संघ के मुसलमानों ने पाकिस्तान जाने का निश्चय किया। बदला लिये जाने के डर से पाकिस्तान के हिंदु तथा सिख भारतीय संघ की ओर चले आ रहे थे। एक विशाल प्रदेश में विद्वेष हत्या तथा लाखों के निष्कासन से तूफान आ रहा था। इस उथल-पुथल के बीच एक लंगोटीवाला छोटा-सा आदमी खड़ा था। वह कह रहा था कि बदले का बदला मौत के बदले मौत भारत के लिए मौत के समान है।

दिल्ली में मार-काट की छुटपुट घटनाएं हो रही थीं। मस्जिदों के तोड़े जाने तथा मंदिर बनाये जाने को गांधीजी ने हिंदु-धर्म तथा सिख धर्म के लिए कलंक

बतलाया । वह सिखों के एक समारोह में गये । वहां उन्होंने सिखों द्वारा मुसलमानों की मार-काट की निंदा की ।

गांधीजी ने भारत सरकार की भी आलोचना की । सेना पर बढ़ते हुए खर्च के भारी बोझ को उन्होंने पश्चिम के झूठे आडंबर की भ्रांतिपूर्ण नकल बतलाया परंतु साथ ही उन्होंने आशा प्रकट की कि भारत मृत्यु के इस तांडव से बच जायगा और "उस नैतिक ऊंचाई पर पहुंच जायगा जिस पर बत्तीस वर्ष से लगातार मिलनेवाली अहिंसा की शिक्षा के फलस्वरूप उसे पहुंचना चाहिए ।

गांधीजी ने लिखा था—"जिस समय आतंकित हो उस समय सब सोचना ही पड़ता है चाहे वह कितना ही नागवार क्यों न हो । अगर पाकिस्तान में मुसलमानों के कुकृत्यों को रोकना या बंद करना अभीष्ट है तो भारतीय संघ में हिंदुओं के कुकृत्यों का प्रश्न पर खड़े होकर ऐलान करना होगा । हिंदू होने के नाते गांधीजी हिंदुओं के प्रति सबसे अधिक निष्ठुर थे ।

८

भारत का भविष्य

गांधीजी ठोस रचनात्मक सुझाव दिये बिना कभी कोई प्रतिकूल आलोचना नहीं करते थे । उन्होंने कांग्रेस-दल की तथा स्वाधीन भारत की नई सरकार की आलोचना की थी । वह क्या सुझाव पेश कर रहे थे ?

गांधीजी ने बहुत जल्दी देख लिया कि भारत की आजादी के साथ भारत में आजादी का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है । भारत लोकतंत्र कैसे बना रह सकता है ?

गांधीजी के सामने विचारणीय प्रश्न था क्या कांग्रेस-दल सरकार को मार्ग दिखा सकता है और उस पर अंकुश लगा सकता है ? उन्होंने सोवियत संघ की या कैंडो के स्पेन की या अन्य अधिनायकवादी देशों की राजनैतिक समस्याओं का अध्ययन नहीं किया था परंतु सहज अंतःप्रेरणा से वह उन परिणामों पर पहुंच गये थे जिन पर दूसरे लोग बड़े अनुभवों तथा विश्लेषण के बाद पहुंच पाये थे । उन्होंने जान लिया था कि एकदल-प्रणाली व्यवहार में दलहीन-प्रणाली हो जाती है, क्योंकि जब सरकार और दल एक ही होते हैं तो दल केवल रबड़ की मुहर बन जाता है और उसका अस्तित्व काल्पनिक हो जाता है ।

यदि भारत का एकमात्र महत्त्वपूर्ण राजनैतिक दल कांग्रेस सरकार के प्रति

स्वतंत्र और आलोचनात्मक दृष्टिकोण न रखे तो सरकार में पैदा होनेवाली संभावित निरंकुश प्रवृत्तियों के अवरोधक का काम कौन करेगा ?

क्या गांधीजी तथा स्वतंत्र समाचार-पत्रों की सहायता से कांग्रेस-दल द्वारा भारत में इस संभावना को रोका जा सकता है ?

१६ नवंबर १९४७ को गांधीजी की उपस्थिति में कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपालानी ने कांग्रेस महा-समिति को सूचित किया कि वह अपने पद से त्याग-पत्र दे रहे हैं। सरकार ने न तो उनसे परामर्श किया और न उन्हें पूरी तरह विश्वास में लिया। कृपालानी ने बतलाया कि गांधीजी की राय में ऐसी परिस्थिति में त्याग पत्र उचित था।

कांग्रेस कार्य-समिति की जिस बैठक में नये अध्यक्ष का चुनाव होनेवाला था उसमें गांधीजी भी उपस्थित थे। यह महात्माजी का मौन दिवस था। जब नाम बतलाया कोसी गई, तो गांधीजी ने अपने उम्मीदवार का नाम एक पर्चे पर लिखा और उसे नेहरू के पास पहुंचा दिया। नेहरू ने सबको सुनाकर नाम पढ़ा—नरेंद्र देव। नेहरू ने नरेंद्रदेव के नाम का समर्थन किया। दूसरों ने विरोध किया।

कार्य-समिति की सुबह की बैठक १ बजे उठ गई, मत नहीं लिये गये।

दोपहर को नेहरू और पटेल ने राजेंद्रबाबू को बुलाया और गांधीजी से बिना पूछे उनसे अनुरोध किया कि कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए खड़े हो जायं।

राजेंद्रबाबू ९ बजे बिड़ला भवन में गांधीजी के पास गये और इस प्रस्ताव का गांधीजी से जिक्र किया। गांधीजी ने कहा—"यह प्रस्ताव मुझे पसंद नहीं है।"

इन घटनाओं का वर्णन करते हुए राजेंद्रबाबू ने बताया— "मुझे याद नहीं कि मैंने कभी गांधीजी के विरोध का साहस किया हो। अगर कभी उनसे मेरा मतभेद भी होता तो मुझे लगता कि उनकी बात ठीक होनी चाहिए और मैं उनके पीछे चलता था।

इस अवसर पर भी राजेंद्रबाबू गांधीजी की बात से सहमत हो गये और उन्होंने अपनी उम्मीदवारी वापस लेने का वादा किया।

परंतु बाद में राजेंद्रबाबू को समझा-बुझाकर उनका विचार बदलवा लिया गया। वह कांग्रेस के नये अध्यक्ष बन गये।

कांग्रेस-दल ने तथा सरकार के प्रमुख व्यक्तियों ने गांधीजी को पराजित कर दिया।

१९४७ के दिसंबर के पूर्वार्द्ध में गांधीजी ने अपने सबसे अधिक विश्वस्त सह

योगियों के साथ कई बार सम्मिलित रूप से बात-चीत की। ये लोग सरकार से बाहर थे और रचनात्मक कामों में लगे हुए थे। ये गांधीजी द्वारा स्थापित रचनात्मक संस्थाओं का संचालन करते थे।

गांधीजी चाहते थे कि ये सब संस्थाएं मिलकर एक हो जायं परंतु वह यह नहीं चाहते थे कि रचनात्मक कार्यकर्ता "सत्ता प्राप्त करने की राजनीति में पड़ जायं क्योंकि इससे सर्वनाश हो जायगा। उन्होंने कहा—"अगर यह बात न होती तो क्या मैं खुद ही राजनीति में न पड़ जाता और अपने ढंग से सरकार चलाने की कोशिश न करता? आज जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर है वे आसानी से हट कर मेरे लिए जगह कर देते।

"परंतु मैं अपने हाथों में सत्ता नहीं लेना चाहता गांधीजी ने अपने मित्रों को विश्वास दिलाया— 'सत्ता का त्याग करके और शुद्ध निःस्वार्थ सेवा में लगकर हम मतदाताओं को मार्ग दिखा सकते हैं और प्रभावित कर सकते हैं। इससे हमें जो सत्ता प्राप्त होगी वह उस सत्ता से बहुत अधिक वास्तविक होगी जो सरकार में जाने से प्राप्त होती। ऐसी स्थिति आ सकती है, जब लोग खुद महसूस करें और कहें कि वे चाहते हैं कि सत्ता का उपयोग हमारे ही द्वारा हो अन्य किसीके द्वारा नहीं। उस समय इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। तब तक शायद मैं जीवित न रहूं।

जब गांधीजी ने देखा कि वह कांग्रेस को मार्ग दिखाने में असमर्थ हैं तो उन्होंने एक नया संगठन रचने की योजना बनाई, जो सरकार को बाहर रहकर आगे बढ़ाये और संकट के समय सरकार का भार भी उठाकर ले चले। वह राजनीति में रहे परंतु राजनैतिक सत्ता ग्रहण न करे, बिना उस व्यवस्था के जब अन्य कोई चारा न रहे। मत प्राप्त करने की कोशिश के बजाय गांधीजी के शब्दों में वह जनता को सिखाये कि वह "अपने मताधिकार का उपयोग बुद्धिमानी से करे।

एक प्रतिनिधि ने सवाल किया कि कांग्रेस या सरकार रचनात्मक जन-हितकारी कार्य क्यों नहीं कर सकती ?

गांधीजी ने सरलता से उत्तर दिया— क्योंकि रचनात्मक कार्य में कांग्रेस जनों को काफी दिलचस्पी नहीं है। हमें इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि हमारे स्वप्नों की सामाजिक-व्यवस्था आज की कांग्रेस के द्वारा कायम नहीं हो सकती।

गांधीजी ने दृढ़ता से कहा—"आज इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है कि मुझे डर लग रहा है। आदमी अपनी जेब में इतने सारे मत रखना चाहता है, क्योंकि

मतों से सत्ता मिलती है। इसलिए सत्ता हस्तगत करने का विचार मिटा दीजिये तो आप सत्ता को ठीक मार्ग पर ले जा सकेंगे। जो भ्रष्टाचार हमारी स्वाधीनता का गला घोंटने को तैयार खड़ा है उसे मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

गांधीजी महसूस करते थे कि सत्ताधारी व्यक्तियों का तगड़ा विरोध वही कर सकता है, जो खुद सत्ता के प्रलोभन से मुक्त हो। सरकार से बाहर रहनेवाले ही सरकार में रहनेवालों को रोक और साध सकते हैं, ऐसा गांधीजी का मत था।

फिर भी गांधीजी की ऊंची अधिकारपूर्ण स्थिति उस सरकार की सत्ता का मुकाबला नहीं कर पा रही थी जो उनके प्रयत्नों से बनी थी और जिसके सदस्य उनके चरणों में शीश झुकाते थे।

६

आखिरी उपवास

रिचर्ड सिमंड्स नामक एक अंग्रेज मित्र जो बंगाल में गांधीजी से मिले थे नवंबर १९४७ में नई दिल्ली में बीमार पड़ गये। गांधीजी ने उन्हें बिड़ला भवन बुला लिया।

डाक्टर ने सिमंड्स के लिए ब्रांडी तजवीज की। गांधीजी से पूछा गया तो उन्होंने कहा कि सिमंड्स को ब्रांडी दिये जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

सिमंड्स काश्मीर गये थे और वहां की स्थिति के बारे में गांधीजी से चर्चा करना चाहते थे लेकिन गांधीजी ने उन्हें मौका ही नहीं दिया।

सितंबर १९४७ में पाकिस्तान ने सरहद के कबीलों को काश्मीर में घुसने के लिए परोक्ष रूप से सहायता दी थी। बाद में पाकिस्तान की फौज के सैनिकों ने काश्मीर पर धावा बोल दिया। काश्मीर के महाराजा ने घबराकर तथा लाचार होकर प्रार्थना की कि उनकी रियासत भारतीय संघ में शामिल कर ली जाय। २९ अक्तूबर को काश्मीर का विलय सरकारी तौर पर घोषित कर दिया गया और महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। साथ ही नई दिल्ली की सरकार ने वायु तथा थल मार्ग से काश्मीर में सैनिक भेज दिये। अगर हवाई जहाजों से सैनिक न पहुंचाये गये होते तो पाकिस्तान काश्मीर को जीतकर अपने राज्य में मिला लेता। शीघ्र ही काश्मीर और जम्मू की भूमि

भारत और पाकिस्तान के बीच छोटे-से युद्ध का क्षेत्र बन गई।

बड़े दिन पर आकाशवाणी से बोलते हुए गांधीजी ने भारत द्वारा काश्मीर में सैनिक भेजे जाने की कार्रवाई का समर्थन किया। भारत और पाकिस्तान के बीच रियासत के बंटवारे के प्रस्ताव की उन्होंने निंदा की। उन्होंने इस पर दुख प्रकट किया कि नेहरू ने यह झगड़ा संयुक्त-राष्ट्र-संघ को सौंप दिया। अंग्रेज इतिहासकार होरेस अलेक्जेंडर से उन्होंने कहा था कि काश्मीर के मुद्दे पर देशों का यह अंतर्राष्ट्रीय 'सत्तागत राजनीति' के आधार पर निश्चित होगा न्याय पर नहीं। इसलिए गांधीजी ने भारत तथा पाकिस्तान से अनुरोध किया कि निष्पक्ष भारत-वासियों की सहायता से दोनों आपस में मैत्रीपूर्ण समझौता कर लें जिससे भारतीय संघ संयुक्त-राष्ट्र-संघ से अपना आवेदन-पत्र वापस ले ले।

गांधीजी तथा ऊंची राजनीति को नीची राजनीति से मिला देते थे। एक दिन अगर वह नेहरू से काश्मीर के बारे में बातचीत करते तो दूसरे दिन वह किसी गांव में जाकर किसानों को भूमि की खाद बनाने की तरकीब बताते।

गांधीजी इतने महान थे कि उनकी सफलता संभव नहीं थी। उनके चरम आत्मिक ऊंचे थे उनके अनुगामी अत्यधिक मानवी तथा दुर्बल।

गांधीजी केवल भारत की ही संपत्ति नहीं थे। भारत में उनकी असफलताओं से संसार के लिए उनके चरित्र तथा उनके धर्म का महत्व कम नहीं होता। संभव है वह भारत में बिल्कुल मर जायं और भारत के बाहर उत्कट रूप से जीवित रहें। अंत में जाकर शायद वह यहां भी जीवित रहें और वहां भी।

गांधीजी के जीवन का ढंग ही है कि जो असली महत्व रखता है, न कि उनके निकटवर्ती पड़ोस में उनका तत्कालीन प्रभाव।

ईसा ने सोचा होगा कि ईश्वर ने उन्हें छोड़ दिया और गांधीजी ने सोचा होगा कि उनके लोगों ने उन्हें छोड़ दिया। इतिहास के निर्माता इतिहास के निर्णय को पहले से नहीं जान सकते।

मनुष्य की महानता देखनेवाले की निगाहें होती हैं। गांधीजी इतने परेशान दुखी तथा अपने भक्तों द्वारा अपदस्थ थे कि वह नहीं देख सकते थे कि अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वह कितनी ऊंचाई पर पहुंच गये थे। इस अल्प समय में उन्होंने वह किया जो किसी भी समाज के लिए अपरिमित मूल्य रखता है। उन्होंने भारत के सामने एक निराले तथा श्रेष्ठतर जीवन का नमूना रखा। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मनुष्य भाई-भाई की तरह रह सकते हैं और रक्त-रंजित हाथोंवाला

पाशविक मनुष्य भी आत्मा के स्पर्श से प्रभावित हो ... गड़े हों और
लिए ही क्यों न हो। ऐसे व्रतों के बिना मानवता अपने ... जीवन
समाज को अनंत काल तक प्रकाश की इस झलक की तुल...
के अंधकार से बचनी चाहिए।

१३ जनवरी १९४८ को महात्मा गांधीजी ने अपना ...
किया। इसने भारत के मस्तिष्क में सद्भावना की मूर्ति स... था।

दिल्ली की मार-काट बंद हो गई। शहर में गांधीजी की उपस्थिति का असर हो गया। परंतु उन्हें अब भी 'तीव्र वेदना' थी। उन्होंने कहा था—"यह असहनीय है कि डा. जाकिरहुसैन जैसे व्यक्ति या शहीद सुहरावर्दी दिल्ली में मेरी तरह आज़ादी और हिफ़ाजत के साथ घूम-फिर नहीं सकते। मैंने अपने जीवन में कभी ऐसी निराशा का अनुभव नहीं किया।"

इसलिए उन्होंने अनशन कर दिया। यह आमरण-अनशन होनेवाला था। इसके लिए उन्हें अकस्मात प्रेरणा हुई थी। उन्होंने नेहरू या पटेल या अपने डाक्टरों से कोई परामर्श नहीं किया था। साल भर से वह चूक गए थे, वह धीरज के साथ रुके हुए थे, मजहबों के बीच आपसी मार-काट की भावना देश में अभी तक फैली हुई थी। "मानव-प्रयत्न के रूप में मेरे सारे साधन समाप्त हो गये। तब मैंने अपना सिर ईश्वर की गोद में रख दिया। ईश्वर ने मेरे लिए उपवास भेजा।" उपवास का निश्चय करने के बाद उन्होंने महीनों बाद पहली बार आनंद अनुभव किया।

वह जानते थे कि उनकी मृत्यु हो सकती है, "परंतु मृत्यु मेरे लिए यशस्वी उद्धार होगी और इससे तो अच्छी ही होगी कि मैं भारत, हिंदू-धर्म, सिख-धर्म तथा इस्लाम का विनाश निरुपाय होकर देखता रहूं।"

उपवास के पहले दिन वह प्रार्थना-स्थान को गये और रोज की तरह प्रार्थना कराई। एक पर्चे पर उनके पास भेजे गये लिखित प्रश्न में पूछा गया कि उपवास का दोष किस पर है? उन्होंने उत्तर दिया—"किसी पर नहीं, परंतु यदि हिंदू और सिख मुसलमानों को दिल्ली से निकालने पर आमादा हैं, तो वे भारत तथा अपने धर्मों के साथ विश्वासघात करेंगे और इससे मुझे चोट लगती है। कुछ लोग ताना देते हैं कि मैं मुसलमानों की खातिर उपवास कर रहा हूं। वे ठीक कहते हैं। अपने जीवन भर मैंने अल्पसंख्यकों की और जरूरतमंदों की हिमायत की है।

भारत ।ने बताया कि "वह अपना उपवास तभी तोड़ेंगे जब दिल्ली वास्तविक
में शांति हो जायगी।

उपवास के दूसरे दिन डाक्टरों ने गांधीजी को प्रार्थना में जाने से मना किया इसलिए उन्होंने प्रार्थना-सभा में पढ़े जाने के लिए एक संदेश लिखा दिया। परंतु बाद में उन्होंने जाने का निश्चय किया। उन्होंने बताया कि उनके पास आनेवाले संदेशों का तांता बंध गया है। सबसे अधिक खुशी देनेवाला संदेश लाहौर से मृदुला साराभाई का था। मृदुला ने तार भेजा था कि गांधीजी के मुसलमान मित्र जिनमें कुछ मुस्लिम लीगी तथा पाकिस्तान के मंत्री भी शामिल थे उनके जीवन के लिए चिंतित थे और पूछते थे कि वे क्या करें।

गांधीजी का उत्तर था—"मेरा उपवास आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया है और इसका अभिप्राय उन सबको आत्म-शुद्धि की इस प्रक्रिया में भाग लेने को आमंत्रित करना है जिनकी इस उपवास के उद्देश्य से सहानुभूति हो। कल्पना कीजिये कि भारत के दोनों भागों में आत्म-शुद्धि की लहर दौड़ जाती है, तब पाकिस्तान 'पाक' बन जायगा। ऐसा पाकिस्तान कभी नहीं मर सकता। तभी और तभी उस समय मुझे पछतावा होगा कि मैंने विभाजन को पाप बताया। आज तो मैं इसे पाप ही समझता हूं।

गांधीजी ने उपस्थित समुदाय को विश्वास दिलाया—"मेरी जरा भी इच्छा नहीं है कि उपवास जल्दी-से-जल्दी समाप्त हो। यदि मेरे जैसे मूर्ख की उन्मादभरी इच्छाएं कभी पूरी न हों और उपवास कभी न टूटे, तो कोई चिंता की बात नहीं है। जब तक जरूरी हो तब तक प्रतीक्षा करने में मुझे संतोष है परंतु यह सोचकर मुझे चोट लगेगी कि लोगों ने सिर्फ मेरी जान बचाने की खातिर कार्रवाई की है।"

इस उपवास में गांधीजी ने चिकित्सकों द्वारा अपनी परीक्षा किया जाना पसंद नहीं किया। उन्होंने कहा—"मैंने अपने को भगवान के भरोसे पर छोड़ दिया है। परंतु डा. गिल्डर ने कहा कि डाक्टर लोग दैनिक विज्ञप्तियां निकालना चाहते हैं और उनकी परीक्षा किये बिना वह सच्ची बात नहीं बता सकते। इस पर महात्माजी ढीले पड़ गये। डा. सुशीला ने बताया कि उनके पेशाब में कुछ एसिटोन आने लगा है।

"इसका कारण यह है कि मुझमें काफी श्रद्धा नहीं है।" गांधीजी ने जवाब दिया।

"परंतु एसिटोन तो एक रासायनिक पदार्थ है," डा. सुशीला ने उनकी बात काटते हुए कहा।

गांधीजी ने डा. सुशीला पर दृष्टि डाली मानो वह बहुत दूर देख रहे हों और कहा—"विज्ञान कितना कम जानता है। विज्ञान में जो कुछ है, उससे अधिक जीवन में है और रसायन में जो कुछ है उससे अधिक ईश्वर में है।"

वह पानी नहीं पी सकते थे इससे जी मतलाने लगता था। मतली रोकने के लिए उन्होंने पानी में नीबू का रस या शहद मिलाने से इन्कार कर दिया। गुर्दे ठीक तरह काम नहीं कर रहे थे। वह काफी कमजोर हो गये थे। रोज उनका वजन एक सेर के करीब कम हो रहा था।

तीसरे दिन वह एनिमा लेने पर राजी हो गये। पिछली रात २.१ बजे उनकी आंख खुल गई और उन्होंने गर्म पानी से स्नान की इच्छा प्रकट की। टब में बैठे-बैठे उन्होंने प्यारेलाल को एक वक्तव्य लिखाया जिसमें भारत सरकार से पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया देने को कहा गया था। लिखाने के बाद उन्हें चक्कर आने लगा और प्यारेलाल ने उन्हें टब से उठाकर कुर्सी पर बैठा दिया।

उस दिन गांधीजी बिड़ला भवन की एक बंद बरसाती में चारपाई पर घुटने पेट में दबाये लेटे रहे। उनकी आंखें बंद थीं और वह सोये हुए या अर्द्ध-मूर्छित मालूम होते थे। करीब दस फुट की दूरी पर दर्शनार्थियों की अनंत कतार चल रही थी। गांधीजी को देखकर कतार में आनेवाले भारतवासियों तथा विदेशियों के हृदय करुणा से भर गये बहुत-से तो रो पड़े और हाथ जोड़कर मन-ही-मन विनती करने लगे। गांधीजी के चेहरे पर तीव्र यंत्रणा प्रकट हो रही थी। परंतु इस अवस्था में भी यह यातना लोकोत्तर प्रतीत होती थी। यह यातना श्रद्धा के उल्लास से प्रकम्पित हो गई थी सेवा की चवनति से कम हो गई थी। उनकी अंतरात्मा जानती थी कि वह शांति में योगदान कर रहे हैं, इसलिए उनके मन में शांति थी।

सायं ५ बजे प्रार्थना से पहले वह पूरी तरह जाग रहे थे परंतु प्रार्थना-स्थान तक चल नहीं सकते थे। इसलिए उनके बिस्तर के पास माइक्रोफोन लगा दिया गया जिससे लाउडस्पीकर के द्वारा प्रार्थना-स्थान पर उनका प्रवचन सुना जा सके तथा आकाशवाणी से प्रसारित किया जा सके।

क्षीण आवाज में उन्होंने कहा— "दूसरे लोग क्या कर रहे हैं इससे विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए। हममें से हर एक को अपने भीतर रोशनी डालनी चाहिए और जितना अधिक हो सके अपने हृदय को शुद्ध करना चाहिए। मृत्यु से कोई नहीं

बच सकता। फिर उससे डरना क्या? वास्तव में मृत्यु तो एक मित्र है जो यातना से मुक्ति दिलाती है।

चौथे दिन गांधीजी की नब्ज की चाल में गड़बड़ी होने लगी।

१७ जनवरी को गांधीजी का वजन १ ७ पौंड पर स्थिर हो गया। उन्हें मतलियां आती थीं और वह बेचैन थे। परंतु घंटों तक वह चुपचाप पड़े रहते थे या सो जाते थे। नेहरू आये और रोने लगे। गांधीजी ने प्यारेलाल को यह देखने के लिए बाहर भेजा कि मुसलमान लोग बिना खतरे के वापस आ सकते हैं या नहीं।

१८ जनवरी को गांधीजी की तबीयत पहले से अच्छी मालूम हुई। उन्होंने हल्के-हल्के मालिश कराई। उनका वजन १ ७ पौंड बना रहा।

१३ तारीख को ११ बजे से जब से गांधीजी ने उपवास शुरू किया था विभिन्न जातियों, संगठनों तथा शरणार्थी समूहों के प्रतिनिधियों की कमेटियों की बैठकें डा. राजेंद्रप्रसाद के मकान पर हो रही थीं और विरोधी दलों के बीच वास्तविक शांति स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इस बार किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराने का सवाल नहीं था। इससे गांधीजी का संतोष होनेवाला *नहीं था। लोगों को ठोस प्रतिज्ञाएं करनी थीं जिनका उनके अनुयायी पालन* करें। इस जिम्मेदारी को महसूस करके कुछ प्रतिनिधिगण हिचकिचा रहे थे और अपने विवेक तथा अपनी जमातों से परामर्श करने के लिए चले गये थे।

आखिर १८ तारीख की सुबह प्रतिज्ञा-पत्र का मसविदा तैयार हो गया और उस पर हस्ताक्षर हो गये। इसे लेकर लगभग सौ प्रतिनिधि राजेंद्रबाबू के मकान से बिड़ला भवन पहुंचे। नेहरू और आजाद पहले ही वहां मौजूद थे। दिल्ली पुलिस के मुख्य अधिकारी तथा उनके सहायक भी मौजूद थे। इन लोगों ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। हिंदू, मुसलमान सिख ईसाई, यहूदी सभी उपस्थित थे। हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि भी थे।

पाकिस्तान के उच्च आयुक्त जनाब जाहिदहुसैन भी उपस्थित थे।

राजेंद्रबाबू ने महात्माजी को बतलाया कि उनके प्रतिज्ञा-पत्र में वचन है और उसे पूरा करने का कार्यक्रम है। प्रतिज्ञाएं निश्चयात्मक थीं "हम वचनबद्ध हैं कि मुसलमानों के जान माल और ईमान की रक्षा करेंगे और दिल्ली में जो घटनाएं हुई हैं वे फिर नहीं होंगी।

गांधीजी सुनते जाते थे और सम्मति सूचक सिर हिलाते जाते थे।

"मुसलमानों की छोड़ी हुई मस्जिदें जिन पर हिंदुओं और सिखों ने कब्जा कर लिया है, वापस लौटा दी जायंगी।

'भागे हुए मुसलमान वापस आ सकते हैं और पहले की तरह अपने कारोबार चला सकते हैं।

'ये सब हम अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से करेंगे पुलिस या फौज की मदद से नहीं।

अंत में राजेंद्रबाबू ने गांधीजी से प्रार्थना कि वह अपना उपवास तोड़ दें।

राजेंद्रबाबू के मकान पर होनेवाली चर्चाओं की सूचना गांधीजी को मिलती रहती थी। प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार की गई कुछ शर्तें तो प्रारंभ में उन्होंने ही सुझाई थीं।

गांधीजी ने अब उपस्थित जनों को संबोधन किया—'आपके शब्दों ने मुझे प्रभावित किया है। परंतु यदि आप लोग अपने को सिर्फ दिल्ली की सांप्रदायिक शांति के लिए जिम्मेदार मानते हैं, तो आपके आश्वासन का कोई मूल्य नहीं है और मैं तथा आप एक दिन महसूस करेंगे कि उपवास तोड़कर मैंने महान भूल की। हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि इस कमरे में मौजूद हैं। यदि ये लोग अपने वचनों के प्रति ईमानदार हैं, तो दिल्ली के अलावा दूसरे स्थानों पर प्रकट होनेवाले पागलपन से उदासीन नहीं रह सकते। दिल्ली भारत का हृदय है और आप लोग दिल्ली का सार-तत्त्व हैं। यदि आप सारे भारत को यह महसूस नहीं करा सकते कि हिंदू सिख और मुसलमान सब भाई-भाई हैं तो भारत तथा पाकिस्तान दोनों के भविष्य की अशुभ घड़ी आनेवाली है।

इस स्थल पर आवेश से अभिभूत होकर गांधीजी रो पड़े। उनके गालों पर आंसू बहने लगे। दर्शक भी सिसकियां भरने लगे बहुत-से रोने लगे।

जब गांधीजी ने दुबारा बोलना शुरू किया तो उनकी आवाज इतनी धीमी थी कि सुनाई नहीं देती थी। डा० सुशीला नैयर उनके शब्द दुहराती गईं। गांधीजी ने पूछा—"आप लोग मुझे धोखा तो नहीं दे रहे? आप लोग सिर्फ मेरी जान बचाने की कोशिश तो नहीं कर रहे?

मौलाना आजाद और अन्य मुस्लिम विद्वानों ने हिंदू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से गणेशदत्त गोस्वामी ने गांधीजी को आश्वासन दिया कि यह बात नहीं है और उनसे उपवास तोड़ने की प्रार्थना की।

गांधीजी चारपाई पर बैठे हुए गंभीर विचार में मग्न हो गये। उपस्थित जन प्रतीक्षा

करने लगे। अंत में गांधीजी ने घोषणा की कि वह अपना उपवास तोड़ देंगे। पारसी मुस्लिम तथा जापानी धर्म-ग्रंथों का पाठ हुआ और फिर यह मंत्र बोला गया

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय

इसके बाद मौलाना आजाद ने पाव भर नारंगी के रस का गिलास गांधी को दिया और गांधीजी ने धीरे-धीरे रस पिया।

उस दिन सुबह उठते ही नेहरू ने गांधीजी के साथ शाम तक उपवास का निश्च किया था। उन्हें बिड़ला भवन बुलाया गया जहां उन्होंने वचन दिया जाना त उपवास का समाप्त किया जाना देखा। मजाक करते हुए नेहरू ने गांधीजी कहा—"देखिये मैं उपवास कर रहा हूं और अब मुझे समय से पहले अपना उ वास तोड़ना पड़ेगा।

गांधीजी प्रसन्न हो गये। तीसरे पहर उन्होंने नेहरू के पास कुछ कागज एक पर्चे के साथ भेजे जिसमें लिखा था—"मुझे आशा है, तुमने अपना उपवा समाप्त कर दिया होगा। ईश्वर करे, तुम बहुत समय तक भारत के जवाहर रहो।

पाकिस्तान के विदेश-मंत्री सर मोहम्मद जफरुल्ला खां ने संयुक्त-राष्ट्र-संघ सुरक्षा-परिषद को सूचना दी थी—'उपवास की प्रतिक्रिया-स्वरूप दोनों उपनिवे के बीच मैत्री की भावना तथा इच्छा की एक नई और जबरदस्त लहर ने संपूर्ण उ महाद्वीप को ढक लिया है।"

पाकिस्तान और भारत के बीच की राष्ट्रीय सीमा भारत के हृदय में लगाय गया चीरा है, जो भरा नहीं और दोनों के बीच मैत्री दुष्कर है। फिर भी गांधी जी के उपवास ने वह चमत्कार दिखाया कि केवल दिल्ली में ही शांति स्थापित ना हुई बल्कि दोनों उपनिवेशों में मजहबी दंगों और मार-काट का अंत हो गया।

विश्व-व्यापी समस्या का यह आंशिक हल उस व्यक्ति के नैतिक बल की सा भार के रूप में है जिसकी सेवा करने की इच्छा प्राणों की ममता से कहीं अधिक थी। गांधीजी जीवन को प्रेम करते थे और जीवित रहना चाहते थे। लेकिन मरने लिए तत्पर रहने में उन्हें सेवा की शक्ति प्राप्त हुई और इसीमें आनंद था। उप वास के बाद के बारह दिनों में वह प्रसन्न और विनोदपूर्ण थे। विदाया काकूर

ई थी और भविष्य के कार्य के लिए उनके मन में अनेक योजनाएं थी। उन्होंने
ऐशु का आह्वान किया और उन्हें जीवन का नया पट्टा मिल गया।

१०

अंतिम अध्याय

उपवास समाप्त होने के बाद पहले दिन गांधीजी को कुर्सी पर बिठाकर प्रार्थना-स्थल पहुंचाया गया। अपने भाषण में जिसकी आवाज बहुत धीमी थी उन्होंने बताया कि हिंदू-महासभा के एक पदाधिकारी ने दिल्ली की शांति-प्रतिज्ञा को मानने से इन्कार कर दिया है। गांधीजी ने इस पर दुख प्रकट किया।

दूसरे दिन भी प्रार्थना के लिए उन्हें उठाकर ले जाया गया। अपने प्रार्थना प्रवचन में उन्होंने जल्दी स्वास्थ्य-लाभ की तथा शांति का मिशन आगे बढ़ाने के लिए पाकिस्तान जाने की आशा व्यक्त की।

प्रश्नोत्तर के समय एक आदमी ने गांधीजी से कहा कि वह अपने को अवतार घोषित कर दें। गांधीजी ने परिहास मुस्कराहट से कहा—"चुपचाप बैठ जाओ।"

गांधीजी जिस समय बोल रहे थे तभी धड़ाके की आवाज सुनाई दी। "यह क्या हुआ ? उन्होंने पूछा और फिर कहा—"मालूम नहीं क्या है ?" श्रोताओं में घबराहट फैल गई। "इस पर ध्यान मत दो" वह बोले—"मेरी बात सुनो।

पास ही बाग की दीवार से महात्माजी पर बम फेंका गया था।

अगले दिन गांधीजी जब खुद चलकर प्रार्थना-सभा में पहुंचे तो उन्होंने बताया कि कल की घटना के समय अविचलित रहने के लिए उनके पास बधाइयां चली आ रही हैं। वह कहने लगे—"इसके लिए मैं प्रशंसा का पात्र नहीं हूं। मैंने समझा था कि सेना अभ्यास कर रही है। प्रशंसा का पात्र तो तब होऊंगा जब ऐसे धड़ाके से मैं आहत हो जाऊं और फिर भी मेरे चेहरे पर मुस्कराहट बनी रहे और मारने-वाले के प्रति द्वेष न हो। जिस पथ-भ्रष्ट युवक ने बम फेंका है, उससे किसीको घृणा नहीं होनी चाहिए। वह शायद मुझे हिंदू-धर्म का शत्रु समझता है। परंतु हिंदू-धर्म को बचाने का यह तरीका नहीं है। हिंदू-धर्म तो मेरे ही तरीके से बच सकता है।"

एक देहाती बुढ़िया ने बम फेंकनेवाले के साथ धर-पकड़ की थी और पुलिस के आने तक उसे पकड़े रखा था। गांधीजी ने इस अशिक्षित बहन के सहज साहस

की सराहना की। पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल से उन्होंने कहा कि उस नौजवान को तंग न करें।

इस नौजवान का नाम मदनलाल था। वह पंजाब से आया हुआ शरणार्थी था और उसने दिल्ली की एक मस्जिद में आश्रय ले रखा था। गांधीजी की इच्छा के अनुसार उसे मस्जिद से निकाल दिया गया था।

रोष में भरकर मदनलाल उन लोगों के दल में शामिल हो गया जो गांधीजी की हत्या की साजिश कर रहे थे। जब बम ने अपना काम नहीं किया और मदनलाल गिरफ्तार हो गया तो उसका साथी षड्यंत्रकारी नाथूराम विनायक गोडसे दिल्ली आया।

गोडसे बिड़ला-भवन के आस-पास चक्कर लगाने लगा। वह खाकी जाकेट पहने रहता था। जाकेट की जेब में एक छोटा पिस्तौल रखता था।

रविवार, २५ जनवरी को गांधीजी की प्रार्थना-सभा में रोज की अपेक्षा भारी भीड़ थी। गांधीजी खुश हुए। उन्होंने लोगों से कहा कि वे अपने साथ आसन या मोटी खादी का कपड़ा बैठने के लिए ले आया करें, क्योंकि जाड़ों में जाड़ा ठंडी और नम रहती है। उन्होंने बताया कि उन्हें हिंदू और मुसलमानों से यह जानकर बड़ा हर्ष है कि दिल्ली ने हृदयों का ऐसा मिलन कभी अनुभव नहीं किया। इस सुधार की अवस्था में क्या यह नहीं हो सकता कि प्रार्थना में जो भी हिंदू या सिख आयें वे अपने साथ *कम-से-कम एक-एक मुसलमान लेते आयें? गांधीजी के लिए* यह भाई-चारे का एक ठोस उदाहरण होगा।

लेकिन मदनलाल गोडसे तथा उनके विचारों के संयोजकों जैसे हिंदू प्रार्थना में मुसलमानों की उपस्थिति और कुरान की आयतों के पाठ से कुपित हो उठे थे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी आशा जान पड़ती थी कि हिंसात्मक ढंग से भारत को फिर से जोड़ने की दिशा में गांधीजी की मृत्यु पहला कदम होगी। वे चाहते थे कि गांधीजी को अपने बीच से हटाकर मुसलमानों को आतंकित कर दें। उन्होंने यह नहीं समझा कि गांधीजी की हत्या से देश के सामने यह प्रकट हो जायगा कि मुसलमानों के कट्टर विरोधी कितने खतरनाक और अनुशासनहीन हैं और इस प्रकार उस हत्या का उल्टा ही प्रभाव पड़ेगा।

*उपवास के बाद वजन में कमी होने के बावजूद गांधीजी उन महान कठिना-*इयों को जानते थे जो नई अनुभवहीन सरकार के सामने आ रही थीं। कांग्रेस की क्षमता में उनका विश्वास जाता रहा था। अब तो चोटी-चोटी के दो

नेताओं पर निर्भर था—प्रधान मंत्री नेहरू तथा उप-प्रधान मंत्री पटेल। ये दोनों सदा एक-दूसरे से सहमत नहीं होते थे। दोनों के स्वभाव परस्पर विरोधी थे। दोनों के बीच संघर्ष हो रहा था। गांधीजी इससे परेशान थे। वास्तव में मामला यहां तक बढ़ गया था कि गांधीजी को आशंका होने लगी कि नेहरू और पटेल सरकार में साथ-साथ काम कर सकेंगे या नहीं। यदि दोनों में से एक को पसंद करने की नौबत आती तो गांधीजी शायद नेहरू को पसंद करते। पटेल को वह एक पुराने मित्र तथा कुशल प्रशासक के रूप में अच्छा समझते थे परंतु नेहरू को वह प्यार करते थे और उन्हें भरोसा था कि हिंदुओं तथा मुसलमानों के प्रति नेहरू का समभाव है। पटेल पर हिंदुओं के प्रति पक्षपात का संदेह किया जाता था।

अंत में गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि नेहरू तथा पटेल दोनों एक-दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। दोनों में से एक के बिना सरकार बिल्कुल कमजोर हो जायगी। इसलिए गांधीजी ने नेहरू को अंग्रेजी में एक पर्चा भेजा, जिसमें लिखा था कि उन्हें तथा पटेल को देश के हित में 'साथ बने रहना चाहिए।' ३० जनवरी को शाम के ४ बजे पटेल बिड़ला भवन में गांधीजी से मिलने और यही संदेश सुनने आये थे।

५ बजकर ५ मिनट पर गांधीजी प्रार्थना में देर होने से बेचैन हो गये और उन्होंने पटेल को विदा किया। आभा और मनु के कंधों पर हाथ रखकर वह जल्दी-जल्दी प्रार्थना-स्थल की ओर चल दिये। ज्योंही प्रार्थना-स्थल पर आये नाथूराम गोडसे कोहनी से भीड़ को हटाता हुआ आगे आया और ऐसा जान पड़ा कि वह झुककर गांधीजी को प्रणाम करेगा। उसका हाथ जेब में रखी हुई पिस्तौल को पकड़े हुए था।

गोडसे के नमस्कार को तथा उपस्थित व्यक्तियों के आदर-सूचक अभिवादन को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने हाथ जोड़ दिये और मुस्कराते हुए सबको आशीर्वाद दिया। उसी क्षण गोडसे ने पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। गांधीजी गिर पड़े और उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उनके मुंह से अंतिम शब्द निकले— हे राम!